समर्पण

लोक-प्रिय

मानर्नीय पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त
प्रधान सचिव, संयुक्त प्रान्त

समर्पण

देशरत्न, लोकप्रिय

माननीय पण्डित गोविन्द वल्लभ

स्वतन्त्र भारत में संयुक्त-प्रान्त आगरा और अवध के
सर्व प्रथम प्रधान सचिव के कर-कमलों में

गोस्वामी तुलसीदास

का जो भारतवर्ष में अपने समय के सबसे,
अकबर से भी, महान् व्यक्ति थे और
आज भी विश्ववन्द्य माने जाते हैं, एवं
उनकी विदुषी पत्नी रत्नावली का जीवन वृत्त
सादर समर्पित

रामदत्त भारद्वाज

भूमिका

पंडित रामदत्त भारद्वाज दस वर्ष से गोस्वामी तुलसीदास के आत्म-जीवन और घरबार पर अनुसन्धान में संलग्न हैं और समय-समय पर उसका अभिव्यञ्जन 'तुलसी चर्चा' और 'रत्नावली' सी उत्तम रचनाओं में करते रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में तुलसीदास के जीवन और घर-बार पर विशेष प्रकाश पड़ा है। अन्तर्बहिः साक्ष्य के आधार पर, प्रचलित भ्रमात्मक धारणाओं का जो खंडन और शङ्काओं का जो समाधान किया गया है वह सर्वथा श्लाघ्य है।

बड़ी प्रसन्नता की बात है कि पुस्तक में सोरों-सामग्री के सभी महत्व-पूर्ण अंशों का समावेश है। तुलसी-पत्नी रत्नावली के दोहे और पद, मुरली-धर चतुर्वेद का 'रत्नावली चरित', गोस्वामी जी के भतीजे कवि कृष्णदास-कृत 'वंशावली', अविनाशराय के छन्द, एवं अन्य आवश्यक उद्धरणों से पुस्तक परम संग्रहणीय हो गई है।

स्वयं गोस्वामी तुलसीदास के द्वारा अपने भतीजे को संवत् १६४३ वि० में प्रदान किए हुए (अब खण्डित और अवशिष्ट) राम-चरित-मानस के यथावत् प्रकाशन, एवं गोस्वामीजी के हस्तलेख, से पुस्तक का महत्व और भी बढ़ गया है।

मैं भारद्वाजजी से सहमत हूँ कि यदि रामचरित-मानस की सभी प्राचीन हस्त लिखित प्रतियों के आधार पर उसका वृहत् सम्स्करण तय्यार कराया जाय तो गोस्वामीजी के मानसिक विकास पर भी बहुत कुछ प्रकाश पड़ सकेगा।

मैं भारद्वाजजी की साहित्य-सेवा से अत्यन्त प्रभावित हूँ। यों तो उनकी अन्य कृतियाँ भी सुन्दर रही हैं, और अनेक विद्वानों ने उनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है, तथापि प्रस्तुत ग्रन्थ सभी दृष्टियों से अपने विषय पर अद्वितीय है, और भारद्वाजजी अपने उत्कृष्ट अनुसन्धान के लिए हार्दिक बधाई के पात्र हैं।

लक्ष्मीधर, महामहोपाध्याय
पी एच. डी., शास्त्री, एम. ए., एम. ओ. एल.
अध्यक्ष, संस्कृत-हिन्दी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल्ली

रामनवमी सम्वत् २००५ वि.

तुलसी-स्तवक

(१)

आत्मारामात्मजो हुलसी-तनयस्तुलसीदास
गुरु-नरसिंह पदान्तेवासी सद्गुणवृन्दावास ।
लोक-मायश्चाप जनुर्यो गंगा-वारि पवित्रे
अकृत स्वीय स्वान्त विमल सीताराम चरित्रे ॥

यो विजहार सलीन ललित पावन कविता-कुञ्जे
स्वमादायाऽकृत रामायण काव्ये स्वे रस-पुञ्जे ।
सोऽयं रत्नावलि-कर लालित पद-युगल कविराज
भक्तिं दिशि दिशि दिशतु प्रजाया एव तस्या राज ॥

—श्री पण्डित जौहरीलाल शर्मा

सोरों में ले जन्म जिन्होंने
किया विश्व का मत्य अपार,
हुलसी-आत्माराम-तनय जो
रत्नावलि के प्राणाधार,

राम-चरित मानस के कर्त्ता
वीत राग जो सन्त उदार,
वे हैं तुलसीदास जिन्होंने
किया भक्तिमय सब संसार !

आचार्य कृष्णदत्त भारद्वाज

(३)

कवे, तुम्हारी पुण्य-स्मृति से
सचमुच हम सब शुचि होते हैं,
सुकृति, तुम्हारी अविकृत कृति से
कोटि कोटि कल्मष धोते हैं।

शब्द शिल्पि, चिर कविता-मन्दिर
तुमने जो निर्माण किया है,
श्रान्त श्रान्त जीवों का फिर-फिर
उसने कितना त्राण किया है।

वह मानस आदर्श तुम्हारा,
मनस्ताप सब हर जाता है,
उसमें राम-चरित-रस धारा
पाप आप ही कट जाता है।

—महाकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त

(छ)

Nothing elates me like the music of the Gita and the Ramayana of Tulsidas

—M K Gandhi

Yet that Hindu was the greatest man of his age in India—greater even than Akbar himself. .

—Vincent A Smith

The Ramayana is undoubtedly a great poem, worthy to *rank amongst the great classical master—pieces of the* world's literature.

—F. E Keay

Rama Charita Manasa, . with its ideal standard of virtue and purity, is a kind of Bible to a hundred millions of the people of Northern India

—A A. Macdonell

The Ramayana of Tulsidas is more popular and more honoured by the people of the North-Western Provinces than the Bible is by the corresponding class in England

—Griffith

प्राक्कथन

गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' नाम की अमर कृति मानव-समाज को भेंट की है। इस उपकार के लिए, भारतवर्ष ही नहीं अपितु सारा संसार उनका गुण-गान करता है। ऐसे महा-पुरुष का जीवन वृत्त जितना भी जाना जाय उतना ही थोड़ा है, क्योंकि जन्म स्थान, पुत्र-कलत्र और परिवार के सम्बन्ध में अधिकाधिक परिचय कवि के काव्य भाव को स्पष्टतर करता रहता है।

गोस्वामीजी का प्रोज्वल आत्म जीवन कुछ समय से भ्रम-कुहेड़ी में आच्छादित होता जा रहा था, वह अब सत्यशोध सूर्य के उदय होने पर पुनः प्रकाश में आगया है। मुझे इस विषय में कुछ वर्षों से संलग्न पड़ा रहने का सुयोग प्राप्त हुआ है। मैंने अपने मित्र पण्डित भद्रदत्त शर्मा एवं भाई पंडित कृष्णादत्त भारद्वाज से प्रशस्त साहाय्य प्राप्त किया है। कतिपय अन्य मित्र महानुभावों का भी आभारी हूँ।

अनुसन्धान से संतुष्ट होकर, एटा जिले एवं बाहर की जनता ने तन मन धन से उद्योग कर गोस्वामी तुलसीदास की जीवनाकार, भव्य प्रस्तर प्रतिमा, उनके जन्म-स्थान सोरों में वाराह मन्दिर के सामने, वृहज्जलाशय में, उच्च सुन्दर पीठिका पर, स्थापित कर अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। एटा जिले के (तत्०) कलक्टर श्री जे० एम० लोबो प्रभु एम० ए०, आई० सी० एस० इस विषय में विशेष रुचि, उत्साह और प्रयत्न के लिए साधुवाद के पात्र रहे हैं।

मैं पाठकों के सामने गोस्वामीजी के हस्तलेख का नमूना एवं रामचरित-मानस के सम्बन्ध में कतिपय निजी विचार, उपस्थित करने की धृष्टता भी कर रहा हूँ, किन्तु केवल इसी उद्देश्य से कि इस विषय में भी अधिकाधिक शोध के लिए प्रयत्न होता रहे।

रा. भा.

विषय-सूची

चित्र-सूची

रत्नावली चरित्र

मुरलीधर चतुर्वेदि कृत। मुरलीधर चतुर्वेदी के शिष्य रामवल्लभ मिश्र की प्रति, सम्वत् १८६४ वि। पृष्ठ ११७

दोहा रत्नावली

रत्नावलि-कृत। गोपालदास की प्रति, सम्वत् १८२४ वि। पृष्ठ १६०

दोहा रत्नावली

रत्नावलि-कृत। गङ्गाधर की प्रति, सम्वत् १८२६ वि। पृष्ठ १६१

रत्नावली लघु दोहा संग्रह

रामचन्द्र की प्रति, १८७४ वि०। तुलसी पत्नी के १११ दोहे।
पृष्ठ १८८

रत्नावली लघु दोहा संग्रह

रत्नावलि-कृत। ईश्वरनाथ की प्रति, सम्वत् १८७५ वि। पृष्ठ१८६

सूकर क्षेत्र माहात्म्य भाषा

नन्ददास के पुत्र कृष्णदासकृत। मुरलीधर चतुर्वेद की प्रति, १८०६ वि०। गो० तुलसीदास और नन्ददास के वंश पर प्रकाश। पृष्ठ २२८

नृसिंह-मन्दिर

तुलसीदास और नन्ददास के विद्या गुरु नृसिंह जी की पाठशाला, सोरों [जिला एटा] चित्र सम्वत् १९९५ वि। पृष्ठ २३६

नृसिंह-मन्दिर

उक्त पाठशाला कुछ जीर्णोद्धार के पश्चात्, चित्र सम्वत् २००४ वि०
पृष्ठ २३७

वराह-मन्दिर-घाट, सूकर खेत

सूकरक्षेत्र (सोरों, जिला एटा, संयुक्त प्रान्त)। यहाँ तुलसीदास

के समय गङ्गाजी बहती थी, और इसमें लगभग दो फरलाङ्ग की दूरी से मुग़ल-सम्राट् अकबर के लिए गङ्गाजल आगरे जाता था। पृष्ठ २४८

सूकर क्षेत्र माहात्म्य

कृष्णदास कृत। इसमें तुलसीदास-नन्ददास की वंशावली का पर्याप्त वर्णन है। शिवसहाय की प्रति, सं० १८७०। पृष्ठ २४६

रामचरित मानस

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने शिष्यों से नकल करा के सोरों निवासी अपने भतीजे (अर्थात् महाकवि नन्ददास के पुत्र) कवि कृष्णदास को सम्पूर्ण 'राम चरित मानस' प्रदान किया था। पृष्ठ २६८

तुलसी-स्थान

योगमार्ग मोहल्ला, सोरों (जिला एटा) यहाँ से आज भी लोग जनवर की शान्ति के लिए मिट्टी ले जाते हैं। यह स्थान अब कच्चे घर के रूप में है, इसमें और इसके आस पास मुसलमान रहते हैं। २६६

तुलसीदास का हस्तलेख

सम्वत् १६४३ वि. में राम चरितमानस के आरण्य काण्ड पर गोस्वामी तुलसीदास के हाथ से संशोधित आधी चौपाई और कुछ अक्षर— अहे सदा अब लग गन वधिका; जग, ल, त, अति। पृष्ठ २६६

तुलसी-प्रतिमा

गोस्वामी तुलसीदास की यह प्रतिमा बाराह मन्दिर और घाट के सामने, 'हरि की पैरी' नामक जलाशय में, सन् १६४३ ई० में, स्थापित हुई थी। पृष्ठ ३२८

✱

उपक्रम

गोस्वामी तुलसीदास का प्रारंभिक जीवन एवं उनके पूर्व पुरुष, परिजन, घर बार आदि का परिचय कुछ समय से विवादास्पद होता आ रहा है। यों तो सभी इतिहास कालवश विस्मृति-तिमिर में विलीन हो जाते हैं, तथापि तुलसी-वृत्त पर अहम्मन्यता, स्वार्थ, दम्भ और पक्षपात ने विशेष कुठाराघात किया है। हिंदी साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावली को कोई स्थान नहीं मिला। स्थान की बात तो दूर रही, इस पुण्यश्लोका का नाम भी लुप्तप्राय हो गया। तुलसीदास की पत्नी के नाते यदि कभी इसकी चर्चा चली भी, तो विकृत और कुत्सित रूप में। वह कवि भी थीं, इसको तो हिंदी प्रेमियों को ठीक-ठीक पता भी नहीं। उनका जन्म स्थान, मातृ पितृ, कुल, विवाह एवं वृद्ध और और बातें इस समय वादानुवाद का प्रश्न विषय बन गई हैं, किंतु एतत्कालीन अन्वेषणों और आविष्कारों ने इस विषय के उन सब अनाधार मिथ्यावादों को छिपाकर बुद्धिगम्य, प्राचीन कथाओं और तथ्यों को प्रकाशित कर दिया। निम्नलिखित पंक्तियों में लेख्य प्रमाणों द्वारा मैं यह प्रतिपादन करने का यत्न करूँगा—

१—तुलसीदास का जन्म भारद्वाज गोत्रीय शुक्ल सनाढ्य ब्राह्मण-वंश में, आत्माराम और हुलसी के औरस से सूकर क्षेत्र (जिला एटा) में हुआ। हुलसी का जन्म स्थान तारी (ज़िला एटा) था।

२—गोस्वामीजी का विवाह रत्नावली से, सवत् १५८९ में हुआ। उनके तारापति नामक एक पुत्र हुआ, जो जन्म होने कुछ वर्ष पश्चात् ही परलोक सिधार गया, एवं गोस्वामीजी ने अपनी पत्नी के आकस्मिक ज्ञानोपदेश से, सवत् १६०४ विक्रमी में, ससार का माया-मोह छोड़ दिया।

३—रत्नावली बदरी निवासी पंडित दीनबन्धु पाठक की पुत्री थीं। इनका जन्म सवत् १५७७ वि. में हुआ, और उसी अभद्रक सवत्

१६०४ में, जब तुलसीदास घर-बार त्यागकर चले गये, रत्नावली की माता दयावती का देहांत भी हुआ।

४—रत्नावली ने २०१ उत्तम, स्त्री-शिक्षाप्रद दोहों की रचना की, जो अनेक स्थानों में उपलब्ध हैं। यह तपस्विनी, पति-परायणा देवी सवत् १६५१ वि० में परलोकवासिनी हुई।

५—बदरी-ग्राम को सं. १६५७ वि. में गंगाजी ने बहाकर नष्ट कर दिया। इसके उपरांत यह ग्राम दुबारा बसाया गया, जैसा आज भी स्थित है।

६—व्रज भाषा के प्रसिद्ध कवि पिता नंददास और पुत्र कृष्णदास क्रम से तुलसीदास के चचेरे भाई और भतीजे थे।

७—बदरी सोरों (वाराह—ऊकल—शूकर-क्षेत्र) के सामने एक ग्राम था, और उन दिनों उनके बीच में गंगाजी बहती थीं।

इसके पूर्व कि आगे बढ़ूँ, मैं चाहता हूँ, प्रचलित विचारों और मिथ्या-वादों की कुछ चर्चा कर दूँ—

श्रीरामचन्द्र शुक्ल और बाबू श्यामसुदर दास ने तो अपने इतिहासों में इस साध्वी का नाम भी नहीं लिखा। हाँ, बाबू श्यामसुन्दर दास और पं. रामनरेश त्रिपाठी ने रामचरितमानस की भूमिकाओं और श्रीसूर्यकांत शास्त्री एवं श्रीरामकुमार वर्मा ने अपने इतिहास में अवश्य रत्नावली, उनके पिता दीनबंधु पाठक और पुत्र तारक का उल्लेख किया है। खेद है, अनेक भूमिकाओं और इतिहासों में गोस्वामीजी को उनकी पत्नी से फटकार द्वारा बोध कराया गया है। यह फटकार ऐसी तीव्र है, जो किसी भी पतिव्रता के लिए सर्वथा अनुचित है—

लाज न लागत आपको, दौरे आएहु साथ;
धिक् धिक् ऐसे प्रेमको, कहा कहौं मैं नाथ।

अस्थि-चर्म मय देह मम, तामें जैसी प्रीति;
जैसी जो श्रीराम महँ, होति न तौ भव-भीति।

अनेक टीकाकार और भूमिका-लेखक दो और काल्पनिक घटनाओं का उल्लेख करते हैं। एक तो तुलसीदास के पास उनकी स्त्री ने यह दोहा लिख भेजा—

कटि की खीनी, कनक सी, रहत सखिन सँग सोय;
मोहिं फटे का डर नहीं, अनत कटे डर होय।

इस पर गोस्वामीजी ने यह उत्तर लिख भेजा—

कटे एक रघुनाथ सँग, बाँधि जटा सिर केस;
हम तो चाखा प्रेम-रस, पतिनी के उपदेश।

मेरी विनीत सम्मति में पत्नी का उपर्युक्त संदेश पतिव्रता के लिये उचित प्रतीत नहीं होता।

दूसरे वृद्धावस्था में तुलसीदास भूलकर अपनी ससुराल पहुँच गए। उस समय उनकी स्त्री जीवित थीं, और बहुत ही वृद्ध हो गई थीं। पहले तो दोनों में से किसी ने एक दूसरे को नहीं पहचाना, पर रात में भोजन के समय स्त्री को संदेह हुआ। सबेरे जब तुलसीदास जाने लगे, तब स्त्री ने अपना भेद प्रकट किया, और अपने को भी साथ रखने के लिये कहा; पर तुलसीदास ने स्वीकार नहीं किया। तब स्त्री ने कहा—

खरिया खरी कपूर लौं, उचित न पिय तिय त्याग;
कै खरिया मोहि मेलिकै, अचल करहु अनुराग।

यह सुनते ही तुलसीदास ने अपने झोले की सब चीजें ब्राह्मणों को बाँट दीं, और अपनी राह ली।

उक्त दोनों काल्पनिक घटनाओं का उल्लेख जनश्रुति के आधार पर श्रीरामगुलाम द्विवेदी और सर ग्रियर्सन ने सर्व प्रथम किया था। हो सकता

है, गोस्वामी तुलसीदास अपनी वृद्धा स्त्री और श्वशुर गृह को न पहचान पाये हों, किन्तु यह बड़े आश्चर्य की बात है कि वह उस गाँव को भी नहीं पहचान सके ! *

"मेरे ब्याह न बरेखी" और "काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब" के आधार पर कुछ समालोचकों का कथन है कि इनका विवाह न हुआ। जब विवाह ही न हुआ तो इन्हें किसी की लड़की से अपने लड़कों का विवाह तो करना नहीं था, इसीलिये यह निद्वन्द्व थे। "मेरे ब्याह न बरेखी" का अर्थ यह नहीं है कि "मेरा ब्याह या बरेखी नहीं हुई," पर इसका अर्थ है "मेरे यहाँ न तो ब्याह ही होना है और न बरेखी ही, क्योंकि किसी की बेटी से अपना बेटा तो ब्याहना नहीं है।" "काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब" का अर्थ इतना तो अवश्य निकल सकता है कि सम्भवतः उनके कोई जीवित संतान न हो, पर इसका अर्थ यह नहीं निकल सकता कि वे अविवाहित थे।... फिर विनयपत्रिका का यह पद

लरिकाईं बीती अचेत, चित चंचलता चौगुनी चाय।
जोबन-जुर जुबती कुपथ्य करि, भयो त्रिदोष भरि मदन-बाय।

तो स्पष्ट घोषित करता है कि तुलसीदास का विवाह हुआ था। बहिर्साक्ष्य तथा जनश्रुति के भी सभी प्रमाणों से सिद्ध होता है कि उनका विवाह हुआ था।" +

एक लेख में, जो ज्येष्ठ सं० १६६६ की 'मर्यादा' पत्रिका में प्रकाशित हुआ, श्री इन्द्र नारायण सिंहजी ने गोस्वामी तुलसीदास के शिष्य बाबा रघुबरदास रचित, 'तुलसी-चरित' नामक एक

---

* इंडियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द २२, १८६३ ई०, पृष्ठ २६४-२६८।

+ हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- (श्रीरामकुमार वर्मा), पृष्ठ ३६१।

पुस्तक का उल्लेख किया है। इनका कथन है, गोस्वामीजी राजापुर में सरयूपारीण ब्राह्मण मुरारि मिश्र के यहाँ उत्पन्न हुए। उनके दो बड़े भाई थे—गणपति और महेश, एवं मंगल नामक एक छोटा भाई था। गोस्वामीजी के तीन विवाह हुए। सबसे पिछली पत्नी कंचनपुर के लक्ष्मण उपाध्याय की पुत्री बुद्धिमती थी, जिसके कारण उसके पति ने विरक्त हो सन्यास ग्रहण किया, परंतु यह पुस्तक अभी तक किसी दूसरे पुरुष के दृष्टिगोचर नहीं हुई। रायबहादुर श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने इसे महत्व नहीं दिया, और मिश्र बंधुओं ने भी इस प्रमाण नहीं माना।

तुलसी-चरित में लिखा है, गोस्वामीजी ने भट्टोजी दीक्षित के व्याकरण-ग्रंथ और नागेश भट्ट का शेखर पढ़ा था। स्मरण रहे, गोस्वामी तुलसीदास का देहावसान १६२३ ई. (सं. १६८०) में हुआ, और भट्टोजी १६३०ई० (सं. १६८७) में प्रकाश में आए; शेखर तो ईसा की १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ की रचना है। अतएव तुलसी-चरित नितांत अप्रामाणिक है। मैंने इस विषय का विशेष विवेचन 'तुलसी-चर्चा' नामक ग्रंथ और 'नवीन भारत' के तुलसी-अंक (मार्च, १९४१) में किया है और यथास्थान आगामी पृष्ठों में भी होगा।

भक्त-कल्पद्रुम और हिंदी-नवरत्न के रचयिता तुलसीदास को कान्यकुब्ज ब्राह्मण की पदवी प्रदान करते हैं। काठजिह्व स्वामी उन्हें पाराशर गोत्रीय दुबे पतिऔजा बतलाते हैं, एवं ठाकुर शिवसिंह, पं० रामगुलाम द्विवेदी और सर जार्ज ग्रियर्सन किंवदंती के आधार पर उन्हें सरवरिया-कुल से संबद्ध करते हैं।

---

* गोस्वामी तुलसीदास (बाबू श्यामसुंदर दास और डा० पीतांबर दत्त बड़थ्वाल), मिश्रबंधु-विनोद, प्रथम भाग, पृष्ठ २६८-२६६; तुलसी-ग्रंथावली प्रस्तावना, पृष्ठ १७।

स्वर्गीय प० रामचन्द्र शुक्ल गोस्वामीजी को सरयूपारीण ब्राह्मण सिद्ध करने के उत्सुक हैं, और इसके लिए आप पूर्वोक्त तुलसी चरित का सहारा लेते हैं, जिसे आज तक बाबू इंद्र नारायण सिंह के अतिरिक्त किसी दूसरे ने नहीं देखा, जैसा शुक्लजी ने स्वयं स्वीकार किया है।× वह सदा से प्रमाणीभूत इस कथोपकथन को जानते मानते हैं (जिसका समर्थन ग्रियर्सन, ग्रौज एवं अन्य योरप-निवासी लेखक भी करते हैं।) कि गोस्वामी तुलसीदास आत्माराम और हुलसी के पुत्र थे। दीनबंधु पाठक की पुत्री रत्नावली से उनका विवाह हुआ, तारापति नाम का उनके एक पुत्र हुआ, जो जन्म से थोड़े ही दिन पीछे परलोकगामी हो गया। तथापि शुक्लजी इस निर्णय की ओर झुके प्रतीत होते हैं कि गोस्वामीजी मुरारि मिश्र के पुत्र थे, उनके तीन विवाह हुए, और अंतिम विवाह बुद्धिमती से हुआ। ऐसा क्यों ? क्योंकि 'तुलसी चरित' ऐसा कहता है। वे ग्रियर्सन की इतनी सम्मति को तो उचित समझते हैं कि गोस्वामीजी राजापुर में और सरयूपारीण ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए, किंतु इससे आगे वे नहीं मानते। अपने अभिप्राय-साधन के निमित्त वे 'रामबोला' शब्द की क्लिष्ट-कल्पित निरुक्ति 'राम ने अपना बोल दिया' करते हैं, इसी प्रकार 'जनमि' शब्द का अर्थ बतलाते हैं 'जिसने जन्म दिया है।' + 'विनय पत्रिका' और 'कवितावली' के जिन वाक्यों का अर्थ प० सुधाकर द्विवेदी आदि विद्वान् यह करते हैं कि तुलसीजी को बचपन में माता-पिता ने त्याग दिया था, उन्हीं वचनों के अनुसार शुक्लजी की सम्मति में तुलसीदास बचपन में अपने माता पिता द्वारा काम धन्धे में मन न लगने के कारण अलग कर दिए गये। इन सब बातों को शुक्लजी ने 'तुलसी चरित' रूप गोप्य निधि के आधार पर माना था।

× तुलसी-ग्रंथावली (प्रस्तावना), पृष्ठ १७।

+ तुलसी ग्रंथावली (प्रस्तावना), पृष्ठ २४-२५।

शुक्लजी इस बात को स्वीकार नहीं करते कि नददास तुलसीदासजी के सबधी थे। बिना किसी युक्ति या प्रमाण के उनका कथन है कि 'दो सौ बावन वैष्णव वार्ता' की ख्याति के तुलसीदास दूसरे तुलसीदास थे, जो सनाढ्य ब्राह्मण थे; किंतु उक्त 'वार्ता' के अनेक स्थल सिद्ध करते है कि गोस्वामीजी रामायण के कर्ता एव नददास के भाई थे, और काशी, चित्रकूट आदि में उनका निवास रहता था। * जब बैजनाथ दासजी तुलसीदास और नददास

---

*"अब श्री गुसाईजी के सेवक नददास सनोडिया ब्राह्मण तिनके पद गाइयत हे सो वे पूर्व में रहते तिनकी वार्ता॥ सो वे नंददास और तुलसीदास दोइ भाइ हते॥ ता म बड़े तो तुलसीदास छोटे नददास। सो वे नददास पढ़े बहुत हते॥ और तुलसीदास तो रामानदी के सेवक हते॥—"श्री गुसाईजी के सेवक चारि अष्ट छापी तिनकी वार्ता," सवत् १६६७।

"अब श्री गुसाईजी के सेवक नददासजी सनाढ्य ब्राह्मण रामपुर म रहते जिनके पद अष्ट छाप मे गाइयत हे तिनकी वार्ता। सो वे तुलसीदासजी के भाई सनोडिया ब्राह्मण हते। सो लसीदासजी तो बड़े भाई और छोटे भाई नन्ददासजी हे। सो वे नन्ददासजी पढ़े बहुत हते। और तुलसीदास तो रामानदीन के सेवक हते।—सम्वत् १७५२ की 'भाव प्रकाश' वाली वार्ता।

"सो बड़े भाई तुलसीदास हते और छोटे भाई नन्ददास हते। सो वे नन्ददास पढ़े बहुत हते और तुलसीदास तो रामानदजी को सेवक हतो। सो तब नददास हू को रामानंदजी का सेवक करायो।

"सो तब कितनेक दिन में वह सग कासीमें आय पहुँच्यो। तब नददास के बड़े भाई तुलसीदास हते सो तिनने सुनी जो यह सग मथुराजी को आयो है। तब तुलसीदास ने वा सग में आयके पूछ्यो जो उहाँ श्रीमथुराजी में श्री

को एक ही गुरु के शिष्य बतलाते हैं, तब शुक्लजी कहते है कि यह कैसे हो सकता है कि एक गुरु के दो शिष्य दो विभिन्न सम्पदायों(रामकृष्ण)के अनुगामी

गोकुल में नन्ददास नाम करिके एक ब्राह्मण यहाँ सो गयो सो पहिले उहाँ सुन्यो हतो सो काहू ने देख्यो होय तो कहो तब एक वैष्णव ने तुलसीदास सों कही जो एक सनोडीया (सनाढ्य) ब्राह्मण है सो ताको नाम नंददास है सो वह पढ्यो बहुत है सो वह नन्ददास तो श्रीगुसाईजी को सेवक भयो है।

"और एक समय नन्ददास को बड़ो भाई तुलसीदास ब्रज में आयो ता पीछे श्रीमथुराजी में तुलसीदास आये सो तब आयके पूछी सो यहाँ श्रीगुसाईजी को सेवक नन्ददास कहाँ रहत है.............. तब तुलसीदास ने नंददास के पास आयके कह्यो जो नंददास तू ऐसे कठोर क्यों भयो है..............तेरो मन होय तो अजोध्या में रहियो तेरो मन होय तो प्रयाग में रहियो चित्रकूट में रहियो।

"सो एक दिन नंददासजी के मन में ऐसी आई जो जैसे तुलसीदासजी ने रामायण भाषा करी है सो हमहूँ श्रीमद्भागवत भाषा करें।"—दो सो बावन वैष्णवोंकी वार्ता।

"जो मर्यादा मार्ग मे श्रीरामचन्द्रजी के भक्त तुलसीदास बहोत बड़े वैष्णव हते ताके अनेक पद हैं। रामायण ग्रन्थ पद्य बध कवित बध चौपाई बध ऐसे अनेक कीनें हैं......उनके भाई नंददासजी बहोत विषयी हते ...श्रीगोकुल आयके श्रीगुसाईजी की शरण आये और अष्टछाप में प्रख्यात भये......पिछे तुलसीदासजी भाई की खबर लेवे ब्रज मे आये। सो एतो राम उपासी हते और ब्रज में तो सब ठिकाणे कृष्ण कृष्ण की धुनि सुनी।

-मने। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या गुरुशब्द, विद्यागुरु और दीक्षागुरु का वाचक नहीं ? क्या यह असम्भव है कि दो मानवों का, अथवा पिता के दो पुत्रों का, विद्या-गुरु एक पुरुष हो, और दीक्षा गुरु उससे भिन्न दूसरा पुरुष ? यही क्यों ? शुक्लजी को तो 'सोरों गोस्वामी तुलसीदास की जन्मभूमि है,' यह कहना तक नहीं सुहाया। आपका विश्वास है, शूकरक्षेत्र, जिला एटा, के अन्तर्गत सोरों नहीं, किन्तु 'गोंडा' का शूकरक्षेत्र है। परन्तु आपने अपने इस विश्वास की सत्ता में कोई युक्ति नहीं दी है। * प० माधव प्रसादजी त्रिपाठी का कथन है कि शूकरक्षेत्र सोरों ही है, और ग्रीअर्ज साहब भी इसी मत के पोषक हैं।+ कासगज वास्तव्य मेरे सुयोग्य मित्र प० भद्रदत्तजी सर्व-प्रथम सज्जन हैं, जिन्होंने प्राचीन लेखों द्वारा अत्यन्त सदेह-शील व्यक्ति के भी सम्मुख यह सिद्ध कर दिया है कि सोरों, शूकरक्षेत्र

तब तुलसीदास ने एक साखी कही......पाछे भाई सों मिले तब कह्यो जो तैने व्यभिचार धर्म क्यों कीनो अपने प्रभून को छोड़ि अन्य धर्म के आचरण क्यों करत है। अब पिछो चालि"—बावन वचनामृत (गोस्वामी श्रीकाका वल्लभजी महाराज-कृत)

"नददासजी अष्ट काव्य वारे सो तुलसीदास के छोटे भाई॥ तुलसीदास बड़े भाई॥ सो नददासजी जब भी गुसांई के सेवक भए तब तुलसीदास ने कह्यो भाई तैंने विभीचार कीयो तब नददासजी ने कह्यो विभीचार तो कीयो परन्तु सुख बहुत पायो॥ २३०॥—श्रीगोकुलनाथजी के वचनामृतों का सग्रह, अतोपुरा की लगभग सम्वत् १७०० की प्रति, श्रीद्वारकादास पुरुषोत्तमदास, काकरोली के पास।

* हिंदी-साहित्य का इतिहास (प० रामचद्र शुक्ल), पृष्ठ १४६ (नवीन सस्करण)।

+ तुलसी-ग्रन्थावली, निबन्धावली, पृष्ठ ४५।

और वाराहक्षेत्र एक ही स्थान हैं ।× मैं संक्षेप में पुनः यथासमय इसकी चर्चा करूँगा ।

लगभग बीस वर्ष हुए, बाबा वेनी माधव दास कृत 'मूल गोसाईं-चरित' नामक एक पुस्तक अकस्मात् आ गई । इसमें लिखा है, तुलसीदास सं० १५५४ वि० श्रावण की सप्तमी को राजापुर में उत्पन्न हुए । उनकी माता हुलसी का देहान्त इनके जन्म से पाँचवें दिन हो गया । वह अपने पुत्र तुलसी के पालन का भार मुनिया नाम की एक दासी को दे गईं, क्योंकि पिता बालक का परित्याग कर देना चाहते थे । तुलसी का पालन पोषण मुनिया की सास चुनिया ने किया । परन्तु जब सर्प दंश से उसकी मृत्यु हो गई, तब बालक तुलसी का लालन पालन कुछ समय तक देवी पार्वती ने किया, और अन्त में गोस्वामीजी की शिक्षा-दीक्षा इनके गुरु नरहर्यानन्दजी ने की, और आगे चलकर इन्हें उच्च शिक्षा के निमित्त शेषसनातनजी को सौंप दिया, जिन्होंने इनके ग्रहण की स्वयं ही इच्छा प्रकट की थी । दूसरे गुरु की मृत्यु के उपरांत तुलसी से अपनी जन्मभूमि को लौट जाने के लिये कहा गया । तुलसी को वहाँ जाने पर वंश का कोई व्यक्ति जीवित नहीं मिला । उनके गुणों पर मोहित होकर तारीपति के एक ब्राह्मण ने उनके साथ अपनी सुन्दरी कन्या का विवाह करने के लिये तुलसी को अपने अनुकूल कर लिया । एक दिन ऐसा हुआ कि तुलसी-भार्या स्वामी की अनुपस्थिति में अपने पिता के घर चली गईं । तुलसी उसके बिना बड़े बेचैन हुए, और आधी रात के समय तत्क्षण अपनी प्रिया के लिये चल पड़े; परन्तु अपनी मनोमोहिनी की झिड़कियों से उनकी बुद्धि ठिकाने आ गई, और इसका फल यह हुआ कि उसके पतिदेव संसार से विरक्त हो गए । उक्त पुस्तक में तुलसी के जीवन काल की पिछली अनेक

× नवीन भारत (तुलसी अंक), जनवरी, १९४१: तुलसी-चर्चा (लक्ष्मी प्रेस, कासगंज), पृष्ठ २०-६४ ।

घटनाओं का वर्णन मिलता है। इसम तुलसी के पिता के नाम, एवं उनके श्वशुर और पत्नी की विशेष रूप से चर्चा नहीं की गई, और शूकरखेत की स्थिति सरयू और घाघरा नदियों के सगम पर बताई गई है। इस पुस्तक का नाम विचित्र सा है। कुछ समालोचक तो, जिनकी सहानुभूति इसके साथ नहीं, इसे 'भूल गुसाईं चरित' अर्थात् 'भूल से लिखी हुई गुसाईंजी की जीवनी' कहते हैं। इसे विद्वद्वर रायबहादुर श्याम सुन्दर दास का (जो उस समय बनारस हिंदू यूनीवर्सिटी के प्रधान थे) समर्थन प्राप्त है। किंतु इसके साथ ही आपके प्रसिद्ध उत्तर-पदाधिकारी स्वर्गीय पंडित रामचंद्र शुक्ल द्वारा की गई खुली निंदा भी।× अनेक विद्वानो ने तो इस अत्यंत सन्देह और शका की दृष्टि से देखा है। हिंदी मंदिर, प्रयाग, के पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने ऐसा सन्देह किया है कि 'अयोध्या के कनक भवन में इसकी गोलमाल रचना हुई है।' 'मूल गुसाईं-चरित की अप्रामाणिकता' शीर्षक एक लेख में, जो सुधा (एप्रिल, १६४०) में और परिवर्द्धित रूप में 'नवीन भारत (तुलसी अक—मार्च, १६४१) और तुलसी-चर्चा (पृष्ठ १११-१२६) में प्रकाशित हो चुका है, मैंने उक्त चरित के विपरीत अनेकानेक प्रमाण दिए हैं, जिन्हें मैं यथास्थान पुन प्रदर्शित करूँगा। तुलसी साहब ने अपनी 'घट रामायन' नामकी पुस्तक में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वह अपने किसी पूर्व जन्म मे गो॰ तुलसीदास ही थे और राजापुर में जन्मे थे। इस पर कुछ विद्वानों ने विचार किया है, मैंने भी 'घट रामायन की अप्रामाणिकता'+ नामक लेख में विचार

× हिंदी साहित्य का इतिहास (पंडित रामचंद्र शुक्ल)।

तुलसीदास और उनकी कविता, पहला भाग (रामनरेश त्रिपाठी), पृष्ठ ६१-६४।

+ 'माधुरी,' फरवरी, १६४२ और 'नवीन भारत', दिसम्बर, १६४१।

'किया और कुछ नवीन प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। इसकी चर्चा पुन यथास्थान होगी।

सोरों का प्रसग कुछ लोगों के केवल दुराग्रह के कारण तिमिराधकार में पड़ गया है। इस प्रसग के अनुसधानानतर उल्लेख भारतीय और योरपीय विद्वानों ने अनेक रूप में किए हैं, जिनमें से सभी को 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता', 'भक्तमाल', 'भक्ति रस बोधिनी' के सदृश अपर्याप्त, किन्तु यथार्थ सूचना देनेवाली थोड़ी सी पुस्तकों पर अवलम्बित रहकर सन्तुष्ट रहना पड़ा है। इस विषय में कतिपय जनश्रुतियों के अतिरिक्त, भारतीयों म प० रामनरेश त्रिपाठी,× पडित गौरीशकर द्विवेदी,= और पडित गोविंद वल्लभ भट्ट के नाम हैं। योरपवासियों म ग्रियर्सन+ और ग्रौज़ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ग्रियर्सन का मत है कि गोस्वामी तुलसीदास की जन्मभूमि राजापुर थी, किन्तु ग्रौज़ को यह बात मान्य नहीं, यद्यपि ये दोनो एव अन्य विद्वान् इस विषय में सहमत है कि सन्त कवि गोस्वामी तुलसीदास आत्माराम और हुलसी के पुत्र और नरहरि के शिष्य थ, दीनबधु पाठक की पुत्री रत्नावली से उनका विवाह हुआ था, तारापति नामक इनके एक पुत्र हुआ था, जो जन्म से कुछ ही दिन पीछे इस ससार से चल बसा। ग्रौज़ का कथन है कि गुरु नरहरिजी शूकरक्षेत्र या ऊकरक्षेत्र में रहते थे और यह शूकरक्षेत्र सोरों ही है।

प० गोविंद वल्लभ भट्ट कुछ अनमोल हस्तलिखित पुस्तकों की खोज के

× तुलसीदास और उनकी कविता।

= (१) बुदेल-वैभव, (२) सुकवि सरोज, (३) महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजी (माधुरी, आषाढ़, १६८६ वि०)।

गोस्वामी का जन्म स्थान राजापुर अथवा शूकरक्षेत्र (सोरों), माधुरी, आश्विन, १६८६ वि०

+ नोट्स ऑन तुलसीदास, इंडियन एंटिक्वेरी, जिल्द २२, १८८३।

लिये विशेष यश और साधुवाद के योग्य हैं, जिससे रत्नावली, उसकी रचित पुस्तकों एवं उसके पतिदेव गोस्वामी तुलसीदासकी आद्य-जीवन घटना पर भी प्रचुर प्रकाश पड़ता है। परन्तु ये पुस्तकें अब तक सर्वत्र अज्ञात रही हैं। सन् १६३६, फरवरी और जून के 'विशाल भारत' में मुझे रत्नावली और नन्द-दास पर एक लेख प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। तब से विशाल-जनता को इनका कुछ आभास सर्वप्रथम प्राप्त हुआ। उस समय से और भी कतिपय हस्तलिखित पुस्तकें मेरे दृष्टिगोचर हुईं, जिनकी उपलब्धि विशेषकर प० भद्रदत्त शर्मा की कृपा से हुई। यहाँ उन पुस्तकों का थोड़ा-सा विवरण दे देना उचित है।

निम्न निर्दिष्ट हस्त लिखित पुस्तकों मे से न. ७ और ८ कासगाज वास्तव्य मेरे मित्र (अब स्वर्गीय) पं० हर गोविंद पंडा के निजी पुस्तकालय से मिलीं। न. २ (अ)- बदायूँ वासी बाबू गयाप्रसाद द्वारा स्वर्गिय प. शिव-नारायणजी वैतरान के पुस्तकालय से प्राप्त हुई, और शेष सोरों वासी पूर्वोक्त प. गोविंद वल्लभ भट्ट से।

१—गोस्वामी तुलसीदासजी की अर्धाङ्गिनी रत्नावली की जीवनी 'रत्नावली चरित' : इसकी रचना प. मुरलीधर चतुर्वेदी ने की थी, जिनका जन्म स. १७४६ वि. मे हुआ। इस बात को दो सौ चालीस वर्ष से अधिक हो गए, अर्थात् ६८ वर्ष रत्नावली की और ६६ वर्ष तुलसीदासजी की मृत्यु के पीछे। दो हस्तलिपियाँ इस विषय में प्राप्त हैं। उनमें से एक को तो स्वय ग्रन्थकर्ता ने सोरों-क्षेत्र में श्रावण शुक्ल १, भृगुवार, स.१८२६ वि., अर्थात् शुक्रवार, ३१ जुलाई, १७७२ ई. को पूर्ण किया। उसकी पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्रीरत्नावलीचरित सपूर्णम् शुभम्। सवत् १८२६ श्रावण शुक्ल १ प्रतिपदायाम् शुक्रवासरे लिखितम् चतुर्वेदमुरली-धरेण सोरोंक्षेत्रे शुभ भवतु॥ दूसरी प्रतिलिपि उनके शिष्य राम वल्लभ मिश्र ने सोरों में मार्गशीर्ष शुक्ल ६, शनिवार, स १८६४ वि., तदनुसार शनिवार,

५ दिसम्बर, १८०७ ई० को की थी। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है—
इति श्रीरत्नावली सपूर्णाम् लिपितम श्रीमुरलीधर चतुर्वेदिशिष्येन रामवल्लभ मिश्रेन सोरों मध्ये सवत १८६४ ॥ मार्गशिरमासे शुक्लपक्षे ६ शनिवासरे। कृष्णाय नम । शुभम् शुभम् शुभम् शुभम् शुभम् शुभम् भूयात्"

२—रत्नावली रचित दोहे, जो अब तक अज्ञात रहे, हस्त लिखित चार सस्करणों में प्राप्य हैं, अर्थात्—

(अ) रत्नावली कृत 'दोहा रतनावली' यह २०१ दोहों का सग्रह है, जिसको श्रीगोपालदास ने बदायूँ निवासी मुशी माधवराय कायस्थ सक्सना के निमित्त स० १८२४ वि० के भाद्रपद कृष्ण अमावस्या, सोमवार, अर्थात् सोमवार, २४ अगस्त, १७६७ ई० को किया था, इसकी पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्रीरतनावली कृत दोहा रतनावली सम्पूर्णम् ॥ सम्वत् १८२४ ॥ भाद्रपदमासे कृष्णपक्षे ३० अमावस्याम् सोमवासरे ॥ लिखितम गोपालदासेन मुशी माधौराइ निमित्तम् शुभम् भवतु ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥ मगल भगवान् विष्णुर्मगल गरुडध्वज, मगल पुण्डरीकाक्ष मगलायतनो हरि ॥ १ ॥ शुभम् "

(आ) 'दोहा रतनावली' दो सौ एक दोहों का यह सग्रह श्रीगगाधर ब्राह्मण द्वारा वाराहक्षेत्र (जोगमार्ग के समीप) स० १८२६ वि० भादों सुदी ३, सोमवार, अर्थात् सोमवार, ३१ अगस्त, १७७२ ई० का किया गया। पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्रीसाध्वी रतनावली की दोहा रतनावली सपूरनम् शुभम् सम्वत् १८२६ भादौं शुदि ३ चन्द्रे लिषितम् गगाधर ब्राह्मण जोगमारगसमीपे वाराहक्षेत्रे श्रीरस्तु शुभमस्तु "

(इ) 'रतनावली लघु दोहासग्रह,' अर्थात् रत्नावली के बनाए १११ दोहों का छोटा सग्रह इसे प रामचन्द्र ने स चैत्र कृष्ण १३, भृगुवार, स० १८७४, तदनुसार एप्रिल, १८१७ ई में सग्रह किया। पुष्पिका—"इति श्री रतनावली लघु दोहा-सग्रह सपूर्णम् ॥ लिखितमिदम् पुस्तकम् पण्डित रामचन्द्र

चदरियाग्रामे शुभ सम्वत् १८७४ चैत कृष्णा १३ भृगुवासरे। ॐ नम भगवते वराहाय। शुभम् भूयात्

॥ इति ॥

छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥"

(ई) 'रत्नावली लघु दोहा संग्रह' : यह भी रत्नावली के १११ दोहों का संग्रह है। यह सकलन ईश्वरनाथ पडित ने सोरों में माघ शुक्ल १३, सोमवार, सवत् १८७५, तदनुसार सोमवार, ८ फरवरी, १८१६ ई. को किया। पुष्पिका—"इति श्रीरतनावली लघु दोहासंग्रिह सपूरनम् ॥ लिपितम् ईसुरनाथ पंडीत सोरों जी मिती माह सुदी तेरसि १३, सोमवार सवत् १८७५ मे ॥ गंगा ॥"

३—श्रीरामचरित-मानस का बालकांड : इसकी प्रतिलिपि बनारस में रघुनाथदास ने वि. स. १६४३ और शक स. १५०८ मे नददास के पुत्र कृष्णादास के लिए की थी। पुष्पिका—"इति श्रीरामचरित्र मानसे सकलकलिकलुषविध्वसने विमल (वै) राग्य सपादिनी नाम १ सोपान समाप्त सवत् १६४३ शाके १५०८·········वाछी नददास पुत्र कृष्नदास हेत लिपी रघुनाथदास ने कासीपुरी में।"

४—रामायण का आरण्यकांड : इसकी प्रतिलिपि सोरों क्षेत्र निवासी अपने भ्रातृपुत्र कृष्णादास के लिए गुरु श्रीतुलसीदास ने आज्ञा देकर लक्ष्मणदास से आषाढ़ सुदी ४, भृगुवार, स. १६४३ वि., अर्थात् शुक्रवार, १० जून, १५८६ ई० को कराई। पुष्पिका—"इति श्रीरामायने सकलकलिकलुषविध्वसने विमल वैराग्यसपादनि षटमुक्तसवादे रामवनचरित्रवर्ननो नाम तृतीयो सोपान आरण्यकांड समाप्त ॥ ३ ॥ श्रीतुलसीदास गुरु की आज्ञा सों उनके भ्रातासुत कृष्णादास सोरों क्षेत्र निवासी हेत लिखित लछिमनदास कासी जी मध्ये सम्वत् १६४३ आषाढ़ सुद ४ सुके इति"

५—सूकरक्षेत्र-माहात्म्य : इसकी रचना कृष्णादास ने की। इस प्रति

में कुछ छंद मुरलीधर चतुर्वेदी रचित भी हैं । इन दोनों की प्रतिलिपि साथ-साथ सोरों में शिवसहाय कायस्थ ने कार्तिक बदी ११, बुधवार, १८७० वि., तदनुसार बुधवार, १७ नवबर, १८१३ को पूर्ण की । इस तुलसीदास और नंददास के कुटुंब पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । पुष्पिका-

"श्री गणेशाय नम. ॥ ॐ नमो भगवते वाराहाय ॥

अथ कृष्णदास-कृत सूकरक्षेत्रमहात्म भाषा लिख्यते ।

सोरठा

वागपति गिरा गिरीश, गिरिजा गंगा गुरु चरन ।
बंदहुँ पुनि जगदीश, छवि वराह महि उद्धरन ॥ १ ॥
बंदहुँ तुलसीदास, पितु बड़ भ्राता पद जलज ।
जिन निज बुद्धि विलास, रामचरितमानस रच्यौ ॥२॥
सानुज श्रीनंददास, पितु की बंदहुँ चरन-रज ।
कीनो सुजस प्रकास, रास पंच-अध्याय भनि ॥३॥
बंदहुँ कृपा निकेत, पितुगुरु श्रीनरसिंह पद ।
बंदहुँ शिष्य समेत, वल्लभ आचारज सुखद ॥४॥
बंदहुँ कमला मात, बन्दहुँ पद रत्नावली ।
जासु चरनजलजात, सुमिरि लहहिं तिय सुरथली ॥५॥
सुकुल बंश दुज मूल, पितरन पद सरसिज नमहुँ ।
रहहिं सदा अनुकूल, कृष्णदास निज अंस गनि ॥६॥

लेखकपाठकयो: शुभं भूयात् ॥ संवत् १८७० मिती कातिक बुदी ११ एकादशी बुधवासरे ॥ लिखित शिवसहाय कायस्थ सोरोंमध्ये ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ अथ मुरलीधर-कृत छप्पै लिख्यते ॥ जय-जय आदि वराहदेव सपभूमि महावनि..........॥ इति छप्पै सम्पूर्णम् ॥ कृष्णदास-पदावली......

श्यामायन
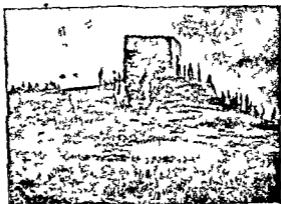
श्यामपुर (ग्राम् रामपुर में सोरों से लगभग डेढ मील पूर्व, महात्म नन्ददास निर्मित कृष्ण-बलदेव मंदिर के खंडहर

दे० पृ० २

श्यामसर

सोरों में लगभग डेढ़मील पूर्व, श्यामपुर (ग्राम् रामपुर) में, श्यामा के सामने, महात्मा नन्ददास निर्मित सरोवर

दे० पृ०

नंददास सुत हौं भयो कृष्णदास मतिमंद ॥ चंद्रहास बुध सुत श्रहै चिरजीवी घजचंद ॥ १० ॥ इति ॥

६—सूकर क्षेत्र माहात्म्य कृष्णदास कृत।

मुरलीधर चतुर्वेदी हस्तलिखित प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है— "इति......श्रीभाषा शूकरक्षेत्रमहात्म्यं सम्पूर्णम् सम्वत् १८०६ लिखितम् च० मुरलीधरेण।"

७—कृष्णदास-कृत वंशावली—मुरलीधर चतुर्वेदी की प्रति १८२६: इसमें कृष्णदास के वंश का अच्छा परिचय है। रत्नावली चरित के साथ एक जिल्द में है।

८—प्रियादास-रचित 'भक्तिरस बोधिनी' पर सेवादास की टीका: भक्तिरस-बोधिनी नाभादास-कृत भक्तमाल की टीका है। सेवादास ने अपनी टीका मार्गशीर्ष शुक्ला १०, बृहस्पतिवार, सं० १८६४ वि०, तदनुसार गुरुवार, ७ दिसम्बर, १८३७ में लिखी। इससे तुलसीदास, रत्नावली और नंददास पर कुछ प्रकाश पड़ता है, और इसमें रत्नावली के पिता के निवास स्थान बदरी का भी उल्लेख मिलता है।

श्रीनाभादासजी ने अपने भक्त-माल में गोस्वामीजी के विषय में केवल एक छन्द लिखा है, जो इस प्रकार है—

त्रेता काव्य निबंध करी शत कोटि रमायन।
इक अक्षर उचरै ब्रह्महत्यादि परायन।
अब भक्तन सुखदैन बहुरि लीला विस्तारी।
राम-चरन-रस मत्त रहत अहनिशि व्रतधारी।
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लियो।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो ॥ १ ॥

इस पर टीका में प्रियादासजी ने अनेक छंद लिखे हैं। एक इस प्रकार है —

तिया/निसा सो सनेह बिन पूछे पिता गेह गई।
भूली सुधि देह भजे वाही ठौर आये हैं।
वधू अति लाज भई रिस सौं निकस गई।
प्रीति राम नई तन हाड़ चाम छाए हैं।

उक्त छन्द में 'वाही ठौर' को स्पष्ट करते हुए सेवादासजी अपनी टीका में इस प्रकार लिखते हैं—

सूनो लखि गेह उमड़यो तिय-सनेह जिय,
रत्नावलि दर्श हेत नैन अकुलाये हैं।
भादों की अरध राति चचला चमकि जाति,
मद मद बिंदु परैं घोर घन छाये हैं।
ऐसे में तुलसी पेत सूकर सों मोद भरे,
चपल चाल चलत जात गङ्गधर धाये हैं।
शव पै सवार है गङ्गधार पार करी,
बदरी ससुरारि जाय पौरिया जगाये हैं।

भक्तमाल में नाभाजी ने नन्ददासजी के विषय में इस प्रकार लिखा है, जिससे स्पष्ट है कि नन्ददासजी रामपुर ग्राम के रहनेवाले थे—

लीला पद रस रीति ग्रन्थ रचना मे नागर।
सरस उक्ति जुत युक्ति भक्ति रस गान उजागर।
• प्रचुर पयधलों सुजस रामपुर ग्राम निवासी।
सकल सुकुल सवलित भक्त पद रेनु उपासी।
चन्द्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम पथ में पगे।
श्रीनन्ददास आनन्दनिधि रसिक सुप्रभुदित रग मगे॥ २॥

सेवादास की टीका में नन्ददास का जो उल्लेख है, उससे स्पष्ट है कि नन्ददास और तुलसीदास का कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य था।

सेवादास की टीका का प्रारम्भ इस प्रकार होता है—"

श्रीमते रामानुजाय नमः ।। श्रीहरिगुरु वैष्णवेभ्यो नमः ।। अथ श्रीभक्तमाल टीका सहित लिख्यते ।। तहाँ अर्थ भक्तमाल में लिष्या है ।। भक्त भक्ति भगवन्त गुरु ।। सो चारि सरूप लिषे हैं। तहाँ हरि का सरूप न लिष्यो जाय कठिन है ।।......इति श्रीभक्तमाल टीका रसत......गारे स्थान को नाम लिख्यते ।।

(चौ) पाई—श्रीर......सवारा तामें सन्त अनेक प्रकारा

वंशीवट गोपेश्वर पास ध्यान गूदरी आगे वास ।। १ ।।

तहाँ छेतर रतलाम को जानौं, सब सुष धाम सुबारहि मानौं ।

मूरति तीस रहैं जहां छाये, सुषप्रद वास जानि सब आये ।

दोहा—तिन मधि रुक्मिणीमनी, छन पीरहरन काम,

सरणागत प्रतिपाल हैं, नाम श्री १०८ साधूराम ।। १ ।।

तिनकी पादत्राण को रक्षक सेवादास,

जन्म-जन्म यह बंदगी दीजे और न आस ।। २ ।।

सदा जाय आनंद में, घड़ी पल छिन दिन रैन,

कबहु दुष व्यापै नहीं, रहत हैं सुष के ऐन ।। ३ ।।

सेवादास दसकत लिष, तामें षोट अपार,

पंडित सुरता संत जन, लीज्यो त्रुटि सुधारि ।। ४ ।।

संमत् साल लिष्यते ।।

अगहन सुक्ला दशमी वार वृहस्पत जानि

संवत् १८सै लिषै साल चौराणवा मानि ।

२ श्रीहरी पुर सरस्वतीजी म्हाराजि की कृपा प्रसाद है ।

र र र र र र र र र र र र र र र र र र

र र र र र र र र र र र र र र र र र र"

६—नन्ददास-कृत भ्रमरगीत के दो पत्रे। इनकी प्रतिकृति बाल-कृष्ण ने नन्ददास के पुत्र एवं अपने गुरु कृष्णदास की प्रेरणा से सोरों में माघ कृष्णा ३ सोमवार को सं० १६७२ वि०, तदनुसार सोमवार ६ फरवरी, १६१५ ई० में की थी। इससे गोस्वामी तुलसीदासजी के वंश पर प्रकाश पड़ता है, और इससे पता चलता है कि उनका गोत्र भारद्वाज तथा शासन 'शुक्ल' था। वह सनाढ्य ब्राह्मण थे और रामायण के रचयिता भी। ये पत्रे बहुत कुछ जीर्ण-शीर्ण और भंगुर हैं। इनकी प्रतिलिपि इस प्रकार है—

"रही नाइ सुध कोऊ रोम रोम प्रति गोपिका है गई छिपरे पात कल्प तरोवर साँवरा ब्रज वनिता भई पात उलहि अग अंग ते॥......॥ हो सोमतु हो सषा मलो पठयो सुधि लावन औगुन हमरे आनि तहाँ ते लग्यो बतावन उनमें मो में हे सषा छिन भर अंतर नाहिं जो देषी मो मोहि वे मेंह। उनही माहि तरग और वारि जो॥.........॥ गोपी रूप दिषाय अंग करिके वनमाली ऊधौ भ्रम निवार.........। .... भ्रमरगीत सपुरनम.........त नंददास भ्राता"

"तुलसीदास को स्याम सलासी सोरोंजी मध्ये लिखित कृष्णदास सिष्य बालकृष्ण आज्ञानुसार गुरु कृष्णदास वेटा नददास नाती जीवाराम के शुक्ल श्यामपुरी सनाढ्य.........भारद्वाज गोती सच्चिदानद के बेटा आत्माराम ....के बेटा रामायन के करता तुलसीदास दूजे......वेटा नंददास चंद्रहास तिनके वेटा क्रष्णदास......के बेटा मजचंद पोथी लिखी माघ...... तीज चद्रवार सवत् १६७२ शुभम्"

"न कियो सो यह लीला गाइ पाइ रस पुजना
वंदौ तुलसीदास के चरना तानुज नददास
दुख हरना जिन पितु आत्माराम सुहाए
तिन सुत रामकृष्ण जस गाऐ (नं)द सुवन

मम गुरु प्रवीना दास नष्णा मम नाम सो चीना
शुक्ल सनाढ्य तेज गुणरासी धर्म धुरीण
श्याम सर बसी बालकृष्ण मैं उन कर दा (सा)
(सू) कर हेत्र जल मम बासा......भ्र ॥

१०—'वर्षफल'। इस पुस्तक को कृष्णदास ने विनमी स० १६५७ नभमास कृष्णा त्रयोदशी शनिवार (१६०० ई०) को लिखकर समाप्त किया एव स० १८७२ वि० मार्गशीर्ष कृष्णा ३ गुरुवार, अर्थात् कार्त्तिकादि सवत् गणना के अनुसार गुरुवार २६ दिसबर, १८१४ ई० को मानुदत्त के शिष्य और उपाध्याय सोमनाथ के पुत्र रुद्रनाथ ने बदायूँ प्रांत के सहसवान ग्राम में इसकी प्रतिलिपि की थी। यह फलित ज्योतिष की एक एक छोटी सी पुस्तक है, जिसको ग्रथकर्ता ने अपने विद्वान् पितृव्य चद्रहास की इच्छा से लिखा था। पुस्तक समाप्त करने से पूर्व ग्रथकर्ता ने अपने वश के विषय में थोड़ा सकेत किया है कि मैं नददास का पुत्र हूँ, जो जीवाराम शुक्ल ब्राह्मण के पुत्र थे, और मेरे पिता नददास ने अपने ग्राम का नाम रामपुर से बदलकर श्यामपुर रख लिया था। उन्होंने दु ख के साथ इसका भी वर्णन किया है कि रत्नावली की जन्म-भूमि बदरी को गगाजी की बाढ़ ने नष्ट कर दिया था। यह बाढ़ स० १६५७ वि० आषाढ़ मास के अत में आई थी। आवश्यक उद्धरण इस प्रकार है—

"श्रीगणेशाय नम ॥ अथ वर्षफल लिप्यते ॥ कवित्त ॥
गनपति गिरीस गग गौरी गुरु गीरवान
गोप वेस गोकुलेस गोपी गुन गाइके।
भूमि देव देव दिवि गाम धाम देवी देव
तात मात पाद कज मजु सीस नाइके।
सूर सोम भौम सौम देवगुरु दैत्यगुरु
शुक्र शनि राहु केतु पेट मन लाइके।

बाल बोध आस कवि दास दास कृष्णदास
भाषतु हौं वर्षफल वर्षप्रय ध्याइके ॥१॥

अथ सूर्यफल—दोहा

वर्ष लगन रवि वात पित रुज विवाद तिय रोग,
कृष्ण चित्त चिंताकुलित करत हरत सुख भोग ॥ १ ॥

तात अनुज चंददास बुधवर निरदेसहि धारि,
लिख्यौ जथामति वर्षफल बाल बोध सचारि ॥ २ ॥

कवित्त

कीरति की मूरति जहाँ राजै भगीरथ की
तीरथ वराह भूमि बेदनु जे गाई है।
जाही धाम रामपुर स्याम सर कीनै तात
स्यामायन स्यामपुर वास सुखदाई है।
सुकुल विप्रवस मे विग्य तहाँ जीवाराम
तासु पुत्र नंददास कीरति कवि पाई है।
तासु सुत हौं कृष्णदास वर्षफल भाषा रच्यौ
चूक होइ सोधें मम जानि लघुताई है ॥ १ ॥
सोरह सौ सत्तामनि विक्रम के वर्ष माझ
भई अति कोपदृष्टि विस्व के विधाता की।
बीतत असाढी बाढ लाई बढ़ि देवधुनी
बूडी जल जन्मभूमि रत्नावलि माता की।
नारी नर बूढे बहु सेस बड भाग रहे
चिह्न मिटे वग्गी के [illegible] कथा ताकी॥
आजु नभ कृष्ण [illegible]
वर्ष फल पूर [illegible] २ ॥

कवि कृष्णादास कृत

वर्षफल

संवत् १८७२ वि०

रुद्रनाथ की प्रति । इससे पता चलता है कि संवत् १६५७ वि० में रत्नावली की जन्म-भूमि गङ्गा में डूब गई थी।)

दे० पृ० २३
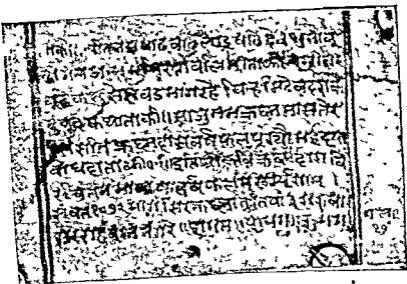
"इति श्रीकवि कृष्णदासविरचितम् भाषावर्णरत्नम् सम्पूर्णम् संवत् १८७२ मार्गसिर कृष्णा तृतीया ३ गुरुवासरे रुद्रस्थान नगरे ॥ शुभम् ॥ शुभम् ॥"

उक्त पुस्तक के अंतिम १८वें पृष्ठ पर यह पुष्पिका है—

"इति मुग्धा दशा विचार। गुरुवर भानु दत्त शिष्येन उपाध्याय सोमनाथ पुत्रेन रुद्रनाथेन लिखितम्। सं० १८७२ मार्गशिर कृष्णा ४ पितृवासरे।" कदाचित् उक्त रुद्रनाथ को अपने गुरु भानुदत्त और पिता सोमनाथ के नामानुसार 'गुरुवार' और 'पितृवासर' शब्दों से रविवार और सोमवार अभीष्ट है।

हस्त-लिपियाँ नं० ५ और ७, जैसा ऊपर संकेत किया गया है गोस्वामी तुलसीदास, नंददास और कृष्णदास की वंशावली का वर्णन करती हैं। पहली तो नारायण शुक्ल से और पिछली सच्चिदानन्द से नीचे की ओर चलती है, जैसा निम्नांकित वंशावली-वृक्ष से प्रकट है—

- नारायण शुक्ल
  - श्रीधर
  - शेषधर
  - सनक
  - सनातन
    - परमानन्द
      - सच्चिदानन्द
        - आत्माराम
          - तुलसीदास
        - जीवाराम
          - नंददास
            - कृष्णदास
          - चंद्रहास
            - मतचन्द
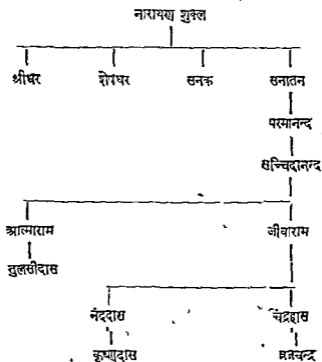
इन गवेषणाओं एवं वर्तमान प्रकाशित कुछ साहित्य के प्रकाश में, विषय के सिंहावलोकन से, रत्नावली की जीवनी और उसके पति गोस्वामी तुलसीदास के आरंभिक जीवन का वृत्त इस प्रकार चलता है —

* अन्य लेखकों की सम्मतियां—

"तुलसीदास जी के गुरु स्मार्त वैष्णव थे।"—रामचरित मानस सटीक-बाबू श्यामसुंदरदास बी० ए०।

"वास्तव में तुलसीदास की शिक्षा और दीक्षा के गुरु, सोरों-निवासी नरसिंह जी थे, जो स्मार्त वैष्णव थे।"—रामचरित-मानस, सटीक भूमिका, पृष्ठ ८४—पं० रामनरेश जी।

"वे (तुलसीदास) स्मार्त वैष्णव थे।"—रामचरित मानस, सटीक—पं० बाबूराम मिश्र टीकाकार—हिन्दी-पुस्तक-एजेंसी, कलकत्ता।

"दियो सुकुल जनम शरीर सुंदर हेतु जो फल चारिको।"—विनयपत्रिका-तुलसीदास।

"द्विज सनौढ्या पावन जानो"—रानी कँवलकुँवरि देवजू, रियासत सरीला, जिला हमीरपुर-कृत गोस्वामी तुलसीदास जी का जीवन-चरित, सं० १९५२ का छपा।

"नददास सनोढ़िया ब्राह्मण तुलसीदास के छोटे भाई पूर्व देश के रहनेवाले थे। गोस्वामीजी का विवाह दीनबधु पाठक की कन्या से हुआ था। तारक नाम का पुत्र हुआ था।"—गोस्वामी तुलसी-कृत रामायण, टीकाकार—पं० सीताराम मिश्र, लखीमपुर, खीरी।

"तुलसीदास ने अपना विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या से कर लिया।"—रामचरित-मानस रामायण टीका-सहित, टीकाकार—सुरजभान अग्रवाल।

"दीनबधु पाठक ने गुसाईंजी को एक सुयोग्य रामभक्त जानकर अपनी गुणवती कन्या का विवाह इनके साथ कर दिया।"—तुलसी कृत

तुलसीदास के पूर्वपुरुष रामपुर में रहते थे, जिसका नाम पीछे

रामायण--टीकाकार, पं० रामेश्वर भट्ट, १६०२ ई० ।

"इनका विवाह दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ।"
—तुलसी--कृत रामायण, संजीवनी टीका, वि० वा० पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र।

"प्रसिद्ध है कि दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से इनका (तुलसीदास का) विवाह हुआ था। जिसके तारक नाम का एक पुत्र भी हुआ था।"—गोस्वामी तुलसी-कृत रामायण, टीकाकार—पं० नारायणप्रसाद मिश्र, लखीमपुर, खीरी।

"वनिता से अति प्रेम लगायो, नैहर गई सोच उर छायो।
सुरसरि पार गए घबराई एक मुरदा की नाव बनाई।"
—गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित्र—रानी कँवलकुँवरि देवजू—स्व० बाबू राधाकृष्णदास, भूमिका, रासपँचाध्यायी

"वे (गोस्वामी तुलसीदास) सनाढ्य ब्राह्मण थे और शुक्ल थे।"—भूमिका, रामचरित मानस--सटीक, पृ० ७६—पं० रामनरेश त्रिपाठी।

बाबू श्यामसुंदरदास और स्व० पं० रामचन्द्र शुक्ल ने किन्हीं तुलसीदासजी को सनाढ्य और नंददास का भाई तो माना है, पर उन्होंने लिखा है कि गोस्वामी तुलसीदास दूसरे थे, किंतु उन्होंने इस विषय में प्रमाण कुछ भी नहीं दिया है।

अब तक के मतः

राजापुर-जन्मभूमि-सरयूपारी—

शिवसिंह सेंगर
सर जॉर्ज ग्रियर्सन (नोट्स ऑन तुलसीदास, इंडियन ऐंटीक्वेरी)
तुलसी-चरित
मूल गोसाईं-चरित
हिंदी-लिटरेचर (एफ़० ई० की०)

नंददास ने श्यामपुर रख लिया था। यह ग्राम एटा जिले में

तुलसी-ग्रन्थावली
हिंदी-साहित्य का इतिहास (शुक्ल)
हिंदी-भाषा और साहित्य (श्यामसुंदरदास)
गोस्वामी तुलसीदास („)
रामचरित-मानस, अटीक और सटीक („)
हिंदी-साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास (सूर्यकांत)

सूकरक्षेत्र-जन्मभूमि-सनाढ्य-शुक्ल—

दोहा-रत्नावली
रत्नावली-चरित
भ्रमरगीत (बालकृष्ण की प्रति)
सूकरक्षेत्र-महात्म (कृष्णदास)
वर्षफल („)
कृष्णदास वंशावली („)
सेवादास की टीका
दो सौ बावन वैष्णव-वार्ता
रामचरित-मानस टीका (रामनरेश त्रिपाठी)
तुलसीदास और उनकी कविता („)
रासपंचाध्यायी—भूमिका (राधाकृष्णदास)
"द्विज सनौढिया पावन जानो"—रानी कँवलकुँवरि देवजू-कृत गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित।

कान्यकुब्ज—

भक्तकल्पद्रुम
हिंदी-नवरत्न
हिंदी लिटरेचर (की०)

सोरों× स प्राय दो मील पूर्व में स्थित है। कतिपय विशेष परिस्थितियों के

दुबे पतिश्रीजा पाराशर गोत्री—
काष्ठजिह्व स्वामी
भारद्वाज गोत्री सनाढ्य शुक्ल—
भ्रमरगीत (बालकृष्ण की प्रति)

× जिला एटा मे भागीरथी गगा के तट पर सोरों स्थित है। एर्० एस० ग्राउस महोदय की सम्मति में सोरों की उत्पत्ति इस प्रकार है—सूकर ग्राम=सूअर गाँउ=सूअराँउ=सोरों। सूकरक्षेत्र अर्थात् सोरों अत्यत प्राचीन तीर्थ है। वाराहपुराण वर्णित प्राय सभी तीर्थ वहाँ विद्यमान हैं। नवीं शताब्दी म वहाँ सोलकी वश का सोमदत्त राजा राज्य करता था। कुछ ध्वसावशेष अभी तक पाए जाते हैं। एक टीले पर प्राचीन इमारत है, जिसके खभों पर बारह वीं-तेरहवीं शताब्दी के लेख प्राचीन लिपि मे हैं। सोरों में गगा तीर पर राजा टोडरमल, महाराजा उदयपुर, महाराजा अलवर आदि नरेशों एव अनेक सेठों के बनाए पक्के घाट, छतरियाँ, बुज और धर्मशालाएँ हैं। यात्रियों की बड़ी भीड़ रहती है।

पूर्व काल में पश्चिम से भागीरथी गगा की प्राचीन धारा बदरी और सोरों के बीच होकर बहती थी। अब ३ ४ मील हटकर बहती है। अब सोरों में वाराह घाट के सामने भागीरथी गगा की नहर से जल आता है।

यही बदरी आजकल बदरिया नाम से विख्यात है। गगा-तीर होने के कारण यह स्थान न-जाने कितनी बार उजड़ा और बसा होगा। इतना तो ज्ञात है कि स० १६५७ वि० मे गगाजी इसे बहा ले गई थीं और यह फिर उसी जगह बस गया।

गोस्वामी तुलसीदास के गुरु नृसिंहजी का मदिर सोरों में अब भी, जीर्ण शीर्ण दशा में, विद्यमान है। इस बर्ष उसमे बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है।

कारण इनके पिता पं० आत्माराम शुक्ल भारद्वाजगोत्रीय सनाढ्य ब्राह्मण को अपनी वृद्धा माता और पत्नी के साथ सोरों के योग मार्ग मुहल्ले में जाना पड़ा; परंतु उनके भाई उसी गाँव में रहते रहे। तुलसीदास के जन्म से कुछ ही दिन पीछे इनकी माता हुलसी का, जो तारी में पैदा हुई थीं*, देहांत हो गया और कुछ ही काल के अनतर पिता का भी। अतः उनकी रक्षा का भार उनकी बूढ़ी दादी के कधों पर आ पड़ा।

कहा जाता है, पहले इस मंदिर में हनुमानजी की मूर्ति स्थापित थी, और गुरु नृसिंहजी उनके उपासक थे। कुछ वर्ष हुए, मंदिर के किसी अधिकारीने इस मूर्ति को मंदिर के भीतर से हटाकर बाहर आँगन में, प्राचीन वट-वृक्ष के नीचे स्थापित कर दिया। मंदिर के सम्मुख गली के कोने पर एक कूप है, जो नरसिंहजी का कुआँ कहलाता है। यह नृसिंह अथवा नरसिंहजी का मंदिर सोरों में प्रसिद्ध है। वृद्ध लोग कहते हैं, इसी में नृसिंहजी की पाठशाला थी। सोरों के पास ही नंददासजी के बनाये 'श्यामायन' (मंदिर खेड़ा) और श्यामसर (तालाब) एवं रामपुर (श्यामपुर) नामक ग्राम विद्यमान हैं।

तीरथ वर सोकर निकट ग्राम्र रामपुर वास
सोइ रामपुर स्यामपुर कर्‌यो पिता नददास।

—कृष्णदास-कृत सूकरक्षेत्र-माहात्म्य

* (क) अविनाशराय के कुछ पद :

(ख) जाके दिसि उत्तर में गगा जुग राजि रहीं
दच्छिन कछु कोस पै करै केलि काली है।
तुलसी-मात हुलसी की जननी जे तारी भूमि
भूपसिंह पाली जासु रच्छक कपाली है॥

—शाहजहाँ-कालीन कान्हराय मझमह तारी (ताली) गंगा और काली नदी के बीच क्रमशः सहावर जिला एटा के निकट एक ग्राम।

बचपन में तुलसीदास राम-नाम का उच्चारण करते रहते थे, इसलिए इनका नाम 'रामबोला' या 'रामोला' प्रसिद्ध हो गया। यह अभी निरे बालक ही थे कि इनके पितृव्य जीवाराम भी अपने पीछे दो पुत्र छोड़कर स्वर्गवासी हो गए। इनमें से बड़े नंददास भगवान् कृष्ण के भक्त एवं व्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि थे। इनके पुत्र थे कृष्णदास और पत्नी का नाम था कमला। जीवाराम के छोटे पुत्र चंद्रहास थे*। इसमें संदेह नहीं कि

---

* राम भगत तुलसी अनुज नंददास व्रज ख्यात।
दुज सनौडिया सुकुल कवि कृष्ण भगत अवदात ॥ १ ॥
कन्यौ रामतें स्याम निज बदलि इष्ट अरु गाम।
रच्यौ स्यामसर बाहिरू हरि बलदाऊ धाम ॥ ३ ॥
सौंपि अनुज चंदहास कर सुत दारा धन धाम।
आये सूकरखेत तजि व्रज बसि सेवत स्याम ॥ ४ ॥

कृष्ण राम के रूप भए नन्ददास मन आनि।
लखि तुलसी मन चलि रहे प्रान जोरि जुग पानि ॥ ७ ॥
रामायन भाषा विरचि भ्राता करी प्रकास।
देखि रची श्री भागवत भाषा श्री नँददास ॥ ८ ॥

—अष्ट सखामृत (प्राचीन रचित) हस्त लिखित पुस्तक। "व्रज भारती" माघ २००० वि०, वर्ष ३, अंक ४।

तुलसीदास के अनुज सदा विट्ठल पदचारी।
अंतरंग हरि सखा नित्य जेहि प्रिय गिरधारी ॥
भाषा में भागवत रची अति सरस सुहाई।
गुरु आगे द्विज कथन सुनत जल मांहि डुबाई ॥
पंचाध्यायी हठ करि रखी तऊ गुरु घर द्विज भय हरत।
श्री नंददास रस रास रत प्रान तज्यो सुधि सो करत।

—श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-कृत

अधिक कठिनाइयों के कारण सब लोग महादु खी थे। तुलसी तथा नंद दोनों ही स्मार्त वैष्णव नृसिंहजी की प्रेम पूर्ण देखरेख म पढ़ते रहे, जिनकी पाठशाला और कुआँ अब तक सोरों में, दीन-हीन दशा में विद्यमान हैं, और जिनको तुलसीदास ने नतमस्तक होकर निज रचित रामायण में प्रणामांजलि समर्पित की है।

तुलसी हृष्ट-पुष्ट, स्वस्थ, रूपवान् और सदाचारी बालक था। बड़ा होकर वह विविध विद्याओं का पारदर्शी विद्वान् बन गया। अत प० दीनबधु पाठक और उनकी भार्या, दयावती, ने स० १५८९ वि० में अपनी पुत्री रत्नावली का विवाह इसके साथ कर दिया। गणना से प्रतीत होता है कि रत्नावली का जन्म स० १५७७ वि० में हुआ। यह बड़ी सुदरी, धर्मात्मा, प्रतिभा सपन्ना और विदुषी थीं। प० दीनबधु बदरी के रहनेवाले थे, यही रत्नावली की जन्मभूमि थी। यह सोरों के सामने बसी है। उन दिनों बीच में गगाजी बहती थीं। एक बार यह जल मग्न हो गई थी, किंतु फिर बस गई, और बदरिया के नाम से अब तक चल रही है। परतु गगा नदी अपना पुराना मार्ग छोड़कर चार मील हट गई है। आजकल सोरों और बदरिया के बीच कृत्रिम गगा (नहर) बहती है, और वाराह घाट हरिद्वार की हर की पैरी अथवा विठूर घाट से कुछ-कुछ मिलता जुलता है। सर्व प्रिय रत्नावली ने सेवा द्वारा अपनी सास को प्रेम के वशीभूत कर लिया, परतु कुछ ही काल के अनतर इसकी सास ने अपनी मानव-लीला का सवरण कर लिया। तुलसीजी पुराणों की कथा बाँचकर अपनी आजीविका चलाते थे, इससे उनकी अच्छी ख्याति हो गई थी। दपति के तारापति नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, जो अधिक दिन जीवित न रहा। इससे पति पत्नी को अत्यत दु ख हुआ। विवाह से १५ वर्ष पीछे, अर्थात् उस समय जब रत्नावली ने अपने वय के २७वें वर्ष में प्रवेश किया था, उसको रक्षाबधन के लिये निज स्वामी की आज्ञा लेकर अपने भाई के यहाँ बदरी जाना पड़ा। इधर तुलसी

भी जीविकार्थ बाहर गए थे । घर लौटने पर उन्हें अकेला रहना बहुत ही अखरा और, इस आवेग में आगा पीछा कुछ न विचारकर वह रात्रि में गगाजी के चढ़ते प्रवाह को पार कर अपने श्वशुर के घर जा पहुँचे । अपने पति को ऐसे कुसमय में आया देख आश्चर्य-चकित होकर रत्नावली ने पूछा—"स्वामिन्, आप गगाजी के बढ़ते प्रवाह को कैसे पार कर आए!" फिर यह जानकर कि मेरे पति ने प्रेमावेग ही के कारण ऐसा साहस किया है, उसने केवल यही कहा—"स्वामिन्, मुझे आपके दर्शन से परमाह्लाद हुआ। मेरा परम सौभाग्य है, जो आप मेरे साथ इतना प्रेम करते हैं। मेरे प्रति आपके इस प्रेम ने आपको गगा पार करने के लिये उत्तेजित कर दिया । इससे निश्चय होता है कि भगवत्प्रेम भक्त को अवश्य इस ससार-सागर से पार कर देता है!"

घटना चक्र को कौन रोक सकता है ? तुलसीदास के चित्त ने अकस्मात् पलटा खाया । वह दाम्पत्य-प्रेम तत्क्षण भगवद्भक्ति में परिणत हो गया । अत वह उसी समय वदरी से चले गए, सोरों को भी त्याग गए। सं० १६०४ वि०× में वह परिव्राजक बनकर घर से निकल गए। बहुत कुछ खोज हुई, परतु उनका कहीं पता न चला । इसी वर्ष रत्नावली की माता का भी देहांत हो गया । तदनतर पतिपरायणा, परित्यक्ता रत्नावली ने भोगों का परित्याग कर दिया । प्रत्येक वैषयिक सुख का त्यागकर सन्यासिनी का जीवन बिताती रहीं और अन्त म स० १६५१ वि० के अन्त में, इस दु खपूर्ण ससार से चल बसीं । वे नारी-जाति के लिये अपने पवित्र २०१ दोहों का निधि-स्वरूप प्रदान कर गईं । ये दोहे पश्चात्तापपूर्ण हैं। इनमे उत्तमोत्तम शिक्षाप्रद उपदेश और नीतियाँ भरी पड़ी

× सागर४ प० रस६ ससी१ रतन सवत मो दुपदाइ
पिय वियोग, जननी मरन करन न भूल्यौ जाइ —दोहा

हैं। इसके छः वर्ष उपरांत, अर्थात् सं० १६५७ वि० के आषाढ़ में, उसकी जन्मभूमि बदरी भी गंगाजी के सर्व संहारी जलाप्लव में बहकर नष्ट हो गई।

लेख्य-प्रमाण अब समाप्त होता है। तुलसीदास ने, जैसा प्राचीन रूढ़िवाद से विदित होता है, बदरी से चलकर बहुत दूर-दूर देशों की यात्रा की। कभी-कभी उन्होंने लोकोत्तर चमत्कारी कार्य भी किए। यह चित्रकूट और अयोध्या में रहे; राजापुर की स्थापना* की; और अंत में बनारस जाकर स्थायी

---

* १—जन्म स्थान भी लोग कई ठिकाने लिखते हैं। बाँदा ज़िले में यमुना तीर 'राजापुर' को बहुत लोग कहते हैं, परंतु राजापुर आपका जन्म-स्थान नहीं है। श्रीगोस्वामीजी का जन्म स्थान श्रीगंगावाराह-क्षेत्र (सोरों) के प्रांत अन्तर्वेद में 'तरी' नामक ग्राम या 'तारी' था। आपने राजापुर में विरक्त होने के पीछे निवास कर भजन किया, इसी से वहाँ श्रीगोस्वामीजी की विराजमान की हुई संकटमोचन श्रीहनुमानजी की मूर्ति है और श्रीरामायण अयोध्याकाण्ड भी है। यह वार्ता वहाँ जाके भली प्रकार निश्चय की है; राजापुर में श्रीगोस्वामीजी आज्ञा कर गए हैं कि देव-मंदिर छोड़ अपने रहने को पक्का गृह कोई न बनवावे, ऊपर खपड़े ही छवावे और वेश्या नहीं नचावे ...... इत्यादि, — श्रीअयोध्याजी - प्रमोदवन - कुटिया - निवासी, सीतारामशरण, भगवानप्रसाद-निरचित श्रीभक्तमाल सटीक वार्तिक प्रकाश युक्त, पृष्ठ ७४१, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ, १९१३ ई०।

२—पर जन्म कहाँ हुआ? लोग बतलाते हैं, राजापुर उनकी जन्मभूमि है। पर इस बात के विरुद्ध और लोग कहते हैं कि नहीं, उनका जन्म वहाँ नहीं हुआ, पर गुसाईंजी ने वहाँ एक मंदिर बनवाया या गाँव बसाया। फिर-हस्तिनापुर उनकी जन्मभूमि बतलाई गई, और हाजीपुर भी (जो चित्रकूट के पास है); पर इन बातों का कुछ प्रमाण नहीं। फिर औरों ने कहा, यह ताड़ी

रूप से बस गए, जहाँ उन्होंने सं० १६८० में श्रावण के शुक्लपक्ष की सप्तमी को कुछ रुग्ण रहकर, सदा के लिये अन्तिम समाधि लेकर भगवत्सा-

---

में जन्मे, पर दूसरे लोग कहते हैं,—नहीं, उनके माता-पिता वहाँ रहते थे, पर यह तुलसीदास के उत्पन्न होने के पहले था। इन सब बातों से अनुमान होता है कि अब तक ठीक-ठीक निर्णय नहीं हुआ कि तुलसीदास का जन्म कहाँ हुआ ?—रेवरेंड एडविन ग्रीव्ज़, तुलसी ग्रंथावली निबंधावली, पृष्ठ ४५।

३—'जन्म-स्थान के सम्बंध में भी अभी तक ठीक निर्णय नहीं हुआ। राजापुर तथा तारी के बीच झगड़ा है। यद्यपि राजापुर में आपका स्मारक निर्मित हुआ था, तथापि वहीं के कुछ बूढ़े लोग कहते हैं कि वह गोसाईंजी का जन्म-स्थान नहीं। विरक्त होने पर यह कुछ दिन वहाँ रहे अवश्य थे, और प्रायः जाया करते थे।—शिवनंदनसहाय, माधुरी, पृष्ठ २४, अगस्त १६२३)।

श्रीतुलसी स्मारक-सभा, राजापुर के एक अधिकारी से जब इसी जन्म स्थान के विषय में पत्र व्यवहार किया, वो उत्तर में उन्होंने 'प्राइवेट' शब्द के साथ इस बात को स्वीकार किया कि गोस्वामीजी का जन्मस्थान सोरों या उसी के आस-पास कहीं होना चाहिए।—गोविंदवल्लभ भट्ट, 'माधुरी', १६२६ ई०।

(A) "Tradition has it that in Akbar's reign, a holy man, Tulsi Das, a resident of Soron, in Parganah Aliganj of the Etah District, came to the jungle on the banks of the Jumna, where Rajapur now stands, erected a temple, and devoted himself to prayer and meditation His sanctity soon attracted followers, who settled around him, and as their numbers increased they began to devote themselves (and with won-

निध्य लाभ किया। किंतु गोस्वामी तुलसीदास और उनकी प्रियतमा साध्वी रत्नावली अब तक हमारे चित्तों में जीवित हैं।

---

derful success) to commerce as well as to religion. There are some curious local customs peculiar to Rajapur derived from the precepts of Tulsi .... " — Statistical Description and Historical Account of the North-Western Province of India, Edited by Edwin T. Atkinson, B. A., B. C. S, Vol. I, Bundelkhand, Allahabad, 1874, Pages 572—3.

(*B*) "Rajapur was founded in the reign of Akbar by Tulsi Das, a devotee from Soron, who erected a temple, and attracted many followers......" —Imperial Gazetteer of India, Vol XI by W. W. Hunter, Second Edition, 1886, Pages 385—6

(*C*) "Rajapur is the name of the town, and Majhgaon that of the mauza or village area within which it is situated. According to tradition the town was founded by Tulsidas, the celebrated author of the Ramayan and his residence is still shown .."—Imperial Gazetteer of India, U. P.—II (Provincial Series) Calcutta, 1908, Page 50

(*D*) "It is said that in the reign of Akbar, a holy man, named Tulsi Das, a resident of Soron in Kasganj tahsil of the Etah district, came to the jungle on the banks of the Jumna, where Rajapur now stands, and devoted himself to prayer and meditation . ...This is, of course, Tulsi Das, the author of the Ramayana, and his house is still shown in the town ....." —District Gazetteers of the United Provinces, Vol. XXI, Banda, 1909, Pages 285—5

भ्रमोन्मूलन

गोस्वामी तुलसीदास के जन्म-स्थान एव पत्नी परिवार के सम्बन्ध में तीन पुस्तकों ने कुछ समय से बहुत भ्रम फैलाया है। वे हैं—मूल गोसाईं-चरित, तुलसी चरित्र, और घट रामायन। अतएव इनके सविस्तार परीक्षा की नितान्त आवश्यकता है। आगामी कुछ पृष्ठों में दो बातों का समावेश है—विद्वानों ने अब तक उन पर जो विचार प्रकट किए हैं, उनका सार, तथा मेरे निजी विचार।

[क] मूल 'गोसाईं-चरित' की अमौलिकता—

ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने अपने शिवसिंह सरोज में गोस्वामी तुलसीदास के जीवन चरित के विषय में लिखा है—"इनके जीवन चरित्र की पुस्तक वेणीमाधवदास कवि पसका ग्राम निवासी ने, जो इनके साथ रहे, बहुत विस्तारपूर्वक लिखी है। उसके देखने से इन महाराज के सब चरित्र प्रकट होते हैं।" ठाकुर साहब ने गोस्वामीजी का जन्म सं० १५८३ लिखा है और बाबा वेणीमाधव-कृत 'मूल गोसाईं-चरित' में १५५४—

"पन्द्रहसौं चउवन विषै, कालिंदी के तीर,
सावन शुक्ला सत्तमी, तुलसी धरेउ शरीर।"

इससे ज्ञात होता है कि ठाकुर साहब ने बाबाजी की उक्त रचना देखी न थी, नहीं तो गोस्वामीजी का जन्म सम्वत् स्वतन्त्र रूप से निश्चित न करते।

उन्नाव के वकील पं० रामकिशोर शुक्ल बी० ए० ने स्व-सम्पादित रामचरित मानस के आरम्भ में उक्त 'मूल गोसाईं-चरित' लगाकर १९२५

ई० में नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित कराया था, पर उक्त गोसाईं चरित की प्राप्ति पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला । इसके पश्चात् १६३१ ई० मे स्व० डा० श्यामसुदरदास और डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने इसे अपनी 'गोस्वामी तुलसीदास' नामक पुस्तक मे परिशिष्ट रूप दिया जो हिंदुस्तानी एकाडेमी, प्रयाग, से प्रकाशित हो चुकी है । यह चरित मानसांक के साथ गीता प्रेस, गोरखपुर से और रामायणी श्रीराम बालक दास-सशोधित 'श्रीतुलसीदास कृत रामचरित मानस सटिप्पन' के साथ सेठ लक्ष्मीचद छोटे लाल द्वारा श्रीवैष्णव पुस्तकालय, अयोध्या, से प्रकाशित हुआ है।

प्रस्तुत मूल गोसाईं चरित से विदित होता है—

"सम्वत सोलहसौ असी, असी गग के तीर,
श्रावण-श्यामा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर।"

"सोरहसौ सत्तासि सित, नवमी, कातिक-मास,
विरच्यौ यहि नित पाठ हित, वेणी माधवदास।"

अर्थात्, स० १६८० में श्रावण की श्यामा तीज शनिवार को काशी में असी गगा के तट पर गोस्वामी तुलसीदास ने शरीर त्याग किया और संवत् १६८७ में कार्तिक शुक्ला नवमी को उक्त मूल गोसाईं चरित नित्य-पाठ करने के लिये बाबा वेणीमाधवदास ने लिखा, और "इमि यादव माधववेणि उभय मिलगुल करुणेश आनदा उदय" द्वारा यह प्रकट किया है कि बाबाजी १६०६ वि० के लगभग चित्रकूट पर गोस्वामी जी के सत्सगी जन-समुदाय में थे । अत, स्पष्ट है कि वह गोस्वामी के समकालीन ही नहीं प्रत्युत निकटवर्ती भी और उनके पश्चात् कम से कम सात वर्ष तक जीवित थे। ऐसी दशा मे 'बाबा वाक्य' को ही प्रमाण समझना उचित प्रतीत होगा, परन्तु खेद है, यह गहन विचार के पश्चात् सत्य की कसौटी पर नहीं टिकता।

उक्त 'मूल गोसाईं-चरित' में बाबा वेणीमाधवदास लिखते हैं—

"उदए तुलसी उदघाट हिते।"

"सुकृती सतमान सुधी सुखिया
रजिया पुर राजगुरु मुखिया।
तिनके घर द्वादस मास परे;
जब कर्क के जीव हिमांशु चरे।
कुज सप्तम, अष्टम भानु-तनय,
अभिजीरित शनि सुंदर साँझ समय।"

देश सरवार, पतेजी (पत्योजा) ग्राम निवासी, पारशर गोत्रीय, मुरखे-आस्पदीय ब्राह्मण कुल में यमुना-तटस्थ दूबन के पुरवा में, रजियापुर * के राजगुरु की धर्मपत्नी हुलसी की दक्षिण कुक्षि में १२ मास निवास कर संवत् १५५४ श्रावण शुक्ला ७ शनिवार सायंकाल रजियापुर में गोस्वामीजी ने जन्म लिया। उनके जन्म-समय अभिजित नक्षत्र था और जन्म-पत्र में मंगल सप्तम और शनि अष्टम स्थान में एवं कर्क के गुरु और चंद्र थे। अत्यंत खेद की बात है कि जहाँ ज़रा-ज़रा-सी बात का उल्लेख है वहाँ गोस्वामीजी के पिता के नाम पर शून्य ही दिखलाया है। यदि बाबाजी गोस्वामीजी के संगी और समकालीन थे तो क्या वह उनके पिता के नाम का पता नहीं लगा सकते थे? जनता में पुत्र की प्रसिद्धि पिता के नाम से होती है, न कि माता के नाम से। यदि बाबाजी गोस्वामीजी के पिता का नाम जानते होते तो उसका उल्लेख करने से कभी न चूकते।

---

* गोस्वामी तुलसीदास के जन्म के समय राजापुर ही नहीं था। इसकी नींव तो स्वयं गोस्वामीजी ने डाली थी जैसा कि गज़टियरों में लिखा है। —रा. मा.

बाबा वेणीमाधवदास ने गोस्वामीजी का जन्म सं० १५५४ में लिखा है और देह त्याग स० १६८० मे, इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास की आयु १२६ वर्ष की होती है। जितेंद्रिय, वीतराग, योगी महात्माओं की आयु इतनी या इससे भी अधिक हो सकती है, परन्तु इस हिसाब से स० १६३१ में, जब कि उन्होंने 'रामचरित मानस' लिखा था, उनकी आयु ७७ वर्ष की होती है। इस आयु मे रामचरित-मानस जैसे वृहत् काव्य ग्रंथ का निर्माण करना असम्भव प्राय जान पड़ता है, क्योंकि इस अवस्था में बल स्फूर्ति-स्मृति का ह्रास होना शरीर का स्वभाव है।

वेणीमाधवदास ने गोस्वामीजी की जन्म-तिथि श्रावण शुक्ला सप्तमी शनिवार के सायंकाल म अभिजित का होना लिखा है, किंतु गणित से यह असत्य है, न तो उस दिन और न जन्म के समय ही अभिजित नक्षत्र था। प्रतीत होता है उक्त लेखक ने किंवदंतियों का आश्रय लिया, अथवा कल्पना का। कदाचित् उन्हें गोस्वामीजी की पूर्ण जन्म पत्री का ज्ञान न था, यदि होता तो नव ग्रहों के बदले केवल चार ग्रहों के उल्लेख से ही सन्तोष न कर लेते, क्योंकि, जैसा कहा जा चुका है, वह अपने वर्णनों में ज़रा ज़रा-सी बातों का उल्लेख करते पाये जाते हैं।

वह लिखते हैं--गोस्वामीजी सदंत जन्मे थे और जन्म समय रोए न थे, इससे स्त्रियों को आश्चर्य हुआ, वे बकने और काँपने लगीं। उन्होंने गोस्वामीजी को राक्षस बतलाया, पुन बालक के पिता को बुला लाईं। गोस्वामीजी के पिता भी प्रसूतालय के द्वार पर खड़े होकर नवजात शिशु को देख आंसू भरकर रोने लगे—

"पूरित सलिल दृग निरखि शिशु
परिताप - युत मानस भए,
मन मँह पुराकृत पाप को
परिनाम गुनि बाहर गए।"

संसार में अनेक शिशु सदंत पैदा होते हैं, जन्म लेते समय अनेक नहीं रोते तो क्या स्त्रियाँ उन्हें देखकर बकती या काँपती हैं, या उन्हें राक्षस समझती हैं ? प्रायः ऐसा तो नहीं होता। तुलसीदास तो भयानक आकृति के भी नहीं थे। आश्चर्य है, सदंत शिशु को देखकर उसके पिता राजगुरु का गुरुत्व जाता रहा और वह स्त्रियों के सदृश रोने लगे। वह कैसे राजगुरु थे ? शास्त्रों में सदंत शिशु के जन्म होने पर उसकी शांति विधि लिखी हुई है, क्या वे इसे नहीं कर सकते थे ?

"तब जुरे सब हित, मित्र, बांधव,
गणक आदि प्रसिद्ध जे ;
लागे बिचारन करिश्र,
नवजात शिशु कहँ, कहहिं ते।"

उस समय राजगुरु के इष्ट-मित्र कुटुम्बी और सिद्ध ज्योतिषी भी आए थे। तो क्या स्वयं राजगुरु जैसे विद्वान् के घर आए हुये प्रसिद्ध ज्योतिषियों ने उनके जन्मकालिक ग्रह न देखे होंगे ? क्या उन्होंने ज्योतिष-शास्त्र से यह न जाना होगा कि यह बालक संसार में प्रसिद्ध और अपने देश का उद्धार करनेवाला यशस्वी विद्वान होगा, यद्यपि इसकी माता की मृत्यु अवश्य होगी। पर बाबा वेणीमाधवदास लिखते हैं—

"पचन यह निर्णय किए, तीन दिवस पश्चात।
जियत रहे शिशु तब करिश्र, लौकिक वैदिक बात॥"

उन आए हुए मित्र कुटुम्बीजन और प्रसिद्ध ज्योतिषी आदि पचों ने यह निर्णय किया कि जब तीन दिन तक यह बालक जीवित रह चुके तब लौकिक वैदिक संस्कार हों। इससे सिद्ध होता है कि न तो राजगुरु ही विद्वान थे और न वे प्रसिद्ध ज्योतिषी ही, क्योंकि उन्हें नवजात बालक के जीवन में तीन दिन तक मृत्यु का सन्देह रहा। उन्हें यह ज्ञात न हुआ कि

यह शिशु तो दीर्घायु होगा, पर इसकी माता की मृत्यु हो जायगी और संस्कार न करने में कौन-सी बुद्धिमानी थी, कौन-सा विशेष व्यय था ? कदाचित् राजगुरु को रुलाने मे एक रहस्य है। यदि राजगुरु को रुलाने की कल्पना न होती तो "सुनि भयो परिताप पाप जननी-जनक को"× आदि गोस्वामीजी के वाक्य से 'पूरित सलिल' आदि उपर्युक्त छंद के भाव की समता कैसे होती और उसके बिना 'मूल गोसाईं-चरित' का मूलत्व कैसे प्रमाणित होता ? अस्तु।

"मातु-पिता जग माय तज्यो" तथा "जननी जनक तज्यो जनमि" आदि गोस्वामीजी के वाक्यों के साथ साम्य प्राप्ति करने के लिये जन्म होने से चौथे दिन तुलसीदास को मरणासन्न माता द्वारा पालन-पोषण के लिये चुनिया नाम की स्त्री को दिलाकर माता से पृथक् कराया गया है, और चुनिया के मरने के पश्चात्—

"हम का करिबै अस बालक लै ?"

तथा—

"जन्मेउ सुत मोर अभागो महीं,
सो जियै वा मरै मोहिं सोच नहीं।"

आदि वाक्य कहलाकर गोस्वामीजी का उनके पिता से परित्याग कराया गया है। इस प्रकार का मेल मिलाकर बाबा वेणीमाधवदास ने अपने 'मूल गोसाईं-चरित' को मौलिक सिद्ध करने की चेष्टा की है। क्या राजाओं के गुरु, विद्वान, धनी तथा प्रतिष्ठित गोस्वामीजी के पिता-जैसे व्यक्ति अपने एकमात्र निर्दोष, सुन्दर पुत्र रत्न को त्याग उक्त वाक्य कह सकते थे ? कैसा ही दुष्ट कुरूप रोगी एवं अभागा पुत्र हो, माता-पिता की उस पर स्वाभाविक प्रीति और ममता होती ही है।

माता-पिता द्वारा त्यक्त बालक तुलसीदास द्वार-द्वार डोलने लगे। इन्हें देखकर जगज्जननी अन्नपूर्णा पार्वती ब्राह्मणी का रूप धारण कर नित्य

× कवितावली

भोजन करा जाती थीं और इस प्रकार पाँच वर्ष, पाँच मास की आयु से सात वर्ष, पाँच मास की आयु पर्यंत, अर्थात् दो वर्ष तक भोजन कराती रहीं। एक दिन ग्राम की नारियों ने उन्हें रोका और हट किया तब से वह अदृश्य हो गईं। यथा—

"डोलत सो बालक द्वार-द्वार बिलोकि तेहि विदरत हियो।
बालक-दशा निहारि गौरा माई जग-जननि।
द्विज-तिय रूप सँभारि नितहि पवा जावहि अशन।
दुइ बत्सर बीतेउ यहि रसे, पुर लोगन कौतुक देखि कसे।"

"पुरि पायँ करी हठ, जान न दे, जगदंब अदृश्य भई तब ते।"

जगजननी अन्नपूर्णा का एक बालक को भोजन कराने में इतने समय तक इतना आयोजन, इतना आयास! अन्त में अदृश्य होने के लिए बाध्य हो गईं! तब भगवान शिव ने एक और सुलभ उपाय किया। उन्होंने अनंतानंदजी के शिष्य नरहर्यानंद को दर्शन देकर रामचरित-मानस सुनाया, और कहा कि तुम तुलसीदास को यह कथा सुनाओ, जब उसके हृदय के नेत्र खुलेंगे, तब वह स्वयं रामचरित-मानस बनाकर कहेगा। शिवाज्ञा से नरहर्यानंदजी बालक तुलसीदास के समीप आए और पुरवासियों की सम्मति से उन्हें साथ लेकर हरिपुर गए, और १५६१ माघ शुक्ला पंचमी को सरयू के तीर पर उनका यज्ञोपवीत संस्कार कर अपना शिष्य बना लिया, और वहाँ दस मास रहे। इस समय तुलसीदास ८ वर्ष ४ मास के हो गए थे। वहाँ से चलकर नरहर्यानंद और तुलसीदास सूकर-क्षेत्र आए और ५ वर्ष तक रहे। तुलसीदास १३ वर्ष ४ महीने के हो गए। फिर उन्होंने १५ वर्ष पर्यंत काशी एवं चित्रकूट में शेषसनातनजी से विद्याध्ययन किया, और अब वे २८ वर्ष ४ मास के हो गए। विद्याध्ययन के पश्चात् वह अपने जन्म-स्थान को गए, और २८ वर्ष १० मास की आयु में उनका विवाह हो गया।

इस प्रकार वेणीमाधवदासजी के लेखानुसार तुलसीदासजी को जन्म से विग्रह तक किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव नहीं होना चाहिए। चुनिया तथा अन्नपूर्णा पार्वती और नरहर्यानंदजी एवं शेषसनातनजी, इन्हीं चार व्यक्तियों ने क्रमशः निरंतर तुलसीदास जी का, पुत्र से भी अधिक स्नेह के साथ, पालन-पोषण एव शिक्षण किया। तुलसीदासजी के लिये बाल्यकाल से द्वार-द्वार जाकर, दीन होकर जाति-कुजाति के टूक खाने की आवश्यकता ही कब पड़ी, और कितने समय तक ?

गोस्वामीजी लिखते हैं—

> "बारे तें ललात-बिललात द्वार द्वार दीन,
> जानत हौं चारि फल चारि ही चनक कों।"
> "जाति के, सुजाति के पेटागि-बस
> खाए टूँक सबके बिदित बात दुनी सो।"
>
> —कवितावली

> "हुतो ललात कृस गात
> खाति खरि मोद पाइ कोदों कनें।"
>
> —गीतावली

> "हा-हा करि दीनता कही
> द्वार-द्वार, बार-बार परी न छार।
> असन-बसन बिनु बावरो जहँ-
> तहँ उठि धायो मुँह बायो।"
>
> —विनय-पत्रिका

बाबा वेणीमाधवदास भी 'सुर में सुर मिलाते' लिखते है—

> "डोलत सो बालक द्वार-द्वार,
> बिलोकि तेहि बिदरत हियो।"

किंतु वह यह स्पष्ट नहीं करते कि ऐसा कब हुआ ? जब कि तुलसीदास की देख भाल के लिये स्वय भगवान् शिव और जगज्जननी पार्वती, चिंतित थीं, तब तो ऐसी कल्पना मिथ्या प्रतीत होती है। चुनिया के पश्चात् देवी पार्वती, फिर नरहर्यानंदजी, पश्चात् शेषसनातनजी पर तुलसीदासजी के भरण पोषण का भार रहा ! क्या तुलसीदासजी इतने अकृतज्ञ थे कि वह अपने उपकारकों को एकदम भूल गए ? यदि वह हुलसी का, जिसका मुख उन्होंने नहीं देखा, वे उल्लेख कर सकते थे तो चुनिया का भी करते, जिसके पास पाँच वर्ष तक पुनरत् रहे और जो तुलसीदास को प्रसन्न रखने मे कोई बात उठा नहीं रखती थी ('जेहि ते शिशु रीभहि, सोइ करै'—वेणी०) । यदि 'नर-रूप हरि' गुरु का उल्लेख कर सकते थे तो अपने उच्चतर गुरु शेषसनातनजी को कैसे भूल गए ?

बाबा वेणीमाधवदास ने सरयू घाघरा के सगम पर शूकर-क्षेत्र लिखा है—

"कहत कथा, इतिहास बहु आए शूकर खेत,
सगम सरयू घाघरा सत जनन सुख देत।"

यह पुराण प्रसिद्ध शूकर क्षेत्र लक्षण के विरुद्ध है। श्रीवाराहपुराण म श्रीवराह भगवान ने शूकरक्षेत्र का लक्षण भूदेवी को बतलाया है—

"यत्र सस्थाच मे देवि ! ह्युद्धृ तासि रसातलात्;
यत्र भागीरथी गगा मम सौकरवे स्थिता।"

हे देवि, जहाँ तेरा रसातल से उद्धार किया है, जहाँ भागीरथी गगा विद्यमान है, वह सौकरव (शूकर) क्षेत्र है। वहाँ मेरी स्थिति है। उपर्युक्त पुराण प्रसिद्ध स्थान एटा जिला के अतर्गत सोरों ही है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में सोरों ही शूकर क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध और माननीय है। यहाँ भगवान वराह का मन्दिर और नरसिंहजी की पाठशाला विद्यमान है और बड़ी बड़ी प्राचीन है।×

× इस विषय म विशेष प्रकाश किसी आगामी अध्याय में डाला जायगा।

जैसा कि निर्देश किया जा चुका है, बाबा वेणीमाधव के अनुसार तुलसीदासजी के दो गुरु थे। वह लिखते हैं, गोस्वामी तुलसीदास गुरु नरहर्यानंदजी के साथ शूकर-क्षेत्र से काशी-धाम आए। वहाँ शेषसनातनजी ने नरहर्यानंदजी से गोस्वामी तुलसीदास को चारों वेद, छः शास्त्र आदि पढ़ाने के लिये माँग लिया, और गोस्वामीजी उनसे १५ वर्ष पढ़कर पूर्ण विद्वान् हो गए।

> *"विचरत, विहरत मुदित मन, आए काशी धाम;*
> परम गुरु सुस्थान पर, जाय कीन्ह विश्राम।"
>
> "तहँवाँ हते शेषसनातन जू; वपु वृद्ध, वरंच युवा मन जू।"
>
> तिनि रीझि गए बटु पै जबही, गुरु स्वामि सों सुन्दर बात कही।
> निज शिष्यहि देहए मोहि मुनी, तिसुवृत्ति दुनी नहिं ध्यानधुनी।
> हौं ताहि पढ़ावहुँ वेद चहूँ; अरु आगम दर्शन पात चहूँ।"
>
> "बटु पंद्रह वर्ष तहाँ रहिकें, पढ़ि शास्त्र सबै महिके गहिकै।"

आश्चर्य है, भगवान शिव की पसंद के गुरु नरहर्यानंदजी फीके निकले, और शेषसनातनजी की आवश्यकता पड़ी! दूसरा आश्चर्य है कि स्वयं तुलसीदासजी भी अपनी कृतियों में शेषसनातनजी का उल्लेख करना भूल गए! गोस्वामीजी ने 'रामचरित-मानस' में जहाँ गुरु की महिमा एवं वंदना लिखी है, वहाँ उन्होंने केवल कृपासिंधु 'नर-रूप हरि' (गुरु नृसिंह) का ही उल्लेख किया है, शेषसनातनजी का नहीं। क्या गोस्वामीजी ऐसी दुर्मति (पक्षपात) कर सकते थे?

बाबा वेणीमाधव लिखते हैं कि लक्ष्मण-पहाड़ी की गुफा में गोस्वामीजी निवास करते थे, पुनः नरहर्यानंद स्वामी की सम्मति से गुफा में से निकल कर सजे हुए मचान पर बैठकर नित्य सत्संग करते और विहार देखते तथा मृगया (शिकार) के कौतुक का भी अवलोकन करते थे।

"नित नित्य विहारहु देखत हैं,
मृगया कर कौतुक पेखत हैं।"

किंतु तुलसीदासजी जैसे कोमल हृदय भक्त को मृगया का दृश्य रुचिकर प्रतीत होता होगा, यह बात नहीं जँचती।

बाबा वेणीमाधव लिखते हैं—संवत् १६०६ में चित्रकूटस्थ तुलसीदास के पास श्रीहितहरिवंशजी ने वृंदावन से अपने शिष्य प्रियादास और नवल को भेजा। उन्होंने आकर जुहार किया, और गुरु हितहरिवंशजी की दी हुई यमुनाष्टक, राधासुधा निधि एवं राधिका तन्त्र-महानिधि नामक पुस्तकें और जन्माष्टमी की लिखी एक पत्रिका दी। उसमें लिखा था—हे सदय, महारास की रजनी आ रही है, मेरा चित-चोर ललचा रहा है, मैं शरीर को त्यागना चाहता हूँ, मुझे आप आशीर्वाद दें, तो मैं कुंज प्राप्त करूँ।

"सुनि बिनती मुनिमान, एवमस्तु इति भाषेउ
तनु तजि भए सनाथ, नित्य-कुंज प्रवेश करि।"

अर्थात्, तुलसीदास ने इस विनती को सुनकर 'एवमस्तु' कहा, और हितहरिवंशजी नित्यकुंज में प्रवेश कर (शरीर-त्याग) सनाथ हो गए। किंतु, प्रथमतः हितहरिवंशजी के सं० १६२२ तक जीवित रहने का प्रमाण मिलता है, जैसा कि पं० रामचंद्र शुक्ल अपने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में लिखते हैं—"ओरछा-नरेश महाराज मधुकरशाह के राजगुरु श्रीहरिरामजी व्यास सं० १६२२ वि० के लगभग आपके शिष्य हुए थे।" द्वितीयतः श्रीहितहरिवंश राधावल्लभीय संप्रदाय के प्रवर्तक थे। उन्हें तुलसीदासजी से तनु-त्याग की आज्ञा अथवा आशीर्वाद की क्या आवश्यकता पड़ी? और वह मरना क्यों चाहते थे?

बाबा वेणीमाधवदास सूरदासजी के विषय में लिखते हैं—

"सोरह सौ सोरह लगै, कामदगिरि ढिग वास

सुनि एकांत प्रदेस महँ आए सूर सुदास ।
पठए गोकुलनाथजी कृष्ण रंग में बोरि ;

कवि सूर दिखायेउ सागर को, सुचि प्रेम कथा नटनागर को ।
दिन सात रहे सतसंग पगे; पद कंज गहे जब आन लगे ।
गहि बाँह गोसाईं प्रबोध किए; पुनि गोकुलनाथको पत्र दिए ।"

अर्थात्, सं० १६१६ लगते ही कामदगिरि के समीप वास करते हुए तुलसीदासजी के पास (व्रजभूमि से) श्रीगोकुलनाथजी द्वारा कृष्ण-रंग में बोरे और भेजे हुए सूरदासजी आए । उन्होंने अपना 'सूरसागर' दिखाया, और वहाँ सात दिन रहे । चलते समय गोस्वामी जी के चरण छुए । तब गोस्वामीजी ने उन्हें बोध और एक पत्र गोकुलनाथजी के लिये दिया । परंतु संवत् १६१६ में श्रीगोकुलनाथजी आठ वर्ष के थे, और सूरदासजी ७६ वर्ष के । वह तो कृष्ण-रंग में पहले से ही रँगे हुए थे । उन्हें आठ वर्ष के बालक गोकुलनाथ, कृष्ण के रंग में क्या रँगते ? आठ वर्ष के श्रीगोकुलनाथ का ६२ वर्ष के गोस्वामी तुलसीदास के पास ७६ वर्ष के महात्मा सूरदास को भेजने का प्रयोजन क्या था ? क्या बूढ़े तुलसीदास को 'कनवर्ट' * करने का ? सूरदास तो वृद्धावस्था में व्रज छोड़कर कहीं जाते न थे, नेत्रांध भी थे ।

बाबा वेणीमाधवदास आगे लिखते हैं—

"सं० १६२८ में हनुमानजी ने प्रसन्न होकर गोस्वामीजी से कहा कि तुम अयोध्या में जाकर रहो । आज्ञानुसार गोस्वामीजी अयोध्या चल दिए । मार्ग में तीर्थराज प्रयाग पड़ा । वहाँ मकर स्नान के पर्व का आरम्भ था । उस पर्व के ६ दिन पश्चात् वट की छाया में गोस्वामीजी ने दो मुनि देखे । उन्हें दूर से ही प्रणाम किया । उनमें से एक ने गोस्वामीजी को अपने पास

* Convert=परिवर्तित

बुलाया। वह भूमि पर ही बैठ गए। परस्पर परिचय हुआ। वहाँ वही राम कथा हो रही थी जो गुरु ने सूकर-खेत में कही थी। इससे विस्मित होकर गोस्वामीजी ने मुनि से गुप्त-मत पूछा, तब याज्ञवल्क्य मुनि ने बतलाया कि यह कथा शिवजी ने तो भवानी और काकभुशुंड से कही एवं काकभुशुंड से मैंने सुनी, पुनः मैंने भारद्वाज को सुनाई। इस प्रकार संतुष्ट हो गोस्वामीजी उस दिन वहाँ से चले आए। पुनः उसी स्थान पर गए, परन्तु वहाँ न तो वट की छाया ही थी और न वे दोनों मुनि ही। यह देख उन्हें बड़ा विस्मय हुआ।"

> "तेहि अवसर उत्तम परब लागो मकर नहान,
> योगी, यती, तपी, सती, जुरे सयान-अयान।
> तेहि पर्व ते पाछे गए दिन छै, बट छाँह तरे जु लख्यो मुनि द्वै।"

> "सोइ राम कथा तँह होत रह्यो;
> गुरु शूकर खेत में जौन कह्यो।
> विस्मय-युत बूझेउ गुप्त मता;
> कहि जागवलिक मुनि दीन्ह बता।
> हर रंचि भवानिहि दीन्ह सोई;
> पुनि दीन्ह भुशुंडिहिं तत्त गोई।
> हौं जाइ भुशुंडि तें ताहि लहेउँ;
> भरद्वाज मुनी प्रति आई कहेउँ।"

दूसरे मुनि कौन थे, कुछ पता नहीं। बाबा वेणीमाधवदास ने गोस्वामी जी और ऋषि याज्ञवल्क्य का साक्षात्कार खूब कराया। सोचने की बात है, कब याज्ञवल्क्य और कब तुलसीदास!

बाबा वेणीमाधवदास लिखते हैं—

"राम-जन्म तिथि वार सब, जस त्रेता-युग माह,
तस यकतीसा मह धुरे, योग, लग्न, ग्रह, रास।"

अर्थात्, जैसे त्रेता युग में राम-जन्म के समय तो तिथि, वार, योग, लग्न, ग्रह, राशि आदि एकत्र हुए थे वैसे ही सम्वत् १६३१ की नवमी, मंगलवार, को भी एकत्र हुए थे। यदि बाबा वेणीमाधवदास को यह बात ज्ञात थी तो अवश्य गोस्वामीजी को भी होती। यदि ऐसा होता, तो वह अपने मानस का आरम्भ करते समय तिथि, वार आदि के साथ-साथ इसका भी उल्लेख अवश्य करते, और बड़े गौरव से। ज्योतिष के किसी विद्वान् ने भी अभी तक यह बात ज्ञात नहीं की।

'मूल गोसाईं-चरित' में लिखा है कि संवत् १६४२ में गोस्वामीजी ने सतसैया रची, और तभी मीन की शनीचरी के उतरते समय काशीपुरी में मरी पड़ी। लोगों ने अति दीनता से गोस्वामीजी के पास जाकर पुकार की—

"माधव सित सिय-जन्म-तिथि, ब्यालिस संवत बीच;
सतसैया बरणे लगे, प्रेम—वारि ते सींच।
उतरत सनीचर मीन, मरी पड़ी काशीपुरी;
लोगन है अति दीन, जाय पुकारे ऋषि निकट,

परन्तु तुलसीदासजी अपने ग्रंथों में लिखते हैं—

"खीसी विश्वनाथ की, विषाद बड़ो बारानसी,
बूझिए न ऐसी गति संकर-सहर की।
रोप महामारी परिताप महतारी दुनी,
देखिए दुखारी मुनि मानस मरालि के।
महामारी महेशानि महिमा की खानि, मोद-
मंगल की रासि दास कासीवासी तेरे हैं।
संकर-सहर—मर नर—नारि बारिचर
विकल सकल महामारी मांझ भई है।"

"उछरत, उतरात, हहरात, मरिजात,
भभरि भगात जल-थल मीचुमई है।"
—कवितावली

"अपनी बीसी आपु ही पुरिहि लगाए हाथ।"
—दोहावली

"कोढ़ में की खाजु है सनीचरी मीन की।"
—कवितावली

उक्त उद्धरणों से प्रतीत होता है कि जिस संवत् में रुद्र-बीसी के मध्य मीन राशि पर शनिश्चर थे, तभी काशी में मरी पड़ी थी। संवत् १६६५ से १६८५ तक रुद्र-बीसी थी। उसी के बीच में संवत् १६६६ से १६७१ तक मीन के शनि थे, अतः सं० १६६६ से १६७१ के मध्य में महामारी का होना संगत है। इसके पश्चात् सं० १६७३ में जहाँगीर के शासन-काल में पहली महामारी आगरे में पड़ी थी जैसा तुजुक जहांगीरी से विदित होता है×; किन्तु संवत् १६४२ में महामारी का कोई प्रमाण नहीं।

बाबा वेणीमाधवदास लिखते हैं—सं० १६४२ के लगभग तुलसीदासजी काशी के असी-घाट पर थे, तब कवि केशवदासजी उनसे मिलने गये और एक ही रात्रि में उन्होंने रामचन्द्रिका रचकर गोस्वामीजी को दिखाई।

"कवि केशवदास बड़े रसिया, घनश्याम सुकुल नभ के बसिया।
कवि जानि के दर्शन हेतु गए, रहि बाहर सूचन भेज दिये।"

× हिस्ट्री आव जहांगीर, वेणीप्रसाद, पृ० २६१-२६५, १६३०।
विंसेंट स्मिथ का अकबर, पृष्ठ ३६८।
जहाँगीरनामा, मुं० देवीप्रसाद का अनुवाद, पृष्ठ २२८, ३१३।

४

"रचि रामसुचंद्रिका रातिहि में, छुरे केशवजू असि घाटहि में।"

परंतु केशवदासजी स्वयं अपनी रामचंद्रिका में लिखते हैं—

" सोरहसै अट्ठावनै, कातिक सुदि, बुधवार,
रामचन्द्र की चन्द्रिका, तब लीनो अवतार।"

अर्थात् सं० १६५८ के कार्तिक शुक्ल, बुधवार में रामचंद्रिका अवतीर्ण हुई। बाबा वेणीमाधवदास पुनः लिखते हैं— सं० १६४६ या १६५० के लगभग गोस्वामीजी को दिल्ली जाते समय ओरछा में कवि केशवदास के प्रेत ने उन्हें घेरा, तब वह गोस्वामीजी की कृपा से बिना प्रयास प्रेत-योनि से मुक्त हो विमान पर चढ़कर स्वर्ग गए; पर कवि केशवदास ने संवत् १६५८ में 'रामचंद्रिका,' संवत् १६६४ में 'वीरसिंहदेव-चरित,' सं० १६६७ में 'विज्ञान-गीता' और १६६९ में 'जहाँगीर-जस चंद्रिका' की रचना की थी। स्व० पण्डित रामचन्द्र शुक्ल केशवदासजी का जन्म सं० १६१२ में और मृत्यु १६७४ के आस-पास मानते हैं।

बाबा वेणीमाधवदास गोस्वामीजी की ब्रज-यात्रा के विषय में लिखते हैं—तुलसीदासजी नाभाजी के साथ प्रसन्नता-पूर्वक श्रीमदनमोहनजी के मंदिर में गए और श्रीमदनमोहन ने उन्हें राम-भक्त जानकर, धनुष-बाण धारण कर दर्शन दिया।

"विप्र संत नाभा-सहित हरि-दर्शन के हेतु;
गए गोसाईं मुदित मन मोहन मदन-निकेत।
राम-उपासक जानि प्रभु तुरत धरे-धनु-बान;
दर्शन दिए सनाथ किय, भक्तवच्छल भगवान।"

प्रथमतः ध्यान देने की बात है कि नाभाजी के विषय में प्रसिद्ध है कि वह डोम थे; किंतु बाबा वेणीमाधव, उन्हें 'विप्र-संत' लिखते हैं। द्वितीयतः

'दो सौ-बावन वैष्णवों की वार्ता' गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-काल का प्रामाणिक ग्रंथ है। तदंतर्गत नंददासजी की वार्ता में लिखा है: "सो नन्ददासजी भाई तुलसीदास हते, सो काशी सों नन्ददासजी कूँ मिलिवे के लिये व्रज में आए······। जब नन्ददासजी श्रीनाथजी के दर्शन करिवे कूँ गए तब तुलसीदास हूँ उनके पीछे गए······। जब श्रीनन्ददासजी ने मन में विचार कीनो, यहाँ और गोकुल में हूँ इनकूँ श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन कराऊँ, तब ये श्रीकृष्ण के प्रभाव को जानेंगे। जब श्रीनन्ददासजी ने श्री गोवर्धननाथजी सों विनती करी सो दोहा—

आज की सोमा का कहूँ, भले विराजो नाथ,
तुलसी मस्तक तब नमें, धनुष-बाण लेओ हाथ।

"जब श्रीगोवर्धननाथजी ने श्रीरामचन्द्र को रूप धरके तुलसीदास कूँ दर्शन दिये तब तुलसीदासजी ने गोवर्धननाथजी कूँ साष्टांग दंडवत करी।"

संपूर्ण वार्ता से ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण भगवान् की मूर्ति ने नन्ददास की प्रार्थना से धनुर्धर राम का रूप धारणकर गोस्वामी तुलसीदासजी को दर्शन दिया था। यह भी ज्ञात होता है कि तुलसीदासजी महाकवि नन्ददास के, जो सनाढ्य ब्राह्मण थे, बड़े भाई थे और अपने छोटे भाई से व्रज में मिलने आये थे। बाबा वेणीमाधव ने उक्त घटना का विशेष उल्लेख नहीं किया। वह लिखते हैं—

"नन्ददास कनौजिया प्रेम-मढ़े,
जिन शेष सनातन तीर पढ़े।
शिक्षा गुरुबन्धु भए, तिहिते,
अति प्रेम सों आय मिले यहिते।"

अर्थात् नन्ददास कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। वह शेष सनातनजी के पास पढ़े थे। वह गुरुभाई थे, अतः आकर प्रेम-पूर्वक मिले। शेष सनातनजी की

सृष्टि और नन्ददासजी को सनाढ्य से कान्यकुब्ज बनाना यह सब क्यों ? मजा यह कि स्वयं नाभादासजी ने कृष्ण-मूर्ति का राम मूर्ति में परिवर्तित होकर तुलसीदास को अपने सामने दर्शन देने की अद्‌भुत एवं अलौकिक घटना का वर्णन अपने 'भक्तमाल' में नहीं किया। अस्तु।

बहुत खोज करने पर भी सर जॉर्ज ग्रियर्सन, एफ़. एस. ग्राउस एवं ग्रीव्ज़ आदि तुलसीचरितान्वेषी महानुभावों को बाबा वेणीमाधवदास कृत 'मूल गोसाईं-चरित' उपलब्ध नहीं हुआ था। विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र अपनी सटीक रामायण की भूमिका में लिखते हैं—"सुनते हैं कि वेणीमाधवदास कृत एक गोसाईं-चरित ग्रन्थ है, जो गोस्वामीजी के समय में ही रचा गया है; परन्तु यह भी इस समय नहीं मिलता है।" काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के विद्वान् संपादकों ने श्रीरामचरित-मानस का शुद्ध संस्करण संपादित करते समय गोस्वामीजी के जीवन-चरित की उपलब्धि पर विचार करते हुए लिखा है—"सबसे प्रामाणिक वृत्तांत बतानेवाला ग्रन्थ वेणीमाधवदास कृत गोसाईं-चरित है, जिसका उल्लेख बाबू शिवसिंह सेंगर ने 'शिवसिंह सरोज' में किया है; परन्तु खेद का विषय है कि न तो अब वह ग्रन्थ कहीं मिलता है, और न शिवसिंह सरोज-कार ने ही उसका संक्षिप्त वृत्तांत अपने ग्रन्थ में लिखा है।" स्व० पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखा है—"खेद है कि यह ग्रंथ पूरा नहीं मिला है।"

प्रारम्भ में लिखा जा चुका है कि 'मूल गोसाईं-चरित' नाम की पुस्तक को सेठ लक्ष्मीचंद छोटेलाल (श्री वैष्णव-पुस्तकालय, अयोध्या) ने रामायणी श्रीरामबालकदासजी द्वारा संशोधित, सटीक, श्रीरामचरित-मानस के प्रारम्भ में लगाकर प्रकाशित किया। कब ?—इसका कुछ पता नहीं; क्योंकि इस पर संवत् नहीं छापा गया है। पुस्तक प्राचीन नहीं है। यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना उचित होगा कि श्रीयुत गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामा-

यत्र सम्पूर्ण 'दीपक सहित' प० राममद ने शुद्ध की और हरिप्रसाद भगीरथ-जी ने बम्बई में जगदीश्वर छापेखाने में स० १९५६ में छापी और परमहंस सीताशरणजी की आज्ञा से लक्ष्मीचंद छोटेलाल ने प्रकाशित की। इस पुस्तक में 'तुलसीदास चरितामृत' नामकी गद्य-पद्य भूमिका है जो अधिकाँश में 'मूल गोसाईं-चरित' के विषय से मेल खाती है *। यही नहीं इसमें कई स्थानों पर मूल गोसाईं चरित के छंद ज्यों के त्यों मिलते हैं, किंतु कहीं भी यह नहीं बताया गया कि ये छंद 'मूल गोसाईं-चरित' के अथवा बाबा वेणीमाधवदास कृत हैं, यद्यपि अनेक अन्य सब छंदों के सामने कवि के नाम यथास्थान मिलते हैं। यह विचारणीय विषय है।

यह जानना आवश्यक प्रतीत होता है कि कतिपय प्रसिद्ध विद्वान् अब तक 'मूल गोसाईं चरित' के विषय में क्या लिख चुके हैं। 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' (जिल्द ८, स० १९८४ वि०,पृष्ठ ५२-५८) में बाबू श्यामसुंदर-दास ने कुछ विद्वानों की सम्मतियों का उल्लेख किया है। यद्यपि रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने 'मूल गोसाईं-चरित' की प्रशंसा की है तथापि उन्होंने तुलसीदासजी की जन्म तिथि पर संदेह प्रकट किया है।

---

* श्री गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत, श्री लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, एम्. ए.।

'सरस्वती' पृष्ठ ३६, जुलाई १९४०। पृष्ठ ३९ पर आपने लिखा है: 'कुछ ऐसे प्रकाशित ग्रंथ भी हैं जिनके अस्तित्व का हिंदी-संसार को अब तक पता नहीं है। श्री गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत एक ऐसा ही ग्रंथ है।' किंतु विदित हो कि इस पुस्तक का उल्लेख 'मूल गोसाईं-चरित की अप्रामाणिकता' नामक लेख में हो चुका है, जो वार्ष्णेयजी के लेख से पूर्व ही अप्रैल, १९४० की 'सुधा' में प्रकाशित हो गया था।

रायबहादुर बाबू हीरालाल भी चरित की ओर झुके प्रतीत होते हैं, किंतु वे लिखते हैं—

"यह सत्य है कि वेणीमाधव की सभी बातें विश्वास के योग्य नहीं हैं। उन्होंने अपने गुरु की महिमा इतनी बढ़ाई है कि उन्हें मुर्दा जिलाने, लड़की का लड़का बना देने आदि की शक्ति दे दी है।" स्वर्गीय पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—"इसमें वर्णित अधिकांश घटनाएँ सच जान पड़ती हैं। अलौकिक और मनुष्यातीत जितनी बातें इसमें हैं उनकी मात्र सचाई मे संदेह होता है।" सर जार्ज ग्रियर्सन लिखते हैं—"खेद है कि उन्होंने (पं०रामकिशोर शुक्ल ने) इस बात की पूरी सूचना नहीं दी कि यह हस्तलिखित पुस्तक, जिसका जिन्होंने सम्पादन किया, कहाँ विद्यमान है और वह किस दशा में है•••इस समय मैं मितियों के विषय में ज्योतिष-गणना करने में असमर्थ हूँ।"

पण्डित श्रीधर पाठक उक्त लेख में लिखते हैं—

"हमारी समझ में वेणीमाधव के मूल गोस्वामी-चरित में दी हुई सामग्री गोस्वामीजी के सविशेष जीवन-चरित के लिए अधिकांश में प्रामाणिक और उपयोगी है; केवल जन्म-संवत् की ओर जन्म संवत् से रामगीतावली के संकलन के पूर्व तक जो घटना काल दिए हैं उनकी सत्यता संदिग्ध प्रतीत होती है।•••यह कथन कि गोस्वामीजी का साहित्यिक जीवन उनकी ७४ बरस की उम्र में आरम्भ हुआ और ११८ बरस की वयस तक प्रवर्तित रहा—विश्वसनीयता की सामान्य सीमा के परे पहुँचता प्रतीत होता है।••• मरण-संवत् की प्रामाणिकता में संदेह का अवसर नहीं, अतः निकर्ष निकलता है कि जन्म-संबंधी दोहा मरण-संबंधी दोहे के बाद उसकी नक़ल में बनाया गया है।......तीर्थाटन समाप्त करके जब गोस्वामीजी चित्रकूट में बरसों के लिए बस गये तब उनके दर्शनार्थ दूर-दूर से साधु, महात्मा आदि आने

लगे। उनमें वृन्दावन के हितहरिवंशजी के भेजे हुए उनके प्रिय शिष्य नवलदास भी थे, जिनके हाथों उन्होंने 'यमुनाष्टक', 'राधा सुधानिधि' और 'राधा तंत्र' की पुस्तकें, मय संवत् १६०६ की जन्माष्टमी की लिखी हुई अपनी पत्री के, गोस्वामीजी की भेंट को प्रेषित की थीं। फिर सं० १६१६ में गोकुलनाथजी की प्रेरणा से गोस्वामीजी से मिलने महात्मा सूरदासजी आए और अपना प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ 'सूर सागर' उनको दिखाने के लिए साथ लाए। तदनंतर मीराबाई के पद्यबद्ध पत्र के आने का उल्लेख है। इस स्थल पर प्रश्न उठता है कि ये सब साहित्यिक संसर्ग विशिष्ट घटनाएँ गोस्वामीजी के साधुत्व के कारण हुई थीं, अथवा साधुत्व सहवर्ती कवित्व की प्रसिद्धि उनका हेतु थी? क्या उनसे यह आभासित नहीं होता कि तुलसीदासजी ने ७४ वर्ष की उम्र से बहुत पहले साहित्यिक कर्मण्यता के साथ संपर्क स्थापित कर लिया था और जिस समय उन्होंने 'राम-गीतावली' और 'कृष्ण-गीतावली' का संकलन और 'रामचरित-मानस' का निर्माण किया था, उस समय वे संवत् १५५४ के जन्मे, पौन शताब्दी पुराने शिथिलेन्द्रिय, जीर्ण-शीर्ण, जरठ नहीं थे? मरण-तिथि, जो मूल-चरित में दी हुई है, ठीक मानी जा सकती है; क्योंकि मूल-चरित के कर्ता बाबा वेणीमाधवदास गोस्वामीजी की मृत्यु के समय उनकी सेवा में उपस्थित रहे होंगे; परन्तु उपनयन, विवाह, स्त्री-त्याग, राम-दर्शन, सूरदास आगमन, टोडरमल मृत्यु इत्यादि घटनाओं की तिथियाँ बाबाजी को कहाँ से और कैसे प्राप्त हुई? कहा जा सकता है कि जन्म-तिथि गोस्वामीजी के जन्म-पत्र से ली गई होगी, या स्वयं गोस्वामीजी से मालूम हुई होगी; परंतु क्या जन्म होते ही माता-पिता से बिलगाए गए बालक का जन्म-पत्र बनाया गया होगा और जन्म-पत्र के अभाव में गोस्वामीजी को अपने जन्म के नक्षत्र, दिवस, तिथि, संवत् का ठीक ज्ञान होगा? सम्भव है, यज्ञोपवीतादि घटनाओं के संवतों का उनको ठीक ज्ञान रहा हो; परंतु यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता

कि उन घटनाओं के सवन् वेणीमाधवदास को गोस्वामीजी से प्राप्त हुए थे। अब 'मूल चरित' के संबंध में कुछ वाङ्मय विवेचना अपेक्षित प्रतीत होती है। यह कहा जाता है कि इसके रचयिता बाबा वेणीमाधवदास गोस्वामी-जी के पट्ट शिष्यों में थे और उनकी सेवा और सहवास में चिरकाल तक रहे थे। परंतु एक महाकवि के सत्संग का साहित्यिक दृष्टि से उनको कोई प्रशंस-नीय फल नहीं मिला; क्योंकि मूल-चरित सारा का सारा अनेक दोषों से परिप्लुत है। तोटक छंद का उसमें अधिक बाहुल्य है और उसी छंद में छंदो-भंग का प्रचुर प्राबल्य है। सिवाय दोहों के शेष सभी छन्द रचना में न्यूनाधिक अशुद्ध हैं। पृष्ठ २० पर जो एक शार्दूल विक्रीडित दिया हुआ है वह छंद करके अभिहित है। हरिगीतिका को भी वही नाम प्राप्त है। आश्चर्य है कि जिन गोस्वामीजी ने 'निर्धन भाट दमोदरहि आशिष दे कवि कीन्ह' उनकी शिष्यता में बरसों रहने पर भी वेणीमाधवदास को आदरणीय कविता बनाने की योग्यता प्राप्त नहीं हुई! प्रतीत होता है कि प्रकाशित होने के पहले मूल-चरित में कुछ संशोधन किए गये हैं।"

उक्त लेख में रायबहादुर पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र की आलोचना इस प्रकार है—"इसकी साक्षी अनेकानेक अंशों में इतनी असम्भव और भ्रष्ट है कि इसके किसी अंश पर भी विश्वास करना बड़े ही श्रद्धालु पुरुष का काम है•••वेणीमाधव के 'मूल गोसाईं-चरित' में ओर से छोर तक असम्भव घट-नाओं की भरमार है। कुछ उदाहरण लीजिए—

(१) गोस्वामीजी जन्म के समय ही पाँच वर्ष के थे। वह रोए नहीं और पृथ्वी पर गिरते ही उन्होंने 'राम' कहा। उनके उसी समय बत्तीसों दाँत मौजूद थे।

(२) पाँच वर्ष के जन्म समय में होते हुए भी गोस्वामीजी ६५ महीनों में बोलने और डोलने के योग्य हुए। क्या दस वर्षों के समान होकर

बेचारे डोल सके ! राम नाम तो जन्म के समय ही लिया था, फिर बोलने योग्य होने के लिए ६५ महीनों की क्या आवश्यकता पड़ी !

(३) बोलने-डोलने के योग तो ६५ महीनों में हुए, किंतु यज्ञोपवीत ६० की ही अवस्था में हो गया।

(४) उनकी स्त्री उन्हें पहले तो कुवाच्य कहकर उनके वैराग्य का कारण हुई, किंतु पीछे से जब मनाने से वे वापस न हुए तब तुरन्त मर गई। इस प्रकार लोग मरकर गिर नहीं पड़ा करते हैं। अन्य साहित्यों ने इसी स्त्री का बहुत पीछे गोस्वामीजी से साक्षात्कार लिखा है, जिसमें कई दोहों में बातचीत लिखी है। ये कुछ दोहे भी तुलसीकृत हैं।

(५) मीराबाई संवत् १६०३ ही में मर चुकी थीं, किन्तु उनका पत्र सं० १६१६ में गोस्वामीजी के पास आना लिखा है। काल विरुद्ध दूषण है।

(६) सं० १६२८ में पहले-पहल ७४ वर्ष की अवस्था में गोस्वामीजी का ग्रंथ-निर्माणारम्भ लिखा है। इतना बड़ा पंडित तथा सुकवि इतनी बड़ी अवस्था तक एक भी ग्रंथ न बनावे और बड़े चार-छः ग्रंथ बुढ़ापे में रच डाले—ऐसा मानना बड़े ही भोले आदमी का काम है !

(७) भगवान् की मूर्ति ने भोजन कर लिया तथा पत्थर के नंदीगण ने घास खा ली। जब इससे भी ज़्यादा घास खावे तब कोई समालोचक बीसवीं शताब्दी में ऐसे अनर्गल वादी को सच्चा साक्षी समझे !

(८) केशवदास ने 'रामचंद्रिका' एक ही रात में बना डाली। ग्रन्थ में प्रायः ४० अध्याय हैं और पूरा ग्रन्थ अच्छे पद्यों में है। इतना बड़ा ग्रन्थ एक ही रात में बन गया—यह बड़ा ही असम्भव कथन है।

(९) ब्राह्मणों ने सँडीले के मार्ग में गोस्वामीजी का अपमान किया,

जिससे वे निर्धन हो गए ! ठाकुर क्षितिपाल प्रणाम न करने से कंगाल हो गया, तथा जुलाहे भेद देने से विपुल धन-धान्य पा गए ! बादशाह जहाँगीर करामात दिखलाने का उत्सुक होने से वानरों द्वारा पीड़ित हुआ ।

(१०) गोस्वामीजी ने एक दरिद्र-मोचक-शिला उत्पन्न कर दी, तब एक स्त्री को पुरुष बना दिया । वास्तव मे वेणीमाधवजी की जिह्वा के आगे कोई खाई-खंदक नहीं है । ऐसे ही लोग असम्भव के उदाहरण में 'दश-हाथ की हड़' वाला कथन करनेवाले कवि को भी मात करते हैं !

(११) एक मरा हुआ मुर्दा आपने उसकी स्त्री के कारण जिला दिया ! तीन लड़के आपका एक दिन दर्शन न पाकर मर ही गए और आपने उन्हें तुरन्त जिला भी दिया !

इस असम्भव एकादशी का वर्णन केवल तीस पृष्ठ के छोटे के ग्रन्थ में प्रस्तुत है। हनुमान्जी तो गोस्वामीजी के पीछे ही पीछे फिरा करते थे और रामचन्द्र तथा महादेवजी ने भी इन्हें दर्शन दिए । ऐसे अनर्गल-भाषी का एक भी कथन एक मिनट के लिए भी विचारने योग्य नहीं ।... केवल तिथि संवत् आदि लिखने से किसी अनर्गल एवं असम्भव-भाषी के कथन प्रमाण-कोटि में नहीं आ सकते । इस ग्रन्थ का कोई भी भाग मान्य नहीं है।"

नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका के अष्टम भाग (सं० १९८४) मे पंडित मायाशंकर याज्ञिक ने भी कुछ महत्त्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डाला है—

(क) संवत् १६१६ में गोकुलनाथजी की आयु केवल ८ वर्ष की थी । गोकुलनाथजी के पिता गोस्वामी विट्ठलनाथजी स्वयं गद्दी पर विराजमान थे । गोकुलनाथजी के तीन भ्राता भी मौजूद थे । सूरदासजी रहते भी विट्ठलनाथ के पास थे । फिर उनका पत्र न लेकर एक आठ वर्ष के बालक का पत्र लेकर सूरदासजी का आना संभव नहीं प्रतीत होता । बाबा

वेणीमाधवदास ने इस सम्बन्ध में गो० गोकुलनाथजी का नाम लिखने में कदाचित् भूल की है।

(ख) नन्ददासजी और तुलसीदासजी की भेंट के विषय में जिस-रीति से वर्णन 'मूल गोसाईं-चरित' में किया गया है, वह भी विचारणीय है। यद्यपि इस भेंट का कोई संवत् गोसाईं-चरित में नहीं दिया गया है, फिर भी जिस क्रम से वर्णन किया गया है, उससे पाया जाता है कि बाबा वेणीमाधव-दास के कथानुसार यह भेंट संवत् १६४६ के पश्चात् हुई होगी; क्योंकि गोस्वामी तुलसीदास संवत् १६४६ में पिहानी के सुकुल से मिले थे। उसके बाद खैराबाद मिसिरिख होकर रामपुर पहुँचे और वहाँ से चलकर वृन्दावन आए और वृन्दावन में नन्ददासजी से मिले थे। इसलिए यह भेंट १६४६ के बाद ही गोसाईं-चरित के अनुसार होना मानना पड़ती है; परन्तु '२५२ वैष्णव वार्ता' से पाया जाता है कि नन्ददासजी का वैकुण्ठवास १६४६ से बहुत पूर्व हो चुका था। वार्ता में लिखा है कि तानसेन से नन्ददासजी का एक पद सुनकर अकबर ने नन्ददासजी से मिलने की इच्छा प्रकट की और उनको बीरबल द्वारा श्रीगोवर्धन में बुलवाया। नन्ददासजी की देह वहीं छूटी थी। जब यह समाचार विट्ठलनाथजी को विदित हुआ तो उन्होंने नन्ददास-जी की बड़ी सराहना की थी। इससे स्पष्ट है कि नन्ददासजी की मृत्यु गो० विट्ठ-नाथ और बीरबल दोनों से पहले हुई थी। गोस्वामी विट्ठलनाथ का गोलोक-वास सं० १६४२ में और बीरबल का स्वर्गवास सं० १६४० के आस-पास हुआ था। नन्ददासजी का देहावसान इससे भी पहले हुआ था। फिर गोसाईं-चरित में सं० १६४६ के पश्चात् नन्ददासजी और तुलसीदासजी की भेंट होना लिखा गया है, यह ठीक नहीं मालूम होता है।...'२५२ वैष्णवों की वार्ता' के आधार पर कुछ लोग नन्ददासजी को तुलसीदास का भाई मानते थे। वार्ता में नन्ददासजी को सनाढ्य ब्राह्मण लिखा है।...वार्ता के देखने

-से उसमें किसी दूसरे सनाढ्य तुलसीदास का वर्णन नहीं पाया जाता; किंतु गोस्वामीजी का वर्णन पाया जाता है।"

(ग) केशवदासजी के प्रेत योनि से छुड़ाने का जो समय गोसाईं-चरित में लिखा है वह ठीक नहीं है। गोसाईं-चरित में लिखा है कि दिल्ली से बादशाह का खवास गोस्वामीजी को बुलाने आया था। दिल्ली जाने के समय केशवदास को गोसाईंजी ने प्रेत-योनि से छुड़ाया था..........दिल्ली से लौटकर काशी आने के कुछ समय बाद सम्वत् १६६६ की वैशाखी पूर्णिमा को गोस्वामीजी के मित्र टोडर की मृत्यु हुई थी। अतः केशवदास को सम्वत् १६६४ के पूर्व ही गोस्वामीजी ने प्रेतयोनि से छुड़ाया होगा; परन्तु सम्वत् १६६६ तक केशवदासजी का जीवित रहना निश्चित है। इस सम्वत् मे उन्होंने 'जहाँगीर चंद्रिका' निर्माण की थी।

(घ) सम्वत् १६७० के अन्त में जहाँगीर का गोस्वामी से मिलने आना लिखा है, वह भी जाँच से ठीक नहीं ठहरता है। सम्वत् १६७० के बहुत पहले से गोस्वामीजी का अखण्ड वास काशी में ही था। इसलिये यदि जहाँगीर गोस्वामीजी से मिलने आया होगा तो काशी ही में आया होगा, परन्तु जहाँगीरनामे के देखने से पाया जाता है कि सम्वत् १६६६ की चैत बदी ११ से आश्विन सुदी २ सम्वत् १६७० तक तो जहाँगीर आगरे ही रहा। इस मिति को अजमेर के लिए रवाना हुआ और अगहन सुदी ७ को वहाँ पहुँचा था। पाँच दिन कम तीन वर्ष अजमेर में रहकर कार्तिक सुदी ३ सम्वत् १६७३ को दक्षिण की ओर रवाना हुआ था। सम्वत् १६७० या उसके तीन वर्ष बाद तक जहाँगीर आगरा, प्रयाग, काशी की ओर रहा ही नहीं था कि गोस्वामीजी के काशी में अखण्ड वास करते हुये उनसे मिलने आया। गोसाईं-चरित में सम्वत् १६७० के अन्त में उसका गोसाईंजी

से मिलने आना जो लिखा है, वह मानने योग्य नहीं है।

"मूल गोसाईं-चरित की ऐतिहासिकता पर कुछ विचार" नामक लेख में डा० माताप्रसाद गुप्त निम्न-लिखित बातों पर प्रकाश डालते हैं —

(क) हितहरिवंशजी ने (वेणीमाधवदास के अनुसार) १६०६ वि० की महारास-रजनी, अर्थात् कार्तिक की पूर्णिमा को शरीर त्याग किया, किन्तु इतना निश्चित है कि उनका देहान्त १६०६ वि० में नहीं हुआ, क्योंकि ओरछा नरेश महाराज मधुकरशाह के राजगुरु श्री हरिराम व्यासजी १६२२ वि० के लगभग आपके शिष्य हुए थे।

(ख) नाभाजी को 'विप्र सुत' कहा गया है, किंतु नाभाजी डोम कहे जाते हैं। मंदिर दर्शन के विषय में वेणीमाधवदास और '२५२ वैष्णव वार्ता' में सामजस्य नहीं।

(ग) वेणीमाधवदास के अनुसार उदयसिंह को १६२६ वि० में शाही सभाओं में सम्मान मिला, किंतु इतिहास-लेखकों का मत है कि सम्मान न उदयसिंह को मिला, न प्रतापसिंह को······ १६२८ वि० में उदयसिंह की मृत्यु हो गई।

(घ) वेणीमाधवदास के अनुसार टोडर के घर का बँटवारा उनके दो लड़कों के बीच हुआ, किंतु पचनामे से प्रतीत होता है कि वे चाचा-भतीजे थे।

प० रामनरेश त्रिपाठी अपने सटीक रामचरित मानस की भूमिका में लिखते हैं—"शिवसिंह (सेंगर) ने 'सरोज' में एक ऐसी पुस्तक का हवाला दिया है, जो अब अप्राप्य है। उस हवाले का परिणाम हुआ कि उसी नाम की पुस्तक प्राचीन कागज पर लिखकर या लिखवाकर चतुर आदमियों को तुलसी-दास के प्रेमियों के सम्मुख उपस्थित करने का सुअवसर मिल गया।······ 'मूल गोसाईं-चरित' को मैं······एक नव निर्मित पुस्तक मानता हूँ। मैंने

उसे ध्यान से पढ़ा है, उसके एक-एक शब्द और मुहावरों पर विचार किया है, तब मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उसकी आयु अभी बहुत थोड़ी है।......'मूल गोसाईं-चरित' की भाषा मुझे तीन-सौ वर्ष पुरानी मालूम नहीं होती। एक साधारण तुकबंदी ने, ग़ैर ज़िम्मेदारी के साथ जो कुछ उसके मग़ज़ में से निकला, या निकलवाया गया, बे-सिर-पैर के पद्यों में निकालकर रख दिया है। हमें उसका कहाँ तक विश्वास करना चाहिए? ......'मूल गोसाईं-चरित' हमें भ्रमपूर्ण और असत्य बातों से भरा मिलता है। हम उसे गोस्वामी तुलसीदासजी के जीवन-चरित के लिए बिलकुल ही विश्वास-योग्य नहीं मानते, वह किसी अनधिकारी व्यक्ति का लिखा हुआ जान पड़ता है। संभव है, उसका उत्पत्ति-स्थान कनक-भवन अयोध्या हो।" 'तुलसीदास और उनकी कविता' नामक ग्रंथ में त्रिपाठीजी इस प्रकार विचार करते हैं: "उसकी भाषा तीन-सौ वर्षों की पुरानी नहीं मालूम होती है। कुछ उदाहरण लीजिए—

एक दासि कही तेहि अवसर में, कहि देव बुलाहट हैं घर में।

"हमें इस 'बुलाहट' के 'हट' को देखकर संदेह हुआ था; क्योंकि 'हट' प्रत्यययुक्त शब्द जैसे—'घबराहट', 'मुस्कराहट', 'चिल्लाहट' आदि बहुत प्राचीन नहीं हैं, कम से कम मुझे किसी प्राचीन कवि की कविता में अभी तक नहीं मिले। हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी अध्यापक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को मैंने पत्र लिखकर और फिर मिलकर भी पूछा। वे भी 'हट' को प्राचीन नहीं मानते।

"'सत्यं शिवं सुंदरं' ने तो मूल चरित के आधुनिक रचयिता को अँधेरे में से खींचकर उजाले में ला खड़ा कर दिया है। 'सत्यं शिवं सुंदरं' संस्कृत का प्राचीन वाक्य है, पर अभी थोड़े दिनों से हिंदी वाक्यों में इसने प्रवेश पाया है। तुलसीदास ही ने नहीं किया तो उनके एक साधारण पढ़े-लिखे फ़क़ीर, चेले, बी. ए., विशारद थी, जो इस वाक्य तक पहुँचता।"

स्व० पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास'* में इस विषय पर विचार किया है। उनका कथन है कि अयोध्या में एक ऐसा निपुण दल है जो समय-समय पर पुस्तक प्रकट करता रहता है। उनकी सम्मति मे 'सत्यं शिवं सुंदरं' अंग्रेजी के 'The True, the Good and the Beautiful' का अनुवाद है, जो ब्रह्म-समाज के द्वारा बंगाली साहित्य मे और फिर हिंदी में प्रविष्ट हुआ।

स्व० डा० श्यामसुन्दर दासजी की अन्त तक 'मूल गोसाईं-चरित' में आस्था रही। उनका कथन है कि यदि यह जाल है भी तो यह अयोध्या में नहीं रचा गया।

तथ्य यह है कि 'मूल गोसाईं चरित' परीक्षा की कसौटी पर ठीक नहीं उतरा है, भाषा और इतिहास की दृष्टि से खरा नहीं है। यह जिस समय रचा हुआ बताया जाता है, उससे कहीं पीछे का है। चमत्कार, असम्भव घटनाओं और इतिहास-व्यतिक्रमों ने तो इसकी मौलिकता का अपहरण कर ही लिया है।

[ख] 'तुलसी-चरित' का वाग्जाल—

बाबू इन्द्रदेव नारायण ने प्रयाग से निकलनेवाली 'मर्यादा' नाम की मासिक-पत्रिका की, जेष्ठ संवत् १०६६ की संख्या में, एक लेख प्रकाशित कराया, जिसमें मिश्रबंधु-कृत 'हिंदी नव-रत्न' की विरोधात्मक समालोचना की गई थी—इसी लेख के मध्य में तुलसी-चरित नामक एक ग्रन्थ की सूचना इस प्रकार दी गई थी—"गोस्वामीजी का जीवन-चरित उनके शिष्य महानुभाव महात्मा रघुवरदासजी ने लिखा है। इस ग्रन्थ का नाम 'तुलसी-चरित' है। यह बड़ा ही वृहत् ग्रन्थ है। इसके मुख्य चार खंड हैं—

* १९४० सन् का संस्करण, पृष्ठ १५०–१५१।

(१) अवध, (२) काशी, (३) नर्मदा और (४) मथुरा, इनमें भी अनेक उपखंड है। इस ग्रन्थ की छंद संख्या इस प्रकार लिखी हुई है—

'एक लाख तैंतीस हजारा, नौ सै बासठ छंद उदारा।'

"यह ग्रंथ महाभारत से कम नहीं है। इसमे गोस्वामीजी के जीवन-चरित विषयक नित्य प्रति के मुख्य मुख्य वृत्तांत लिखे हुए हैं। इसकी कविता अत्यंत मधुर, सरल और मनोरंजक है। यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि गोस्वामीजी के प्रिय शिष्य महात्मा रघुवरदासजी विरचित इस आदरणीय ग्रंथ की कविता श्री रामचरित-मानस के टक्कर की है और यह 'तुलसी-चरित' बड़े महत्व का ग्रंथ है। इससे प्राचीन समय की सभी बातों का विशेष परिज्ञान होता है।"

'माधुरी' की तुलसी संख्या, १६२२ में प्रकाशित 'गोस्वामी तुलसीदासजी' नामक लेख में स्व० बाबू शिवनंदनसहाय 'तुलसी-चरित' की प्राप्ति पर इस प्रकार विचार करते हैं—

"हमे ज्ञात हुआ है कि केसरिया (चंपारन) निवासी बाबू इन्द्रदेवनारायण को गोसाईंजी के किसी चेले की एक लाख दोहे चौपाइयों में लिखी हुई गोसाईंजी की जीवनी प्राप्त हुई है। सुनते हैं, गोसाईंजी ने पहले उसका प्रचार न होने का शाप दिया था, किंतु लोगों के अनुनय विनय से शाप-मोचन का समय संवत् १६६७ निर्धारित कर दिया। तब तक उसकी रक्षा का भार उसी संत को सौंपा गया जिसने गोसाईंजी को श्री हनुमान्‌जी से मिलने का उपाय बताकर श्री रामचंद्रजी के दर्शन की राह दिखाई थी। वह पुस्तक भूटान के किसी ब्राह्मण के घर मे पड़ी रही। एक मुंशीजी उसके बालकों के शिक्षक थे। बालकों से उस पुस्तक का पता पाकर उन्होंने उस की पूरी नकल कर डाली। इस गुरुतर अपराध से क्रोधित हो वह ब्राह्मण

उनके वध के निमित्त उद्यत हुआ तो मुंशीजी वहाँ से चंपत हो गए। वही पुस्तक किसी प्रकार अलवर पहुँची और फिर पूर्वोक्त बाबू साहब के हाथ लगी। क्या हम स्वजातीय इन मुंशीजी की चतुराई और बहादुरी की प्रशंसा नहीं करेंगे? उन्होंने सारी पुस्तक की नकल कर ली। तब तक ब्राह्मण देवता के कानों तक खबर न पहुँची और जब भागे तो अपने बोरिए-बन्ने के साथ उस दीर्घ-काय ग्रंथ को लेते हुए! इसके साथ ही क्या अपने दूसरे भाई को यह अभूतपूर्व और अलभ्य पुस्तक हस्तगत करने पर बधाई न देनी चाहिए? पर प्रेत ने उसकी कैसे रक्षा की और वह उस ब्राह्मण के घर कैसे पहुँची, यह कुछ हमारे सवाद-दाता ने हमें नहीं बताया। जो हो, जिस प्रेत की बदौलत सब कुछ हुआ, उसके साथ गोसाईंजी ने यथोचित् प्रत्युपकार नहीं किया। वनखंडी तथा केशवदास के समान उसके उद्धार का उद्योग तो भला करते, उल्टे उसके माथे तीन सौ वर्ष तक अपनी जीवनी की रक्षा का भार डाल दिया।

'मिश्र-बन्धु विनोद' में मिश्र-बंधु लिखते हैं: "हम 'तुलसी चरित' को प्रमाण नहीं मानते हैं, क्योंकि इस ग्रन्थ को अभी तक सिवा एक-आध सज्जनों के और किसी ने नहीं देखा है और उन महाशय ने हम से कई बार वादा करने पर भी उस ग्रन्थ के दिखाने में कोई तत्परता नहीं की।"

पंडित रामचंद्र शुक्ल भी इस बात को 'तुलसी ग्रन्थावली' की प्रस्तावना में स्वीकार करते हैं कि इस पुस्तक को और किसी ने नहीं देखा है।

रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दर दास और डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल 'गोस्वामी तुलसीदास' नामक ग्रन्थ में 'तुलसी-चरित' के विषय में इस प्रकार लिखते हैं—"खेद है कि इस बृहत् ग्रन्थ के एक लाख तेंतीस हज़ार नौ सौ बासठ उदार छंदों में से हमें केवल अवध-खंड की ४२ चौपाइयों और ११ दोहों को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिन्हें स्वय

इंद्रदेव नारायणजी ने उक्त लेख मे दिया है।......शेष 'उदार' छंदों को जगत के सामने रखने की उदारता उन्होंने नहीं दिखाई है। उक्त ग्रन्थ को भी स्वय इंद्रदेव नारायणजी के अतिरिक्त और किसी लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक ने नहीं देखा है। सभवतः वे उसकी जॉच कराना पसद नहीं करते। उस विषय के पत्रालाप से भी उन्हें आनाकानी है। इसलिए यह निश्चय नहीं किया जा सकता है कि यह ग्रथ कहाँ तक प्रामाणिक है।" आगे चलकर 'गोस्वामी तुलसीदास' के लेखक कहते हैं: "यह वंश-परम्परा तुलसी चरित में दी हुई है, पर इसका समर्थन और कहीं से नहीं होता। यह ग्रन्थ भी आलोचकों की दृष्टि से बचाकर रखा हुआ है। इसलिए खेद है कि हम इस परम्परा को मानकर नहीं चल सकते।...... तुलसी-चरितवाले कथानक को यदि सत्य मानते हैं तो पिता के द्वारा त्याग दिए जाने की कथा झूठी ठहरती है, परन्तु जैसा हम ऊपर दिखा चुके हैं, पिता के द्वारा त्याग दिए जाने की बात स्वय तुलसीदासजी के वचनों से सिद्ध है। अतएव 'तुलसी चरित' की विवाह-सबधी बातें माननीय नहीं हैं। इसके अतिरिक्त रघुबरदास ने तुलसीदास के घर से वैरागी होने के लिए निकलने पर जो दशा बताई है, वह उस व्यक्ति की-सी नहीं है, जिसके हृदय में वैराग्य का उदय हुआ हो। उनका हृदय वैराग्य की अनुभूति से रहित जान पड़ता है। वे घर से जबर्दस्ती निकले हुए-से लगते हैं। इस समय रघुनाथ पडित ने उन्हें 'विसोक आतुर गति धारी' देखा था। इस पडित से बुद्धिमती के विषय में तुलसीदास ने कहा था—

'अहो नाथ तिन्ह कीन्ह खोटाई। मात भ्रात परिवार छोड़ाई।'

यह ऐसे व्यक्ति का-सा वर्णन नहीं है जिसके हृदय में वैराग्य की

अनुभूति हो। तुलसीदासजी का जो रूप उनके ग्रंथों से प्रस्फुटित होता है, यह उसके प्रतिकूल पड़ता है×।"

'सनाढ्य-जीवन' के तुलसी-स्मृति अङ्क में कान्यकुब्ज कुलभूषण श्री पं० रामस्वरूपजी मिश्र ने 'श्री तुलसीदास के काल्पनिक जीवन-चरित्र पर एक दृष्टि' पात किया है। आप लिखते हैं ——

"तुलसी चरित में रघुनाथ पंडित और गोस्वामी तुलसीदासजी के प्रश्नोत्तर विचारणीय हैं। प्रायः अपरिचित व्यक्ति के परिचय के लिए उसका नाम, धाम, जाति, वृत्ति, तथा वर्तमान दशा का पूछना ही पर्याप्त होता है, इन बातों के ज्ञात हो जाने पर विशेष बातें किसी विशेष प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए ही पूछी जाती हैं, किन्तु रघुनाथ पंडित का साधारण परिचय भी न होते हुए सम्पूर्ण कुटुम्ब का वृत्तान्त, पिता की पूर्व पीढ़ियों के साथ ससुराल आदि जानने का परिचय प्राप्त करना अस्वाभाविक है, और रघुनाथ पंडित का कथन तो सर्वथा उपहासास्पद ही प्रतीत होता है। 'लखों चिह्न मिश्रन सम तोरा, विसुचि मंजु मम गोत्र किशोरा': तुम्हारे चिह्न मिश्रों के समान देखता हूँ, अतः तुमको मैं अपने पवित्र गोत्र का पुत्र अनुमान करता हूँ।' यहाँ पर रघुनाथ ने गोस्वामीजी के मिश्र जान पड़नेवाले चिह्न नहीं दिए, शायद उस समय मिश्रों के कोई विशेष चिह्न होते हों, जो अन्य आस्पदीय ब्राह्मणों में न पाये जाते हों, किन्तु गोस्वामीजी ने अपनी कविता में अपने किन्हीं विशेष चिह्नों का संकेत नहीं किया है, न अपने को मिश्र ही लिखा है। उन्होंने तो स्पष्ट रूप से अपना जन्म सुकुलों में लिखा है—— 'दियो सुकुल जनम शरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को'...विद्वान् गोस्वामी जी ने रघुनाथ पंडित के प्रश्नों के विस्तृत उत्तर में अपने कुल-गुरु तुलसी-

× स्व० बा० श्याम सुन्दरदास जी अपनी पहली कृतियों में तुलसी चरित' की ओर झुके थे।

राम द्वारा नामकरण, रामदास गुरु से केवल तीन वर्ष में समस्त शास्त्र पुराणादि पढ़ना, अपनी कुण्डली के ग्रहों के फल, विवाह-दहेज में हज़ारों रुपये लेना, बौद्ध, जैन वाम मार्ग का अप्रासंगिक वर्णन, अपने को धनी, विद्यावान, तपस्वी, तेजस्वी, बुद्धिमान्, वचनसिद्ध, स्वरूपवान्, गौर वर्ण और विदेह समान ज्ञानी बताना, तथा पिता द्वारा अपनी माता, भ्राता, भगिनी, भावज, भतीजे, भतीजियों सहित अपना १६ व्यक्तियों का घर से निकाले जाना आदि कहने और न कहने योग्य सभी बातें तो एक अपरिचित पुरुष से बिना पूछे ही कह डालीं।" स्व० बाबू शिवनन्दनसहाय की भाँति मिश्रजी भी इस बात पर आश्चर्य प्रकट करते हैं कि गोस्वामी जी को ६,०००) दहेज में मिले, सो भी तीसरे विवाह में, यद्यपि ऐसा प्रसिद्ध है कि गोस्वामीजी को बालकपन में आर्थिक सकट का सामना करना पड़ा, जैसा कि स्वय उनकी ही उक्तियों से स्पष्ट है। मिश्रजी की धारणा है कि "वास्तव में यह 'तुलसी चरित' उनके किसी भी शिष्य का लिखा नहीं जान पड़ता, यह अवश्य ही किसी स्वार्थ-साधक मिश्र का बेतुका गाना है।"

'तुलसी चरित' 'मर्यादा' के अतिरिक्त 'तुलसी ग्रन्थावली' और 'गोस्वामी तुलसीदास' 'रामचरित मानस सटीक, और 'तुलसीदास और उनकी कविता' मे भी उद्धृत है, जो ग्रन्थ क्रमशः नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, हिन्दुस्तानी एकाडेमी, इण्डियन प्रेस, और हिन्दी मंदिर, प्रयाग, से प्रकाशित हुए। त्रिपाठीजी ने कदाचित् स्व० रा० ब० श्यामसुदरदास जी से नक्ल की है। यह ध्यान देने की बात है कि सभी उद्धरणों में पर्याप्त सशोधन भी हुआ है। शब्द तक बदल दिये गए हैं और कहीं-कहीं वाक्य विन्यास में भी अंतर है। ऐसा न जानें क्यों हुआ है?

'तुलसी चरित' के अनेक स्थल ऐसे हैं जो अंधकार-मय हैं। यथा—

'राजधानि ते जानिए, कोश विंश नय भूप।
जन्म भूमि मम और पुनि, प्रगट्यो बौध स्वरूप॥

चौपाई

बोध स्वरूप पेंडते मारी। उपल रूप महि दीन बलारी ॥
जैनामाह चल्यो मत भारो। रक्षा जीव पूर्ण परिचारी ॥

अति आदर करि भूप रखावा। बाम मार्ग पथ शुद्ध चलावा ॥
स्वाद त्यागि शिव शक्ति उपासी। जिनके प्रगट शंभु गिरिवासी ॥

दोहा—राज योग दोउ सुख सु एहि, होंहिं अनेक प्रकार।
अन्ते दया मुनीस को, लियो जन्म बरनार ॥

बौद्ध-स्वरूप और जैनामाह मत क्या है? जैन और बौद्ध धर्म तो गोस्वामी जी की चार ऊँची पीढ़ियों से भी कम से कम एक एक हजार वर्ष पहले प्रचलित थे। 'बाम मार्ग पथ शुद्ध' क्या है? बाम मार्ग भी बहुत प्राचीन है। अस्तु—

'तुलसी चरित' की निम्न-लिखित पंक्तियाँ विशेषत विचारणीय हैं—
पुनि भारती पक्ष सम हेता। कियो परम गुरुदेव सचेता ॥
पढ़ि मुनि पाणिनीय को ग्रथा। वसु अध्याय शब्द वर पथा ॥
दीक्षित ग्रंथ समग्र विचारी। पढ़े कृपा गुरु शेखर भारी ॥
कौस्तुभादि मह भाष्य विचारी। ... ...
बरष एक मह शब्दहि जोई। पुनि पट् शास्त्र वर्ष महँ गोइ ॥
सकल पुरानकाव्य अवलोकी। तीन वर्ष महँ भयो विशोकी ॥

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास ने केवल तीन वर्षों में बहुत कुछ पढ़ लिया। एक वर्ष में सब गुण पढ़ लिए, एक वर्ष में सम्पूर्ण व्याकरणादि पढ़ लिया और एक वर्ष में छहों शास्त्र पढ़ लिए।

चतुर से चतुर मनुष्य ऐसा नहीं कर सकता । १८ हों पुराण के पारायण मात्र मे बहुत समय लग जाता है। सुनते हैं कि अकेला व्याकरण ही बारह वर्षों में समाप्त होता था। गोस्वामीजी असाधारण मनुष्य थे, अतएव विचारार्थ हम माने लेते हैं कि उन्होंने केवल तीन वर्ष मे ही सब व्याकरण शास्त्र और पुराण पढ़ लिए।

किन्तु एक बात खटकती रहती है कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने दीक्षित, कौस्तुभ और शेखर पढ़ लिए। ऐसा कदाचित् मान भी लिया जाय कि उन्होंने पाणिनि की अष्टाध्यायी पतजलि का महा भाष्य पढ़े हों, क्योंकि वे गोस्वामीजी से कहीं पहले के हैं, यद्यपि तुलसीदास जी की क्षीण सस्कृत-रचना से तो यही प्रकट होता है कि उन्हें सस्कृत-व्याकरण का अधिक बोध न था। इस पर आगे चलकर प्रकाश डाला जायगा। गोस्वामी जी भला दीक्षित, कौस्तुभ और शेखर किस प्रकार पढ़ सकते थे, जब कि ये रचनायें गोस्वामीजी की मृत्यु के पश्चात् ससार को मिली हैं।

स्मरण रहे कि सिद्धान्त, कौस्तुभ और मनोरमा के कर्त्ता भट्टोजी दीक्षित जगन्नाथ पंडितराज के समकालीन थे, अत शाहजहाँ के शासन काल मे विद्यमान थे, जैसा कि श्री पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी ने 'हिन्दी रस गङ्गा-धर' की भूमिका के पृष्ट २२ २४ पर लिखा है, जिसे काशी नागरी प्रचा-रिणी सभा की ओर से इंडियन प्रेस ने १९८६ वि० में प्रकाशित किया। ए० ए० मैकडानल ने ए हिस्ट्री आव सस्कृत लिटरेचर (१९१७ नवीन सस्करण) के ४३२ वें पृष्ठ पर भट्टोजी को सत्रहवीं शताब्दी का माना है। उसी प्रकार काशी-विश्व विद्यालय के प्रो० प० सीताराम जयराम जोशी एम० ए० साहित्यशास्त्राचार्य और प० विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज एम० ए० काव्यतीर्थ ने अपने 'सस्कृत साहित्य का सक्षिप्त इतिहास' (पृष्ठ २१४) में भट्टोजी को सप्तदश शतक के प्रारम्भ का माना है। श्री सदाशिव शर्मा जोशी

ने स्वसंपादित एवं भट्टोजी दीक्षित-कृत 'प्रौढ़ मनोरमा' के प्रस्ताविक्रम् (१९-२८ ई०) के चतुर्थ पृष्ठ पर भट्टोजी के विषय में इस प्रकार लिखा है—

'अस्य कर्त्तारः पूज्य पादाः खिस्ताब्द मानेन १६३० खाग्नि रसेन्दु परिमिते सवत्सरे वाराणसी वास्तव्या महाराष्ट्र ब्राह्मणा भट्ट कुलावतंसाः श्री मल्लक्ष्मीधर पंडितवर तनूजन्मानः श्रीमच्छेष कृष्णाभिधगुरोश्चरणानुराधन समासादित वैदुषी भूषिताः सुगृहीतनामधेयाः विद्यावारिधिमथन दीक्षिता भट्टोजी दीक्षिता इति विदितमेव समेषां विदुषाम् ।'

इससे स्पष्ट है कि भट्टोजी दीक्षित १६३०ईसवी में प्रकाश में आये। महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसाद और वासुदेव शर्मा पणशीकर ने 'रस गङ्गाधर, का १९१६ ई० में संपादन किया, जिसमें उन्होंने नागेश भट्ट के विषय में इस प्रकार लिखा है—

'अत्र पंडित राजाद् द्वितीयः पुरुषो नागेश आसीदिति ज्ञायते। पूर्वं निर्णीते आसन्ने जगन्नाथ पंडितराज समये १६६६ खिस्ताब्दे पुरुषद्वय पर्याप्तानि चत्वारिंशद्वर्षाणि योज्यन्ते चेत्तदा १७०६ खिस्ताब्दाप्यमासन्नो नागेश समयः समायाति। अथ च जयपुर-महाराजाः श्री सवाई जयसिंह वर्माणोऽश्वमेध-प्रसंगे नागेश-भट्टाय निमन्त्रणपत्रं प्रहितवन्तः। तदा नागेशेन अहं-क्षेत्र संन्यासं गृहीत्वा काश्यां स्थितोऽस्मि, अतस्तां परित्यज्यान्यत्र गन्तु न शक्नोमि। इत्युत्तरं प्रहितम् एषा किंवदन्ती जनऐऽधुनाऽपि प्रसिद्धास्ति। श्री जयसिंह महाराजाश्च १७१४ खिस्ताब्देऽश्वमेध कृतवन्त इत्युक्तमेव प्राक्। अय मश्वमेधसंवत्सरोऽपि पूर्वलिखित १७०६ खिस्तसंवत्सरासन्न एवेति खिस्ताब्दीकाष्टादश शतक प्रथम तुरीयांशे नागेश भट्ट आसीदिति व्यक्त मेव।'

उक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि भट्टोजी दीक्षित १६३० ई० में प्रकाश में आए, किन्तु सभी उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार गोस्वामीजी १६२३ ई० (अर्थात् १६८० संवत् वि०) दिवंगत हुए थे। नागेश भट्ट कृत 'परि-

भाषेन्दुशेखर', 'वृहच्छब्देन्दुशेखर' और 'लघुशब्देन्दु शेखर' तो और भी पीछे (अठारहवीं शताब्दी) की कृतियां है। अतः स्पष्ट है कि गोस्वामी जी ने तो 'सिद्धान्त कौमुदी' के कर्त्ता भट्टोजी दीक्षित और नागेश भट्ट-कृत शेखरों के नाम भी न सुने होंगे, पढ़ने की बात ही क्या!

कदाचित् गोस्वामीजी के संस्कृत-ज्ञान की चर्चा अप्रासंगिक न होगी।

रामचरितमानस' के श्लोकों की रचना देखने से अनेक विद्वानों की सम्मति अब तक यही रही है कि तुलसीदास संस्कृत भाषा के साधारण पंडित थे*। वे बहुश्रुत एवं असाधारण पौराणिक थे, किंतु 'शेखर,' 'मनोरमा' आदि के ज्ञाता अथवा भाष्यान्त वैयाकरण नहीं थे, जैसा कि 'तुलसी चरित' के लेखक ने लिख मारा है। गोस्वामीजी की संस्कृत-रचना में कई अशुद्धियाँ हैं। आर्ष-प्रयोग कहकर इन त्रुटियों का भी समाधान किया जा सकता था, यदि ये अशुद्धियाँ स्वल्पसंख्यक होतीं और गोस्वामीजी कालिदास आदि कवियों से पहले होते। किन्तु ऐसा नहीं। पद्य संख्या की देखी त्रुटियां कुछ अधिक और इतनी स्पष्ट हैं कि थोड़ा सा संस्कृत का ज्ञान रखने वाला भी सहज में ताड़ लेता है। इससे इनके साधारण संस्कृत पाण्डित्य की पुष्टि होती है।

---

* मंगला चरण और ग्रंथ की समाप्ति में कुछ श्लोक शुद्ध संस्कृत के भी रखे हैं, जिनसे यह प्रकट होता है कि ये संस्कृत के ज्ञाता थे, परंतु संस्कृत के अच्छे कवि नहीं थे और संस्कृत व्याकरण में कच्चे थे—राम चरितमानस (श्यामसुन्दरदास द्वारा सम्पादित) इंडियन प्रेस, १९१५; पृष्ठ ७३-७५

"He was never a good Sanskrit scholar and some of his few verses in that language contain grammatical blunders."—G.A. Grierson (Gyclopaedia of Ethics and Religion)

'मानस' के संस्कृत पद्यों की अशुद्धियाँ इस प्रकार हैं :—

अयोध्या काण्ड के तीसरे श्लोक में 'सीता समारोपित वाम भागम्' लिखा है। यहाँ सप्तम्यन्त का पूर्व निपात होने से 'वामभाग समारोपित-सीतम्,' ऐसा पाठ होना चाहिये।

अरण्य काण्ड में 'नमामि भक्तवत्सलं' यह अविकल स्तव है। इसमें कई प्रयोग खटकते हैं—

'निषंगचापसायकं धरम्'—यहाँ पर 'निषंगचापसायकधरम्,' ऐसा होना चाहिये।

'मुनीन्द्र सन्त रञ्जनम्'—इसमें 'सन्त' शब्द का प्रयोग लौकिक व्यवहार के अनुसार है। व्याकरण से 'सत्' अथवा सज्जन होना चाहिये।

'त्वमेक मद्भुतं प्रभुम्'—यहाँ पर 'त्वम्' के स्थान पर 'त्वाम्' होना चाहिये।

'नतोऽस्म्युर्विजापतिम्'—यहाँ पर 'उर्विज' के स्थान पर 'उर्वीज' होना चाहिये।

किष्किन्धा-काण्ड के प्रथम श्लोक में 'विज्ञान धामौ' के स्थान 'विज्ञानधामानौ' होना चाहिये। 'धाम' शब्द अकारान्त नहीं, अन्नन्त है।

सुन्दर-काण्ड के प्रथम श्लोक मे 'ब्रह्मा शम्भु फणीन्द्र सेव्यम्' पाठ है। 'ब्रह्मा' शब्द आकारान्त नही, अन्नन्त है। समास में 'न्' का लोप हो जाने से 'ब्रह्मशम्भुफणीन्द्र-सेव्यम्' होना चाहिए। इसी प्रकार तीसरे श्लोक में हनुमान् जी की स्तुति मे 'अतुलित बल धामम्' के स्थान पर 'अतुलित बलधामानम्' पद होना चाहिए।

लङ्का-काण्ड के तीसरे श्लोक म 'शंकरः श तनोतु माम्' मे 'माम्' का प्रयोग ठीक नहीं है। इसके स्थान पर 'मे' होना चाहिए।

'कोशलेन्द्र पद कञ्जमञ्जुलौ'—यहाँ पर 'पद' का निर्विभक्तिक प्रयोग व्याकरण सम्मत नहीं है। 'पद' शब्द नपुंसक लिंग है (पद व्यवसितित्राण-स्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु—अमर कोष) अतएव 'कोशलेन्द्र पदे' होना चाहिए और उसके विशेषणों मे सर्वत्र नपुसकलिंग का प्रयोग होना चाहिए, जैसे 'कज मजुले'। अथवा अमरकोष की भानुजि दीक्षित कृत व्याख्यासुधा नामक टीका में 'पदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्' के विवरण में उपन्यस्त स्वामी तु पदोंघ्रिः इति पठन्दान्तं न मन्यते' इस वाक्य के अनुसार पद शब्द को पुल्लिग भी माना जाय तो भी 'कोशलेन्द्रपदौ' तो होना ही चाहिए।

'मन भृङ्गसङ्गिनौ' यहाँ पर 'मन' शब्द को अकारान्त माना गया है, जब कि उसके सकारान्त होने के कारण 'मनोभृङ्गसङ्गिनौ' पाठ होना चाहिए।

कुन्द-इन्दु-दर-गौर-सुन्दरम्।' यह अवश्य ही समासान्त पद है। समास में संधि नित्य होती है; किन्तु इस पद में व्याकरण के इस नियम का उल्लघन स्पष्ट है। 'कुन्देन्दुदरगौर सुन्दरम्,' ऐसा पाठ होना चाहिए।

'कारुणीक कलकञ्जलोचनम्'—इसमें कारुणीक शब्द स्थान पर 'कारुणिक' होना चाहिए। पाणिनि के ४। ४। ६१ सूत्र के अनुसार करुणा और ठक् के संयोग से कारुणिक शब्द ही सिद्ध होता है और कोष में भी ऐसा ही प्रयोग है (स्याद् दयालुः कारुणिकः सुरतः समाः)

इसी काण्ड में रुद्राष्टक नामक प्रसिद्ध सुन्दर स्तुति है। इसमें व्याकरण की अशुद्धियां कई है, जैसे कि त्रय.शूलनिर्मूलनम्' इसमें 'शूलत्रय-निर्मूलनम्' अथवा 'त्रिशूलनिर्मूलनम्' पाठ होना चाहिए।

'पुरारी'—यह शब्द ईकारान्त नहीं है अपितु इकारान्त है।

'नतोहं सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यम्'—इसमें 'शम्भु' के स्थान पर 'शम्भो' और 'तुभ्यम्' के स्थान पर 'त्वाम्' होना चाहिए।

'प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी'—यहाँ 'मन्मथारे' का प्रयोग होना चाहिए। +

+ तुलसीदास ने कुछ ऐसे प्रयोग किये हैं, जो संस्कृत के व्याकरण-शास्त्रियों को खटकते हैं और लोग आशका कर बैठते हैं कि तुलसीदास को जैसा संस्कृत साहित्य का ज्ञान था वैसा संस्कृत भाषा का नहीं...... अयोध्या काण्ड के दूसरे श्लोक मे एक 'मम्ले' शब्द आया है, वह संस्कृत के व्याकरणानुसार 'मम्लौ' होना चाहिए।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकत
स्तथा न मम्ले× वनवास दुःखतः।

× स्व० बा० श्यामसुन्दर दास ने किसी प्रति में 'मम्ले' पाठ रखा है और किसी मे 'मम्लौ'—रा० द० भा०

इसी प्रकार उत्तर काण्ड के निम्नलिखित श्लोक में 'तोष्टये' शब्द आया है, जो संस्कृत व्याकरणानुसार 'तुष्टये' होना चाहिए।

अतः स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास को संस्कृत-व्याकरण का साधारण ज्ञान था और उन्होंने व्याकरण का विशेष अध्ययन न किया होगा।

सम्पूर्ण 'तुलसी चरित' जैसा कि अनेक विद्वानों ने लिखा है, जनता की दृष्टि से बचा हुआ है। यदि वह वास्तव में पूरा पूरा विद्यमान है, तो अच्छा ही है कि वह अभी तक गुन- निधि बना हुआ है, क्योंकि यदि वह पूरा प्रकाशित होता तो उसमें विद्वानों को कदाचित् और भी असंगत बातें मिल जातीं, किन्तु जैसा भी उपलब्ध है वह अपने वास्तविक रूप का द्योतक है। न तो उसकी भाषा परिमार्जित है और न उसकी बातें ही इतिहास के अनुकूल हैं। उसकी अप्रामाणिकता तो स्वयं-सिद्ध सी है।

[ग] 'घट रामायन' की अप्रामाणिकता—

'घट रामायन' नामक पुस्तक हाथरसवाले तुलसी साहब की कृति बताई जाती है। इसका सर्व-प्रथम प्रकाशन मुंशी देवीप्रसाद साहब, उर्फ देवी -साहब, तत्पश्चात् स्व० रायबहादुर बालेश्वर प्रसाद ने 'अधम' उपनाम से कतिपय प्रतियों के आधार पर उसे संशोधित कर बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, से १६११ ई० में प्रकाशित किया। तब से इसके तीन संस्करण और हो चुके हैं। मेरे सामने १६३२ का चौथा संस्करण है।

उक्त संस्करण में तुलसी साहब का जीवन-चरित भी सम्मिलित है। इससे पता चलता है इनके पिता ने इनका नाम श्यामराव रखा था, इनके छोटे भाई थे पेशवा बाजीराव द्वितीय और इनकी स्त्री का नाम था लक्ष्मी

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये।
येपठन्ति नरा भक्त्यास्तेषां शम्भुः प्रसीदति ॥
राम नरेश त्रिपाठी, (तुलसीदास और उनकी कविता, पृष्ठ ५३६)

गई। यद्यपि इनके पिता इन्हें ही गद्दी देना चाहते थे, तथापि स्वभावतः विरक्त होने के कारण गद्दी पर बैठने के एक दिन पहले ही वह घर छोड़कर भाग गए। इनकी बड़ी खोज हुई, "पर जब कहीं पता न लगा तो अति उदास व निराश होकर (पिता ने) राज्य को त्याग किया और अपने कुँवर बाजीराव को गद्दी पर बैठाया। तुलसी साहब कितने ही बरस तक जंगलों, पहाड़ों और दूर-दूर शहरों में घूमे और हज़ारों आदमियों को उपदेश देकर सत्य मार्ग में लगाया और कई बरस पीछे जिला अलीगढ़ के हाथरस सद्दर में आकर पक्के तौर पर ठहरे और वहाँ अपना सतसंग जारी किया। घर से निकलने के बयालीस बरस पीछे वह अपने छोटे भाई राजा बाजीराव से बिठूर (ज़िला कानपुर) में मिले थे जहाँ कि बाजीराव गद्दी से उतारे जाने पर सम्वत् १८७६ में भेज दिये गये थे ......तुलसी साहब के उत्पन्न होने का सम्वत् 'घुरत विलास' में नहीं दिया है, पर यह लिखा है कि उन्होंने अनुमान अस्सी बरस की अवस्था में जेठ सुदी २ बिक्रमी सम्वत् १८६६ या १६०० में चोला छोड़ा। इससे उनके देह धारन करने का समय सम्वत् १८२० के लगभग ठहरता है। हाथरस में उनकी समाध मौजूद है और बहुत से लोग वहाँ दर्शन को जाते हैं और साल में एक बार भारी मेला लगता है।"

डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं कि इनका जन्म सं० १८४५ में माना जाता है। अस्तु एक बात अधिक विचारणीय है। इतिहासकारों की कथा कुछ भिन्न है। विंसेंट स्मिथ ने सातों पेशवाओं की वंशावली में श्यामराव अथवा तुलसी साहब का उल्लेख नहीं किया है। इस वंशावली के अनुसार बाजीराव द्वितीय के बड़े भाई थे अमृतराव, किन्तु ये दत्तक भाई थे। पूना युद्ध (१८०२) के पश्चात् बाजीराव द्वितीय भाग गये थे और जब जसवन्तराव होल्कर ने गद्दी पर पुन. बैठने के लिए बुलाया और वह न आये तो दत्तक-५ अमृतराव, को ही गद्दी पर बैठा दिया; किन्तु आर्थर वेलेज़्ली

-ने होल्कर के आदमी अमृतराव को हटाकर बाजीराव द्वितीय को गद्दी पर बैठाया। अमृतराव को मुकाबला करने की इच्छा न हुई और उसे पेंशन लेकर बनारस रहना ही सन्तोषप्रद प्रतीत हुआ। इस वृत्तान्त से पता चलता है कि बाजीराव द्वितीय का श्यामराव अथवा तुलसी साहब नाम का कोई बड़ा भाई नहीं था और न वह स्वेच्छा से ही विरक्त हुआ। सम्भव है श्यामराव नामक कोई व्यक्ति बाजीराव द्वितीय का कोई रिश्तेदार हो। यदि ऐसी बात थी तो बाजीराव के पिता रघुनाथराव (राघोबा) को क्या आवश्यकता थी कि वह अपने दो औरस पुत्रों को छोड़ किसी कुटुम्बी या अन्य सम्बंधी को गद्दी पर बैठाते, और गद्दी पर बैठाने का उन्हें अधिकार ही क्या था, क्योंकि सालबाई की संधि (१७८५) के अनुसार उन्हें पेंशन लेनी पड़ी थी और बाजीराव को भी उन्होंने गद्दी पर नहीं बैठाया; अस्तु—

'घट रामायन' कब बनी? इसी पुस्तक में कई स्थलों पर आभ्यंतर साक्ष्य के अनुसार इसका प्रारम्भ भाद्रपद शुक्ला मंगल एकादशी सम्वत् १६१८ को हुआ। तुलसी साहब लिखते हैं—

> सम्मत सोला सै अठारा। घट रामायन लिखिसारा॥ पृ ४१२
> घट रामायन सार। सोलह सै अठरा कही॥ पृ०४१३
> सोलह सै अठरा के माहीं। घट रामायन कीन्ह बनाई॥ पृ० ४१३
> सम्मत सोलह सै अठारा। घट रामायन साज सँवारा॥ पृ०४१३
> सम्मत सोलह सै अठारा। उठी मौज ग्रंथ कियो सारा॥
> भादौं सुदी मंगल एकादसी। आरम्भ कियो प्रथममनमासा॥ पृ० ४१७

प्रश्न उठता है कि यदि यह पुस्तक तुलसी साहब ने गोस्वामी तुलसीदास के रूप में १६१८ सम्वत् में लिखी तो गोस्वामीजी की अन्य पुस्तकों की भाँति इसका पता लोगों को क्यों न था? इस शंका का समाधान भी स्वयं तुलसी साहब ने इसी ग्रंथ में करने का प्रयत्न किया है। आपका

-कथन है कि आपने घट रामायन १६१८ में तो बनाली थी, किंतु काशी में लोगों ने इसका बड़ा विरोध किया। जब इसका बड़ा शोर मचा तो स्वयं गोस्वामीजी ने इसको गुप्त कर दिया और तुलसी साहब का जन्म धारण-कर पुनः प्रकट कर दिया।

जग अबूझ कारन हम गाई। जो करै इष्ट राम से भाई॥
जो हम न्यारा भेद सुनावैं। तो जग माहिं रहन नहिं पावैं॥
तासे न्यारा भेद न माखा। संत भेद हम गुप्तै राखा॥
भेद ग्रंथ में गुप्त लखावा। पुनि काहू की दृष्टि न आवा॥ पृ.२५३
काशी में भया सोर, तेरह को लिया चोर।
तुलसी अस ज्ञान जोर, घोर नगर माँही।
तलसी साध रहत तेरह कीना अचेत।
वासे कोऊ करो न हेत, देत जादू गाई। पृ० ३२४
घट रामायन सुनि भौ सोरा। काशी नगर भया घन घोरा॥
पंथ भेष जग लहन खसारा। घट रामायन परी पुकारा॥
अस सुन सोर सयो जग मांही। सहर मुलक गँवई गाँई॥
भेष पंथ में अचरज भइया। दरसन भेष लखन को अइया॥ पृ.३८६
कासी में चौल उड़ाई। तब हमने गुप्त छिपाई॥ पृ० ४१२
पंडित हिरदे से मयी भगरा। और भेष जग कासी सगरा॥
तब तुलसी मन कियो विचारा। घट रामायन गुप्तकरि डारा॥ पृ.४१३
सुनि काशी में अचरज कीन्हा। सोर नगर में भयो अलीना॥
पंडित जग्त जैन और तुरका। भयौ भगरा आइ काशी पुरका॥
पंडित भेष जग्त मिलि सारा। घट रामायन परी पुकारा॥
जो कुछ भगरा रीति जस भांती। जस जस भया दिवस अरु राती॥
तासे ग्रंथ गुप्त हम कीन्हा। घटरामायन चलन न दीन्हा॥

उक्त उधारणों से स्पष्ट है कि घटरामायन ने बड़ी खलबली मचा दी और दिन रात का झगड़ा होने की आशंका रहती थी। अतएव गोस्वामीजी ने उसे गुप्त कर दिया। किन्तु यह बात विचारणीय है कि घटरामायन का नाम क्या शहर, क्या गया बीता गाम, सभी जगह फैल गया था और लोग गोस्वामीजी के दर्शन के लिए आते थे, जैसा कि पृष्ठ ३८६ के उदारण स्पष्ट है। प्रसिद्धि तो अच्छी बात थी, पुस्तक तो विचार-प्रसार की दृष्टि से ही लिखी जाती है। यदि घटरामायन के कारण गोस्वामीजी के पास लोग दूर दूर से दर्शन करने वास्तव में आते थे तो वे काशी छोड़ कर अन्यत्र जा सकते थे। साधु के लिए क्या काशी, क्या मथुरा, क्या प्रयाग, क्या मगहर, सभी बराबर हैं। गोस्वामी जी काशी के शोर से इतने डर गये कि उन्हें 'घटरामायन' गुप्त कर देनी पड़ी। कबीर का भी बड़ा विरोध हो चुका था, किन्तु वह महा पुरुष तो अड़ा ही रहा। गोस्वामी जी इतने भीरु निकले कि भक्तों के दर्शनार्थ आने पर भी काशी वालों के डर से घटरामायन उन्हें गुप्त करनी पड़ी। बात यहीं समाप्त नहीं होती है। यहाँ तक भी गनीमत थी। उन्होंने एक जघन्य काम और किया—उन्होंने घटरामायन के पश्चात् १६३१ में ऐसा रामचरित्र बनाया जिससे सारा संसार भ्रम में पड़ जाय। वाहरे संत, क्या तू संसार को ज्ञान-ज्योति देने आता है, अथवा उसे भ्रमांधकार में धक्का देने ! ठीक है, गोस्वामी जी ने झगड़ालू काशी-वालों से खूब बदला लिया। किन्तु बाहर वाले भक्तों ने क्या बिगाड़ा था कि उन्हें रामचरित मानस रचकर भ्रम में डाल दिया। तुलसी साहिब के वचन हैं—

तासे गुप्त हम कीन्हा। घटरामायन चलन न दीन्हा ॥
या से संत मते की रीती। जक्त अजान न जानै रीति ॥
संवत् सोलासै इकतीसा। रामचरित्र कीन्ह पद ईसा ॥

ईस कर्म औतारी भाषा । कर्म भाव सब जगहि सुनावा ॥
जग में भगरा जाना भाई । रावन राम चरित बनाई ॥
पंडित भेष जगत सब भारी । रामायन सुनि भये सुखारी ॥
अधा अंधे विधि समझावा । पृ० ४१७-४१८
रावन राम कीन्ह संवादा । तब काशी मे चली अगाधा ॥
तुलसीमता कोई नहि चीन्हा । गुप्त भेद सब जग से कीन्हा ॥
ये भौसागर जगत असारा । तुलसी मता मते कीलारा ॥
जग में वस्तु कोई नहिं चीन्हा । जा से ग्रंथ गुप्त कर दीन्हा ॥
रामचरित्र बनाय जगत भूल भ्रम ताहि में । पृ० ४१४

गोस्वामी तुलसीदास ने तो और भी अनेक ग्रन्थ लिखे हैं जिन सब में उनका दार्शनिक सिद्धांत प्रायः एकसा ही है और राम में उनकी अटल भक्ति उनके सभी ग्रंथों में लक्षित होती है।

यदि वास्तव में गोस्वामी जी ने घटरामायन नाम की कोई पुस्तक लिखी भी तो क्या वह यही घटरामायन है ? इस प्रश्न का कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिलता। पुस्तक में भी कहीं-कहीं तो वर्तमान काल की क्रियाओं का प्रयोग हुआ है और कहीं-कहीं भूतकाल की । भूतकाल की क्रियाओं को देख कर यह संदेह हो सकता है कि गोस्वामी जी ने घटरामायन लिखी और तुलसी साहिब ने कुछ उनका और कुछ अपना मिला दिया हो। कम से कम भाषा का ही परिवर्तन हो गया हो। वर्तमान काल की क्रियाओं के कुछ उदाहरण ये हैं—

जो अपनी गति कहहुँ विचारी । पृ० ११
अब पानी का भाखों लेखा । पृ० १३
ताकी बिधि बिधि कहीं विचारा । पृ० १३
जोइ जोइ नीर नाम बतलाऊँ । नीर छतीसों बरनि सुनाऊँ ॥ पृ० १३
बिधि बिधि नाम नीर समझाऊँ । नाम नीर भिन भिन दरसाऊँ ॥ पृ० १३

छत्तिस नीर कहीं मैं काला। पृ० १३

आगे कहीं पचासी पवना। पृ० १४

भिनि नाम विधी बतलाऊँ। पवन पिचासी बरनि सुनाऊँ॥ पृ० १४

सो निज माखों भेद खुलाशा। पृ० १४

भिन्न भिन्न सोला विधि भाखौं। गगन नाम निज एक न राखौं॥ पृ० १

बिधि बिधि नाम कहीं समझाई। चित दे सुनो गगन कर नाई॥ पृ० १

आगे भेद जो कहीं अनूपा। पृ० १७

भँवर गुफा छै भाखि सुनाऊँ। जाको भिन भिन भेद बताऊँ॥ पृ० १

भूतकाल की क्रियाओं के उदाहरण ये हैं—

निरखा आदि अंत मधि माहीं। सोइ सोइ तुलसी भाखि सुनाई॥ पृ० १०

पिंड ब्रह्मंड अगम लख पाया। तुलसी निरखि अगाध सुनाया॥ पृ० ११

पिंड माहिं ब्रह्मड दिखाना। ताकी तुलसी करी बखाना॥ पृ० ११

तुलसी ताल तरास तत बिबेक अन्दर कही। पृ० ११

मन की गति पाई सुरति छुड़ाई। रामायन घट माहिं कही॥ पृ० ३

कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसी साहब गोस्वामी जी की घटरामायन नहीं कह रहे हैं किन्तु उसका सार मात्र कह रहे हैं।

काल करै जिव हानि, तुलसीदास तत सम रहो।

घट रामायन सार, मथि काया बिच घट कह्यो॥ पृ० २१

घट रामायन सार, यह घट माहिं घटाइया।

घट का मथन विचार, भिन्न करि डारिया॥ पृ० २६

रामायन घट सार, सुरति शब्द से लखि परै।

गगन कंज कर वास, ऊपर चढ़ि जिन देखिया। पृ० ४६

घट रामायन सार, ये अगार गति यों कही।

बूझै बूझनहार बिन सतगुर पावै नहीं॥ पृ० ७६

सम्मंत सोलासै अठारा। घट रामायन लिखि सारा॥ पृ० ४१२
घट रामायन सार, सोलहसैं अठरा कही।
सही भई नहिं सार, लार निकट काशी बसै। पृ० ४१३

यदि यह पुस्तक वास्तव में गोस्वामी जी की घटरामायन नामक किसी कृति का सार है तो इसका नाम 'घटरामायन सार' होना चाहिए था। "घटरामायन' नाम से तो भ्रम फैलता है, क्योंकि जो कृति वास्तव में गोस्वामी जी की नहीं है वह उनकी बताई जाती है। यह गोस्वामी जी के विचारों का सार भी है या नहीं, यह तो पाठक सम्पूर्ण लेख को पढ़कर अनुमान और गोस्वामी जी के ग्रन्थों का मनन और मंथन कर ही निश्चय कर सकते हैं।

'घट रामायन' का विषय क्या है? इस पुस्तक में भेद पिंड और ब्रह्मांड, नीर भेद, गगन भेद, सूक्ष्म त्रिकुटी भेद, नाल भेद, सुन्नि भेद, जोगभेद, सिद्धों के नाम, प्रकृति भेद आदि कई प्रकरण हैं। इसमें कुछ विरोधी पुरुषों के शुभनाम और विवाद-संवाद भी सम्मिलित हैं जिन्होंने सतमत स्वीकार कर लिया था, यथा—तकी मियाँ, मानगिरि सन्यासी, फूलदास कबीरपंथी, गुसाईं प्रियेलाल, पलकराम नानक पंथी आदि। साम्प्रदायिक संकीर्णता और अंधविश्वास का उल्लेख कर मैं पाठकों का समय नहीं लेना चाहता। अनेक विचित्र बातें पुस्तक में अनेक स्थलों पर भरी हैं, किन्तु पृष्ठ ४४ से ५६ तक उनकी विशेष चर्चा की गई है। डा० रामकुमार वर्मा ने तुलसी साहिब को आवापथ का प्रचारक बताया है। तुलसी साहिबने 'साध' शब्द का अनेक बार प्रयोग किया है और एक स्थल पर गोस्वामी तुलसीदास के लिए काशी के पंडितों से कहलाया है 'तुम्हरा साधमता हम जानी, पृष्ठ १२७। इनके दार्शनिक विचार का सार उस संवाद से अच्छा विदित होता है जो मानगिरी संन्यासी के साथ हुआ था। उसका एक अंश इस प्रकार है—

"स्वामी जी तीन लोक बैराट नाश होकर कहाँ समाते हैं!

ब्रह्म निराकार जोति तीन लोक बैराट नाश होकर सुन्न में समाता है। सुन्न नाश होकर महासुन्न मे समाता है। महासुन्न के परे सत्त लोक है जहाँ सत्त साहिब रहता है, यहां प्रलय और महाप्रलय की गम नहीं।

सत्त साहिब की लहर से महासुन्न होता है, महासुन्न से सुन्न, सुन्न से शब्द, शब्द से ब्रह्म, ब्रह्म से जोति निराकार, निराकार जोति से मन, मन से जत्त, ब्रह्मा, विष्नु शिव बेद सब उत्पन्न होते है।" पृष्ठ १७६

अगले पृष्ठ पर इसी विषय को स्पष्ट करते हुए तुलसी साहिब कहते है—

"ब्रह्मा विस्नु और महादेवा। नास भये जन मत के भेवा ॥
मन को नास सुनो पुनि भाई। मन नसि काया निरंजन माई ॥
नास निरंजन ब्रह्म समाना। ब्रह्म जो नसा सब्द मे जाना ॥
सब्द नास जो सुन्न समाना। सुन्न नास महासुन्न मे जाना ॥
यहँ से उतपति परलय होई। आगे भेद न जाने कोई ॥
वहँ से आवै यहँ लै जावै। आगे भेद न कोई पावै ॥
सत्त लोक महा सुन्न कहाई। तीन लोक सब सुन में जाई ॥
तीनि लोक करता नहिं जावै। या पद को कोई संत समावै ॥

पहले कहा था कि "महा सुन्न के परे सत्त लोक है" और सत्त साहिब की लहर से महासुन्न होता है" पीछे कहा है—

सत्त लोक महासुन्न कहाई।"

इनमें से कौन सी बात ठीक है यह तो तुलसी साहिब ही जानें। हाँ महाशून्य के परे सत्त की कल्पना की तुलना किसी सीमा तक शंकर की परमार्थ सत्ता अथवा कांराट के न्यूमिनन से हो सकती है। फिर भी शंकर की सी विशद व्याख्या और तर्क का नितान्त अभाव है।

तुलसी साहब को कदाचित् वेद, शास्त्र, पुराण, अवतार एवं राम-कृष्ण के नाम से चिढ़ थी जैसा कि आगे निर्देश किया जायगा। वे मूर्ति-पूजा के भी विरोध में थे और उन्होंने जैनियों पर इस विषय में इस प्रकार आक्षेप किया है—

जैनी जो जैन नैन सूझै नाईं। आतम को छाँड़ि पुजे पाहन जाईं॥ पृ० ६६

हाँ आप ने एक बड़ी गहरी बात बतलाई है। गुरु गरिमा तो सब ने गाई है किन्तु शिष्य-गरिमा-गान का सौभाग्य आप जैसे विरलों को ही प्राप्त है। आप लिखते हैं—

> तुलसी तू मैं जो तजै, भजै दीन गति जोइ।
> गुरू नवै जो शिष्य को, साधु कहावै सोइ॥ पृ० ३४६

ठीक भी है पारमार्थिक दृष्टि से यह बात सोलह आने संगत है क्योंकि परमार्थ में तो सभी असंगत बातें भी संगत हैं। 'निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिःको निषेधः।' हाँ व्यवहार में गुरु का आसन सदा से ऊँचा रहा है और सदैव ऊँचा रहेगा।

पुस्तक की भाषा प्रधानतः खड़ी बोली और ब्रजभाषा है किन्तु पंजाबी और फारसी शब्दों का भी मिश्रण है। मैं भाषा पर गम्भीर विचार नहीं करना चाहता अतः पाठकों को निम्न लिखित कतिपय उदाहरण देकर ही सन्तुष्ट हूँ—जिवरा उद्द (उदर) जत्त (जगत) तुपम्म, पलक, अलग्ग, विलग्ग, प्रमातम (परमात्मा), खल्क, पिछाना (पहिचाना) अरजुन्न, जतन्न (यत्न) तप्प, गत्ति (गति), करना वरन्न जबाव (जवाब), स्वाल (सवाल), कघी (कमी) तत्त (तत्व) परियम्म (प्रथम) खुद्द (खुद) रब्ब (रब) अवकल,

कीदा (किया) दूरबीन, तलन, इन्क, तरक, गह्यो, कह्यो, खायो हतो घसेरो, चेरो, बचायो, सुनायो, रह्यो, दिया, किया, हुआ, रहा, आया ।

तुलसी साहिब की भाषा बड़ी लचर है, कभी-कभी भाव भी अस्पष्ट हो जाता है। आश्चर्य है कि यद्यपि गोस्वामीजी राजापुर में जन्मे और काशी रहे, जैसा कि इस पुस्तक घटरामायन के अन्त में लिखा है, तथापि इस कृति में अवधी का अभाव रहने दिया ! शब्दों की तोड़ मरोड़ का तो कुछ कहना नहीं। कदाचित् आप को संस्कृत का ज्ञान न था अथवा था तो कम क्योंकि आप ने पुस्तक भर में केवल तीन पुराने श्लोक उद्धृत किये हैं और उनमें से दो को पुनः उद्धृत किया है, वे भी अशुद्ध—

मूकं करोति <u>बालालं</u> पंगुं लंघयते गिरिम्।
· वाचाल
यत् कृपाल मह् बंदे परमानन्द माधवः ॥ पृष्ठ १५५ और २६६
द्वै द्वै लोचन सर्वानां विद्या त्रय लोचनं।
एत लोचन ज्ञानीनां भगवान् अनंत लोचनं ॥ पृ. १५५ और २६६
कामार्त्तस्य कुतो लज्जा, निर्द्धनस्य कुतः क्रिया।
सुरापस्य कुतः शौचं, मांसाहारे कुतो दया ॥ पृष्ठ १६४

हो सकता है कि ये अशुद्धियाँ कम्पोजीटर प्रूफरीडर अथवा एडीटर की हों किन्तु प्रयाग का वेलवेडियर प्रेस बुरा नहीं है। अस्तु, हमें तुलसी साहिब के संस्कृत-ज्ञान पर विशेष आग्रह भी नहीं है। यों-उन्हें संस्कृत से चिढ़ तो थी जैसा कि आगे विदित होगा। हाँ आपमें भाषा-विज्ञान की लटक थी। देखिये नीचे के उद्धरणों में वृन्दावन और दशरथ, लक्ष्मण, कौशल्या, कैकेयी, मंथरा, मन्दोदरी, भरत, शत्रुघ्न आदि रामचरित मानस के पात्रों की कैसी-कैसी अश्रुत-पूर्व व्युत्पत्तियाँ की है—

भिन्द से रमा विंद्रावन होई। जग के माहीं रहा समोई॥ पृ०२८४
विंद्रावन विंद कीन्ह सोई साँचा। गुसाँई गोपी के साथ बन २ नाचा॥
पृ० २८६

इंद्रजीत जीते मन ही को। सो इन्द्र जीत कहाई॥
रावन ब्रह्म बसै मन दोरी। ताको मन्दोदरी बनाई॥
मन की दोर को दूर बहावे। त्रिकुटी ब्रह्म कहाई॥

दस इन्द्री रत दसरत कहिये, राम रमा मन जाई।
सत की सीता अरुन सिया को, कुमति कौशल्या बताई।
मन थिर सुरति करै थिर कोई, सो मन मथुरा कहाई।
वहाँ की बात कही कौन सुनाई, कर्म न थिर केकाई।
ले छै रस मन ही को भाई, लछमन बीर बड़ाई।
गो में रूढ़ गरुड़ गिनाई, भय ले भसुड सुलाई।
भय रत भरत भरत है सोई, चाह चाह त्रिगुन गिनाई।
तो को नाम चतुर गुन कहिये, ये सब भेद बताई।

पृष्ठ २१५

इन पद कुछ नीचे लिखे उद्धरणों से स्पष्ट है कि रामचरित-मानस के पात्र और स्थानों को घट के भीतर भरने का प्रयत्न किया गया है—

हरि सम्रइ दसवीं दरसाई, लछमन राम बसै जेहि माईं।
बाइस नाल सत अंकित होई, बन असोक सीता जहँ होई।

पृष्ठ २२

सताइस नाल त्रिकुट पर लंका, वहँ रावन बसै ब्रह्म निसंका।

पृष्ठ २२

काग भसुंड काया के माहीं, राम रमा मुख पैठा जाई।

पृष्ठ ४२

भरत चत्रगुन लछिमन भाई। यह घट माहिं कहेउ समझाई॥
सुमितरा केकइ कौसिल्या। ये तन भीतर घट मे मिलिया॥
सीता दसरथ राम कहाये। ये सब घट भीतर दरसाये॥
सरजू सुरति अवध दस द्वारा। ये घट भीतर देखि निहारा॥
रावन कुंभ लंकपति राई। त्रिकुटी महल बसे तेहि माही॥
रावन ब्रह्म कहा हम जोई। त्रिकुटी लंक ब्रह्म है सोई॥
मंदोदरी भभीषन भाई। इन्द्रजीत सुत त्रिकुटी माहीं॥
ये सवाद कहा घट माहीं। रामायन घट माहिं बनाई॥

पृ० ४२

घट में राजा है बलि रावन। घट में सीता रघुपति रावन॥

पृ० ४७

इस घट के भीतर रामायण के पात्र और स्थान ही नहीं किन्तु धरमदास और कबीर को भी भर दिया है।

धरमदास मन ही को जानो। काया वीर कबीर बखानौ॥

जिन व्यक्तियों से गोस्वामी तुलसीदास का-नहीं नहीं तुलसी साहिब का सवाद हुआ वे भी सब घट के भीतर ही समा गए हैं—

कासी काया भाखि बखानी। बिधि निधि दरसाइ कै॥
हिरदे अहीर बखाना। हिरदे में हेर समाना॥
गुनवाँ मन गुन सग खेला। ताको कही गाइ कै॥
नैनू पडित नैन कहाये। तामें स्यामा स्याम कहाये॥
जहँ माना मन लै बैठा। पडित पिंड आई कै॥

कर्मा करि करि कर्म कहाये। धर्मा सर धर्म चलाये ॥
करिया पुतरी लै जाना। भाखू समझाइ कै ॥
तकी तकि तकि नैन निहारा। सैन् सैने सुरति सँवारा ॥
रहे मन इत रेवतीदासा। या की कही गाई कै ॥
फूलदास फूल गयो कँवला। जहँ सुर दल पर सम्हला ॥
प्रिय प्रीत सुरति चढ़ि आई। ये ही प्रिये लाल कै ॥

पृष्ठ ४१२

पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि घट में जिन-जिन व्यक्तियों और स्थानों को भर दिया है वे किसी क्रम से भरे गये हैं अथवा यों ही। तुलसी साहिब ने कुछ विचित्र बातों का भी उल्लेख किया है वेदों की संख्या दस तक पहुँच गई है।

वेद चारि ब्रह्म निज कीन्हा। पंचम सुरम वेद को चीन्हा ॥
छठवाँ प्रसंगी वेद रहाई। बाकी किधी सुनो हो भाई ॥
चारि वेद जो गुन रहाई। ता में कागद लगै न स्याही ॥
ताको भेद वेद नहिं जानै। ताके परे कहे को मानै ॥
वेद दसौ विधि गाइ। काकी पूछौ आदि तुम ॥

सो मैं देऊँ बताइ। नैन् स्यामा भाखिये। पृ० १२८

वेदों की संख्या-क्रम इस प्रकार है—

चारि वेद की आदि बताई। जो ब्रह्म से उपजे भाई ॥
वाकर नाम सती गुन गाऊँ। पिरथम साम वेद दिन्हिनाऊँ ॥
दूजा जजुर को भाखि सुनाऊँ। चौथा अर्थ अथरवन गाऊँ ॥

तुलसी साहिब ने शुकदेव, व्यास, जनक, नारद, वेद इ

ब्रह्म, विष्णु महेश, ज्ञानी, व्रत, तीर्थ, अवतार और संस्कृत में आस्था न थी।

काया खोज किया नहिं भाई। सुकदेव रहे भूल के माई॥
ब्यास जनक नारद नहिं पाई। कथि पुरान आतम गति भाई॥

ज्ञानी भूले भैर्म में, परम हंस ब्रह्म चार।
सस्तर सब विचारिया, बहे कर्म की धार॥ पृ० २३

तिनमें रहे त्रिभवनी पाटा। ब्रह्मा विस्नु न पा... ...गाया॥
संकर जोगी सिद्ध अनूपा। उनहूँ न पायो ... ॥

ब्रह्मा वेद नसाय विस्नु सिव ना बचै। बचै नहीं

पानी नहि पवना अगिन न भवना, वेद
ब्रह्म नहिं विस्ना राम न किस्ना, सिव
ब्रह्म विस्नु भये महादेवा। इनकी
सास्तर वेद संस्कृत बानी। ये सब
दस औतार जगत जग माया। यह
ऋषी मुनी जोगी सुर ज्ञानी। मन ५५
तीरथ बरत वेद ब्योहारा। जग

ठीक भी है—गीता कहती है
गोस्वामी तुलसीदास ने भी वहा
हरे"। किन्तु यह ध्यान रखना
शब्द कितना प्यारा था। उनको

और तुलसी साहिब का राम कृष्ण के प्रति क्या भाव था—

जिनकी रज पावन राम और रावन, नि.अच्छर सार सही।

पृष्ठ १२

नहिं राम अरु रावन यह गति पावन,अगुन सगुन गुन नाहिं वही

पृष्ठ २६

जासे नाम भेद नहिं जानै, मनहिं राम को नाम बखानै।

नाम गती है अगम अपारा। ब्रह्म राम दोउ पावैं न पारा॥

ष्ठ ३६

रावन राम सकल परिवारा। ये घट भीतर चुनि चुनि मारा॥

पृष्ठ ४३

राम राम जो जपै अघाई। जाको जनम अकारथ जाई॥

पष्ठ १५१

राम करम बस मो के माहीं। सत अगम घर नित प्रति जाई॥

राम काँच सम की मत जाना। सत गती हीरा परमाना॥

वो पैसे में जग ले आवै। राम काँच मन जग को भावै॥

संत अगम हीरा गति न्यारी। केहि विधि पावै जगत भिखारी॥

पृ० २४३

राम आप कर्मन बस परिया। कहो तासे जग कसकस तरिया॥

पृ० २४४

बोल राम रित चेला थापा। बुद्धि गई ठु दूहे आपा॥

पृ० २४५

राम कृष्न दोऊ बटमारा। सिर बधा मिलि फाँसी डारा॥

पृ० २६७

त्रेता रामचन्द्र भये राजा। भूले वोह देह सुख काजा॥
तिरया काज कीन्ह संग्रामा। वनवन फिरे लछमन अरु रामा॥
कुल आतम रावन को मारा। आतम हति लीन्हा सिर भारा॥
आतम पाप अनीती कीन्ही। वालिहिं मारि काल गति लीन्हीं॥
ये अधर्म कीन्हा अन्याई। आतम मारि दया नहिं आई॥

पृ० ३३०

करता राम भया मति हीना। कपट मिरग उनहूँ नहि चीन्हा॥
तिरिया काज कीन्ह सब कामा। लीन्हा मोग कीन्ह सोई रामा॥

पृ० ३३०

राम कृष्ण जग हाथी जाना। सोउ बहे कर्म लपटाना॥

पृ० ३३१

गोस्वामी तुलसी दास क्या राम को 'बटमारा' 'मतिहीना' बताकर मार सकते थे अथवा उन्हें काच समझ कर उनकी अवहेलना कर सकते थे? क्या वह रावण को राम से कहीं अधिक अथवा बराबर मान सकते थे? तुलसी साहिब की तो रावण पर राम से कहीं अधिक आस्था है। उनकी 'घटरामायन' में रावन ब्रह्म है और त्रिकुटी लंका है। वे लिखते हैं—

रावन ब्रह्म कहा जोई। त्रिकुटी लंक ब्रह्म है सोई।

घ० ४२

रावन ब्रह्म बसे त्रिकुटी मे। लंक त्रिकूट बनाई॥

घ० २१५

रावण के परिवार तक की सुन्दर व्याख्या है। रावण की पत्नी मंदोदरी तो 'मन की दौर को दूर' बहाने वाली किन्तु रामपत्नी सिया

'असत' राम माता कौशल्या 'कुमति' और राम-पिता विष है—

रावन नहा वसे मन दौरी । ताको मँदोदरी बनाई ।
मन की दौर को दूर बहावै, त्रिकुटी ब्रह्म कहाई ।
दस इन्द्री रत दसरत कहिये, राम रमा मन जाई ।
सत की सीता असत सिया को, कुमति कौशिल्या बसाई । पृ० २१२

यह सब तुलसी साहिब की विपरीत रुचि का उदाहरण है। गोस्वामी तुलसीदास को अवश्य इस कुरुचि से असतोष होगा। किन्तु तुलसी साहब ने ठीक ही किया, नीति है :—

घट छिन्द्यात् घट भिन्द्यात् येनकेनोपायेन प्रसिद्धः पुरुषो भवेत् ।

कदाचित् प्रसिद्धि की प्रबल भावना ने तुलसी साहिब को निम्नांकित पंक्तियों के लिए बाध्य किया।

फूलदास कहे स्वामी सूझा । है कबीर तुलसी नहिं दूजा ।
जो कबीर सो तुम हो स्वामी । दया करहु मोहिं अंतरजामी । पृ० १६७

कदाचित् फूलदास का तात्पर्य यह हो कि गोस्वामी तुलसीदास (और रूपान्तर से तुलसीसाहिब) पूर्व जन्म में कबीर ही थे। तुलसीसाहब को पूर्व जन्म में यह गौरव भी प्राप्त था कि स्वयं गुरु नानक ने उनसे वार्तालाप किया'।

साहिब नानक सत निदाना । जो कछु कहनि वही परमाना ।
खुद साहिब नानक मुख बानी । कही अगम कोई बिरला जानी । पृ० ३४६

तुलसी साहिब अपना मत प्रतिपादन करने में तर्क से काम न लेते किन्तु अन्य मतों के खण्डन में तर्क का प्रदर्शन खूब करते थे। यह बात दूसरी है कि उनका वह तर्क भी सोना न होकर पीतल सिद्ध हो। उनकी तर्कशैली के कुछ उदाहरण विनोद-पूर्ण प्रतीत होते हैं। वह रामनाम के विरोध में युक्ति देते हैं—

राम लिखे पत्थर के माई, पानी डारि देखि लो भाई।
जो पत्थर पानी नाहिं बूड़ा। तो तुम जानो राम अगूढ़ा।
पत्थर डूबे राम लिखे से। तो तुम बुड़िहौ राम कहे से।

ध्रुव की मुक्ति का प्रतिवाद इस प्रकार होता है—

और तारे की मुक्ति बतावा। सो तै गगन दृष्टि में आवा।
ध्रू तारे की मुक्ति बतावौं। सब तारे की विधि समभावौं।
तारा गगन मुक्ति जो होती। तारा टूट गिरे भुँइ जोती।
जो तुम ध्रू को अटल बताया। गगन फूटि ध्रू कहाँ समाया।

पृ० २५७

कदाचित् तुलसी साहिब को भूगोल और नक्षत्र-मण्डल का ज्ञान कम था। क्या यह आवश्यक है कि यदि ध्रुव टूटे तो इस जमीन पर ही गिरे? पृथ्वी और ध्रुव का अनुपात क्या? अस्तु।

और लीजिए। यदि कृष्ण जी भगवान् थे तो पाण्डवों और उद्धव को मोक्ष मिल जानी चाहिए थी, फिर उद्धव को तप क्यों करना पड़ा और पाण्डवों को गलने के लिए हिमालय क्यों जाना पड़ा?

कृष्ण समीपी पण्डवा, गरे हिवारे जाइ।
लोहे को पारस मिलै, तो काहे काई खाइ॥
जो कृष्ण पारस हुते, लोहा पडोमान।

तर्क तो अकाट्य सा प्रतीत होता है। पर तुलसी साहिब से पूछा जा सकता है कि पूर्व जन्म में उनका जिन तेरह व्यक्तियों से सवाद हुआ उन्हें तो परम पद मिला, पर स्वय उपदेष्टा तुलसी साहिब को वह पद क्यों नहीं मिला ? उन्हें क्यों जन्म धारण करना पड़ा ?

तेरह बोल अपार, लखा सार सतगुरु मिले।
तुलसी कहै निहार, उतरि पार पदको मिले। पृ० ३२२
तेरह भये पारा अगम निहारा, सब मत सारा लार लये।
पहुँचे वोहि धामा अगम अनामा, पार सार रस जाइ पिये॥

पृ० ३२३

मैं अब अपनी आदि बताओं.................
भया जनम सोई कहीं बुझाई। बाल बुद्धि सुधि बुधि दरसाई।

पृ० ४१५

तुलसी साहब अर्वाचीन अनुसधाताओं (रिसर्च स्कालरों) की भाँति सम्वतों के द्वारा ऐतिहासिक आधार पर तथा तथ्य का विवेचन इस प्रकार करते हुए मिलते हैं—

अब सोलह सैं सोलह जाना। बावे बिधी कहूँ परमाना॥
जेते दिन बावे को बीता। सो बिधि बरनि कहूँ सत रीता॥
पन्द्रह सै असी के माहीं। अरु सोलह सै सोलह माईं॥
छत्तिस बरस बावे विधि जाना। पन्द्रह सै पाँच गोरख परमाना॥
पन्द्रह सै बरस गोरख भये आगे। बावे बिधी सुधि नहिं लागे॥
छत्तिस बरस बावे विधि साँचा। गोरख भये पद्रह सै पाँचा॥
ये तो बिधी मिली नहीं स्वामी। अन्य माहिं कस सुधि बखानी॥

गोरख पद्रह सै भये आगे। छत्तिस बरस बावे को लागे॥
इनकी गुष्टि कौन विधि भइया। तुलसी के मन ससय रहिया॥
पृष्ठ ३४८

विपद का खण्डन बड़ा अच्छा हुआ, किन्तु जब आप ने अपने बारे में मम्वतों का उल्लेख किया तो स्वय धोका खा गये। डा० माताप्रसाद गुप्त लिखते हैं कि तुलसी साहब ने सात मितियों का उल्लेख किया है जिनमें से केवल तीन में वार दिया हुआ है, अत अन्य वार के तथ्यातथ्य के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। जिन मितियों के तथ्यातथ्य का विवेचन हो सकता है वे हैं—जन्मतिथि, काशी में आगमन की तिथि और घट रामायन निर्माण की। किन्तु खेद है कि जन्म-तिथि को छोड़ कर और कोई भी ज्योतिषगणनानुसार ठीक नहीं उतरती। पाठक समझ सकते हैं कि तुलसी साहिब के तर्क का क्या मूल्य है।

श्री लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु' एक असगत बात की ओर इगित करते हैं जो इस प्रकार है। "जो राग गोस्वामी तुलसीदास जी ने घट रामायन में अलापा है, उसी का स्वय ही अच्छी तरह रामचरित मानस में विरोध किया है। ऐसी दशा में एक मनुष्य का दो परस्पर विरुद्धात्मक मतों का समर्थक होना इस ईश्वरीय सृष्टि में सचमुच अनोखी बात है। एक स्थान पर घट रामायण में लिखा है—

'तुलसी नाम एक साध गुसाईं। ग्रन्थ कीन एक भाव बनाई।
तामें वेद कितेब न राखा। दश अवतार कछु नहिं भाषा॥
तीरथ वरत एक नहिं मानैं। वो कछु और और विधि ठानैं॥
पडित हिरदै से भयो भगरा। और भेष जग काशी सगरा॥

। यह अवतरण भेद राम रामायण प्रकरण का है। इस प्रकरण में घट रामायण और राम-रामायण का पारस्परिक भेद वर्णन किया गया है।

आश्चर्य है घट-रामायण के रचना-काल में उनके कथनानुसार राम-रामायण का पता भी नहीं था, फिर तुलसीदासजी ने घट-रामायण में ही राम-रामायण का भेद कैसे लिख डाला।"

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे अनैतिहासिक व्यतिक्रम हैं जिनसे घट-रामायण का महत्व एकदम कम हो जाता है। पहला व्यतिक्रम यह है कि पलकराम नानक-पंथी से संवाद करते हुये *घट रामायण-कार* उस रिवाज की ओर इशारा करते हैं जो पंजाब में आमतौर पर और खासकर जाटों में (जिस कौम के लोग सिक्खों में बहुत से हैं) बड़ी कसरत से था। विंसेंट स्मिथ* लिखते हैं कि लार्ड हार्डिंग के समय में दुख्तरकुशी पंजाब, राजपूताना, मालवा, कच्छ, काठियावाड़ तथा अन्यत्र भी रही प्रचलित थी और उक्त गवर्नर जनरल ने इसे रोकने का उद्योग किया।

पलकराम यें कैसी रीती। साहिब जादे करें अनीती॥
लड़की मारि करें अजगूता। यह हत्या आतम होइ भूता॥
पृ० ३७१

सुनि साहिब जादों की रीती। लड़की मारि जो करें अनीती॥
कन्या पाप करम की जुगती। सो साधू नहिं पावे मुक्ती॥
पृ० ३७७

घट-रामायन कर्त्ता ने एक स्थान पर यह भी लिखा है—

आज गृहस्थ लड़की जो मारे। ताको जगत अधम करि डारे॥ पृ० ३७२

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि 'आज' से क्या तात्पर्य है। इससे तो

---

* (Lord Hordinge) .. took measures for suppressing Suttee and infanticide in the Native States. (Page 689)

Infanticide was practised extensively in the Panjab, Rajputana Malwa, Cutch, Kathiawar and elsewhere (Page 690)—The Oxford History of India by Vincent A. Smith.

यही ध्वनि निकलती है कि तुलसी साहिब अपने उस जमाने की ओर इशारा कर रहे हैं, जब कि अंग्रेज लोग दुस्तर कुशी को रोकने का उपाय कर रहे थे। 'आज' शब्द से प्रतीत होता है कि यह रचना गोस्वामी तुलसीदास की नहीं है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि मुशी देवीप्रसाद ने घट-रामायन का जो संस्करण निकाला था उसम 'लड़की' के बदले हर जगह 'बकरा' शब्द रख दिया है।

दूसरा व्यतिक्रम यह है कि घट रामायन कार ने कम से कम नौ स्थलों पर दरिया साहिब के नाम अथवा शब्द का उल्लेख किया है।

वा घर का कोई मरम न जाने। नानक दास कबीर बखाने ॥
दादू दरिया रैदासा। नाभा मीरा अगम विलासा ॥ पृ० ६४
दादू मीरा नाभा भाई। नानक दरिया सूर सुनाई ॥ पृ० २१३
नानक और दादू दरिया साधू। मीरा सूर कबीर कही।
नाभा नम जानी भाखि बखानी। सुरति समानी पार गई ॥ पृ० २२०
दरिया भी दादू बतलाई। अलीमियाँ सुन साखि सुनाई ॥ पृ० २३०
और कबीर दादू रैदासा। दरिया नानक अगम तमासा ॥
सूरदास नाभा अरु मीरा। औरो सत अगम मति धीरा ॥ पृ० २४०
ऐसे अध अचेत अबूझा। गुरु दरिया पानी में सूझा ॥ पृ० २६२
गुरु दरियाव राह नहिं जाना। हलुवा पानी डार बखाना ॥
ये गावे माँहि कहाँ विधाना। गुरु दरिया पानी में जाना ॥ पृ० २६३
गुरु का दर दरवाजा भाई। ताको गुरु दरियाव बताई ॥ पृ० ३६३
जग गुरु दर दरियाव न चीन्हा। हलुवा पानी डार जो दीन्हा ॥ पृ० ३६३
बाह गुरु दरियाव न पावै। बिना सत कहो को दरसावे ॥ पृ० ३६३
भडा तन विच बीच विचारा। गुरु दरियाव गगन के पारा ॥ पृ० ३६५
नानक और कबीर सुनाई। दादू दरिया सत ने गाई ॥ पृ० ३७८

डा० रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी साहित्यके आलोचनात्मक इतिहास' में दो दरिया साहबों का परिचय दिया है। एक तो बिहार-वाले दरिया साहब थे जो सम्वत् १७३१ में जन्मे और १८३७ मे मरे, दूसरे मारवाड़ वाले दरिया साहब थे जिनका जन्म सम्वत् १७३३ में हुआ। किन्तु तुलसी साहिब के ही लेखानुसार गोस्वामी तुलसीदास का देहावसान श्रावण शुक्ला सप्तमी सम्वत् १६८० में हुआ। स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास जी तो दरिया साहब का उल्लेख न कर सकते थे। अत. यह सब गोलमाल उनके पीछे का होना चाहिये। तीसरा व्यतिक्रम यह है कि घट-रामायन के रचयिता ने पलकराम नानक पथी के साथ सवाद में अनेक (कम से कम छ·) स्थलों पर गुरु गोविन्द का उल्लेख किया है—

गुरु गोविन्द मुख भाखे बानी। बादशाह दस में सहदानी॥ पृ० ३४६
गुरु गोविंद जी यावे कहिया। पातशाह दसवां बतलइया॥ पृ० ३४६
गुरु गोविंद विधि कही बखान। सो भी सोंच सोंच कर माना॥ पृ० ३४६

गुरु गोविंद ग्रथ गति गावा। तामें विधी सब्द बतलावा॥
सुनो सब्द में भाखि सुनाऊ। गुरु गोविंद बानी मुख गाऊ॥
पूना पाहन नहीं बताई। देखो गोविंद ग्रन्थ मझाई॥
देखो ग्रथ मे याकी साखी। एक सब्द तुलसी कहि भाखी॥ पृ० ३६६

येहि विधि गोविंद ग्रथ लखाई। देखो सब्द ग्रथके माहीं॥
औरो सुनो भूल इक गाऊ। गुरु गोविंद की साखि बताऊ॥
गुरु गोविंद मुख अपने गावा। ग्रथ विधी में देखि बुभावा॥
कष्न राम भगवान जो भाखा। नहीं काल ने उनको राखा॥
गुरु गोविंद ग्रथ मे गावा। भये भगवान काल ने खावा॥ पृ० ३७०

ध्यान देने की बात है कि गोस्वामीजी और पलकरामका सवाद १६१६ सवत् में हुआ था जैसा कि पृ० ३४८ और ४१७ के दो स्थलों

से स्पष्ट है और इसी सवादमें गुरुगोविन्दका उल्लेख है। गोस्वामी तुलसीदास का देहावसान हुआ १६८० वि० में और गुरु गोविन्द का समय था १७३२ से १७६५ वि० सम्वत् तक। इस बातके प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं कि गुरु गोविंद सिंह का आविर्भाव गोस्वामी तुलसीदास के देहावसानके पश्चात् हुआ। अतः यह असम्भव कल्पना है कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने गुरुगोविन्दसिंह का अपनी रचना मे उल्लेख किया होगा। घट-रामायन में गुरु गोविंद का जो उल्लेख है वह सब पीछे का गोलमाल है।

तुलसी साहिब घट-रामायन मे यह लिखते हैं कि वह पूर्वजन्म में गोस्वामी तुलसीदास थे, अतः यह पुस्तक 'घट-रामायन' अछूती कैसे कही जा सकती है? इनका कहना है कि यह अपने पूर्वजन्म में गोस्वामी तुलसीदास थे और इनका जन्म यमुना के किनारे राजापुर में हुआ जो बुंदेलखण्ड मे चित्रकूट से दस कोस की दूरी पर स्थित है। यह कुलीन कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। यद्यपि यह अपनी पत्नी मे आसक्त थे तथापि सत्संग प्रिय थे। श्रावण, शुक्ला नवमी संवत् १६१४ को इनका अगम का सौदा हुआ, इनकी समाधि लगने लगी, बड़ी प्रसिद्धि हो गई, लोग दर्शनों को राजापुर आने लगे। काशी का रहनेवाला हिरदे नाम का अहीर राजापुर मे किसी के यहाँ नौकर था वह नित्य-प्रति दर्शन को आता था, अतः इनकी उससे प्रीति बढ़ गई। एक दिन ऐसा हुआ कि हिरदे को काशी गए बहुत दिन हो गये तो यह व्याकुल हो स्वय काशी जा पहुँचे, हिरदे से मिले और काशी में गगा के किनारे कुटी बनाकर सत्सग में रहने लगे। यह चैत्र द्वादशी मंगलवार सम्वत् १६१५ की बात है। कातिक बदी पचमी १६१६ में पलकराम नानकपंथी से मुलाकात हुई। तत्पश्चात् इन्होंने भादों सुदी मंगल २१ स० १६१८ को घट-रामायन का प्रारम्भ किया। इस पुस्तक से काशी में बड़ी खलबली मची। अतः इन्होंने झगड़े के डर से इसे गुप्त कर दिया और सं० १६३१ मे "अधा-अंधे निधि" समझाने के लिये रामचरित-मानस का प्रारम्भ किया और स० १६८० की

धर्मोन्मूलन

श्रावण शुक्ला सप्तमी को वरुन नदी के किनारे महाप्रस्थान किया। इस विषय में आवश्यक उद्धरण इस प्रकार हैं—

राजापुर जमुना का तीरा। जहँ तुलसी का भया शरीरा॥ पृ० ४१५
विधि बुन्देलखण्ड सोहि देशा। चित्रकोट बीचं दस कोसा॥
संवत् पंद्रा से नवासी। भादों सुदी मंगल एकादशी॥
तिरिया बरत भोंत मन राता। विधि विधि रीति चित्त संग साथा॥
ज्ञान हीन रस रंग संग माता। कान्हकुब्ज ब्राह्मन मोरी जाता॥...
संत साथ मोहि नीका भावै। ज्ञान अज्ञान एक नहिं आवै॥
संवत् सोलासै पे चौवा। ता दिन भया अगम का सौदा॥
सावन सुदी नौमी तिथि वारी। आधी राति भई गति न्यारी॥—
कंज गुरु ने राह बताई। देह गुरू से कछु नहिं पाई॥ पृ० ४१६
ऐसे कइ दिन बीति सिराने। राजापुरी जगत जब जाने॥
लोग दरस को नित नित आवै। दरस भाव सबको उपजावै॥...
हिरदे अहीर कासी का बासी। रहे राजापुर नौकर पासी॥
सोहु प्रतिदिन दरसन को आवै। प्रीति बड़ी हित कहा न जावै॥ पृ० ४१७
रीति दिवस दिन दिन रहे पासा। तुलसी बिना और नहिं आसा॥
एक दिवस भई ऐसी रीति। कासी गये बहुत दिन बीती॥
हमरा चित हिरदे में बासी। हम चलि गये नग्र यहँ कासी॥
सवत सोलासै रहे पद्रा। चैतमास बारस तिथि मँगरा॥
पहुँचे कासी नगर मँझाई। हिरदे सुनत दौहि चलि आई॥
आये चरन लीन्ह परसादी। बिधि बिधि रहन कुटी की साधी॥
कुटी बनाय कीन्ह अस्थाना। कासी में हम रहे निदाना॥
गंगा निकट कुटी जहँ कीन्हा। हिरदे नित आवै लौ लीना॥
सोलासै सोला में सोई। कातिक बदी पंचमी होई॥
आये पलकराम इक संती। रहे कासी में नानक पंथी..॥

घटरामायन ग्रंथ बनावा । ताकी विधि दिवस सब गावा ॥
सम्मत सोलासै अठारा । उठी मौज ग्रथ कियो सारा ॥
भादों सुदी मगल एकादसी । आरँभ कियो प्रथम मन भासी ॥
सुन कासी में अचरज कीन्हा । सोर नगर मे भयो अलीना ॥
तासे ग्रन्थ गुप्त हम कीन्हा । घटरामायन चलन न दीन्हा ॥
सम्मत सोला सै इकतीसा । राम चरित्र कीन्ह पद ईसा ॥
जग में झगरा जाना भाई । रावन राम चरित्र बनाई ॥
पंडित भेष जगत सब भारी । रामायन सुनि भये सुखारी ॥ पृ० ४१८
अधा अंधे विधि समझावा । घटरामायन गुप्त करावा ॥
अब कहौं अत समय अस्थाना । देह तजी निधि कहौं विधाना ॥

सम्मत सोलासै असी नदी बरन के तीर ।
सावन सुकला सतमी तुलसी तज्यो शरीर ॥

मैं अपना बरतंत बताई , समझ बूझ सुधबुध चित लाई ।
जस जस भया विधि विधि लेखा , तस तस तुलसी कहा विसेखा ॥

तिथि वार संवत और रचना घटना का बाहुल्य निस्संदेह तुलसी साहिब की पूर्वजन्म-स्मृति का अद्‌भुत साक्षी है । पूर्वजन्म मे इनके जो-जो सवाद अपने भक्तों से हुए थे, वे सब मय सम्वत् के ज्यों के त्यों स्मृति-पटल पर अंकित है; उन सब भक्त स्त्री पुरुषों के नाम याद हैं; उन्होंने जो कहा वह सब याद है । इन्होंने जो उनसे कहा वह भी याद है । इनका पूर्वजन्म मे कब जन्म हुआ वह बावन तोले पाव रत्ती स्मरण रहा । उनका जन्मस्थान कहाँ था, किस प्रांत और चित्रकूट से कितनी दूर था, यह भी याद है। उन्हें अपनी मरण-तिथि याद रही । इनका 'आगम का सौदा' कब हुआ वह तिथि मास सवत यहाँ तक कि आधीरात का समय भी याद है । यह हिरदे की प्यास में काशी किस दिन पहुँचे वह भी याद है । इन्होंने घट-रामायन किस दिन प्रारम्भ की वह याद है । इन्हें यह भी याद रहा कि रामचरित-मानस कब

प्रारम्भ किया और तो और, इनको यह घटना भी याद है कि पलकराम नानकपंथी इनके पास किस सम्वत् में किस तिथि और वार को सर्व प्रथम मिला। किन्तु खेद है, तुलसी साहिब की प्रखर स्मृति अंत में इन्हें धोखा दे ही गई। इन्हें यह स्मरण नहीं रहा कि पूर्वजन्म में इनके पुण्य-श्लोक माता-पिता का क्या नाम था। इन्हें यह स्मरण नहीं रहा कि इनकी पत्नी का जिसमें यह अत्यन्त अनुरक्त थे क्या नाम था। इन्हें यह स्मरण नहीं रहा कि इन्होंने पूर्वजन्म में गोस्वामीजी के रूप में घट-रामायन और रामचरित के अतिरिक्त कौन-कौनसी पुस्तकें लिखीं। इन्हें विनय पत्रिका कवितावली आदि सभी अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें विस्मृत हो गईं। इनकी स्मृति अविश्वसनीय होनी चाहिए; क्योंकि केवल जन्म तिथि को छोड़ कर अन्य कुछ तिथियाँ प्रथम तो गणना की कसौटी पर वार आदि के अभाव से नहीं कसी जा सकतीं और जो कसी भी जा सकती हैं वे असत्य निकली हैं।

डाक्टर माताप्रसाद गुप्त ने 'ऐ क्रिटिकल स्टडी आन दी लाईफ एण्ड वर्क्स आन तुलसीदास' नामक अप्रकाशित थीसिस* में लिखा है कि "हाथरस वाले तुलसी साहिब ने कवि की जीवनी लिखी जिसको समालोचकों ने बिल्कुल छोड़ रक्खा है। उन्होंने घटरामायन में अपने पूर्व-जन्म का वृत्तान्त दिया और बताया है कि वे उस जन्म में रामचरित मानस के रचयिता थे। विद्वानों ने इस काल्पनिक आत्म चरित्र के विषय की परीक्षा नहीं की है। डाक्टर साहब कुछ भूले हैं। उनसे पहिले तो डाक्टर रामकुमार वर्म्मा ने अपने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में तुलसी साहब और घटरामायन का उल्लेख किया और इनके दार्शनिक विचारों की प्रशंसा एवं भाषा छंद आदि का भी अति संक्षेप में विचार किया है। समालोचकों का अपना-अपना दृष्टिकोण, ढंग और रुचि होती है। वर्म्माजी से

---

* इसका हिन्दी रूपान्तर अब प्रकाशित हो गया है। सं० भ्र०

भी कहीं पहले श्री लक्ष्मीनारायणसिंह 'सुधांशु' ने माधुरी (भाद्रपद शुक्ला ७, ३०३ तुलसी संवत् अर्थात १९८३ विक्रमी तदनुसार १४ सितम्बर १९२६ ई०) के कविचर्चा नामक स्तम्भ में विस्तृत और मनन-पूर्वक समालोचना की है।"

वास्तव मे 'घटरामायन' गोस्वामी तुलसीदास के विषयमें किसी महत्व की नहीं है। एक मित्र ने तो उपहास में 'घटरामायण' को 'मरघट रामायन' बता डाला। यह पुस्तक उपेक्षा योग्य ही थी, मैं इस रचना के विषय मे स्वयं अधिक न कहकर श्री लक्ष्मीनारायणसिंह जी 'सुधांशु' के ही शब्दों में इस विषय को समाप्त करता हूँ।—

"हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि किसी तुक्कड़ ने इसकी रचना कर इसे तुलसीदासजी के पवित्र नाम से प्रकाशित किया है......। यह पुस्तक संत-मत की कट्टर समर्थक है। सारी पुस्तक दोहे-चौपाई आदि में वर्णित है। पर इसमें रामचरित-मानस की तरह न सरसता है, न सरलता और न अर्थ गाम्भीर्य। छंदो-भंग की त्रुटियों से सारी पुस्तक खचाखच भरी पड़ी है...। जैसे-तैसे एक ही बात की बार-बार आवृतिकर पुस्तक के कलेवर की वृद्धि की गई है। हमारी समझ में यह पुस्तक गोस्वामीजी के पवित्र नाम में कलंक लगानेवाली है।

———

सोरों की सामग्री

प्रस्तुत विषय से सीधा सम्बन्ध रखनेवाली बहुविध सामग्री का उल्लेख भूमिका में हो चुका है और 'शङ्का समाधान' में भी होगा। इस अध्यायमें रत्नावलिकृत 'दोहा रत्नावली', कृष्णदास-कृत 'कृष्णदास-वंशावली' और मुरलीधर चतुर्वेदि-कृत 'रत्नावली चरित' यथावश्यक पाठान्तर, आलोचन आदि सहित उपस्थित किए जा रहे हैं।

मुरलीधर चतुर्वेदिकृत रत्नावली-चरित का गद्यानुवाद—

श्रीगणेशजी को नमस्कार। श्रीसरस्वतीजी को नमस्कार। आत्माराम सुकुल के कवींद्र एवं महात्मा पुत्र की जय हो; वह विष्णु और शिव के भक्त और धर्म-कर्म में अनुरक्त हैं; उनका यश तीनों लोकों में व्याप्त है; वह कांति और कामदेव की मूर्ति तथा स्वभाव से भगवान राम का गुण-गान करने वाले हैं॥ १॥

वंदनीय बुध एवं शुक्ल-वंश के तिलक, ब्राह्मण-श्रेष्ठ तुलसी (दास) की जय हो, जो रत्नावली के मुख-चंद्र के लिए चकोर और भगवान् रामचंद्र के चरण-कमल के लिए भ्रमर एवं सूकर-तीर्थ के भी तीर्थ हैं॥ २॥

मैं दंतुर भगवान् वाराह और सनक आदिक मुनीश्वरों को प्रणाम करता हूँ; पार्वती, सरस्वती को सिर नवाकर, सीता-सावित्री के गुण गाकर, (वशिष्ठ-पत्नी) अरुंधती, (नल-पत्नी) दमयंती, (अत्रि-पत्नी) अनसूया एव (धृतराष्ट्र-पत्नी) गांधारी को और पृथ्वीतल पर जितनी सती स्त्रियां हो गई हैं, उन सबको प्रणाम करके रत्नावली की गाथा उसके चरणों में माथा टेककर लिखता हूँ। उसका चरित बड़ा गंभीर है, तो भी धीरज धरकर कुछ लिखता हूँ। वह चरित शास्त्र-प्रसिद्ध पापों को नाश करनेवाला और पतितों

को पवित्र करनेवाला है।

गगाजी के दाहने किनारे के पास की भूमि बड़ी पुण्य और मगल देनेवाली है, जहाँ जगत्पति भगवान् हरि अपने करुणामय स्वभाव के वशीभूत हो (ससार की रक्षा के निमित्त) वराह रूप से प्रकट हुए थे।

इससे यह भूमि वाराह-क्षेत्र नामसे संसार-सागर से पार करनेवाले पुल के समान हो गई है।

यह तीर्थ सूकर-खेत नाम से लोगों को मुक्ति देनेवाला धाम प्रसिद्ध हो गया। यहाँ अनेक और-और तीर्थ भी विराजते हैं, जिनमे स्नानादि करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं; यहाँ मुनिजनों ने अपने ससार के भय और भ्रांति को मिटाकर शांति का लाभ किया है। ससार में जितने बड़े-बड़े तीर्थ हैं, उन सबका फल यहीं मिल जाता है। यहाँ पर एक तो भागीरथी गगा, दूसरे वाराह-क्षेत्र है, मानों मधुर ईख में फल भी लग रहे हों (सोनेमें सुगध है) अथवा यहाँ एक तो गगाजी बहती है, दूसरे वाराह-क्षेत्र है; यहाँ की देन मधुर ईख तो है ही, (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों) फल भी हैं।

यहाँ श्रीवाराह भगवान् का एक सुहावना मदिर बना है, और भी अनेक देवताओं के मदिर विराजमान हैं, जिनमे से बहुत से मुसलमानों ने तोड़ फोड़ डाले थे, पर भक्तजन उन्हें बार बार बनवाते रहे। यहाँ गगाजी की धारा ऐसी बह रही है, मानो वाराह भगवान के पैर धो रही हो। यहाँ वेद-धर्म का प्रकाश करते हुए ब्राह्मण लोग निवास करते, चित्त लगाकर नित्य-प्रति पुराणों की कथा बाँचते और भगवान की कीर्ति का गान करते हैं। यहाँ योगीजनों के निवास स्थान (मठ) और उनकी समाधियाँ बनी हैं, जिनके दर्शन करने से रोग नष्ट होते हैं।

यहाँ वेद-धर्म को माननेवाला सोरंकी वश का सोमदत्त-नामक राजा हुआ है। उसका क़िला अब नहीं रहा, किन्तु उसके कुछ-कुछ चिह्न दिखाई

देते हैं। इस सोरकी राजा के शुभ नाम स यह क्षेत्र 'शोरकियों का ग्राम' प्रसिद्ध हो गया। उसके पश्चिम की ओर निम्न-भूमि (कछार) में गंगाजी की पुरानी धार बहती थी। किसी समय इसके पश्चिम किनारे पर एक बड़ा सुंदर स्थान था, जो बदरिया-वन के नाम से प्रसिद्ध था। यहाँ पशु पक्षी नहीं मारे जाते थे। इसमें भाँति भाँति के गुल्म-वृक्ष, लता वल्ली, बड़, पिलखुन, पीपल आम, कदम, नीम, जामुन, खजूर, शीशम, बेर आदि लगे हुए थे। यहाँ अनेक प्रकार के पक्षी कलोल करते और मृग आदि पशु स्वतंत्रता पूर्वक सुख से विचरते थे। बदरीवन-भूमि में एक विशाल स्थल था, जहाँ मुनियों के सुन्दर कुटीर बने हुए थे, जिनमें सदा ज्ञान वायु का संचार होता था। यहाँ ऋषि मुनि, वैरागी, सिद्ध, साधु, योगी अच्छे अच्छे भगवद्-भक्त बसते थे, परन्तु काल की गति से वह मुनियों का निवास धाम गृहस्थों के रहने का ग्राम बन गया, और उस बदरिया नाम के ग्राम में भिन्न भिन्न जाति के लोग आकर बस गए।

यहाँ एक उत्तम ब्राह्मण रहता था। वह वेद शास्त्र-विद्या में बड़ा निपुण था। इसका शुभ नाम दीनबंधु पाठक था। वह ईश्वर का भक्त एवं अनेक गुणों का निधान था। वह उपाध्याय वृत्ति करता हुआ षट्कर्म में साव-धान, सदा शुभ कर्म करता रहता था। उसकी स्त्री का नाम था दयावती, जो बड़ी पतिव्रता, शीलवती और बहुगुणों की आगार थी। इस दंपति के तीन पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम थे शिव, शंकर और शंभु। तीनों ही बड़े चतुर थे (इनसे छोटी रत्नावली नामकी एक कन्या थी, जिसने (अपने सदाचरण से) अपने पिता और पति दोनों के कुल को पवित्र किया। इसका रूप बड़ा ही मनोहर था, मानो ब्रह्माजी ने इसे रच पचकर बनाया हो।

यह माता पिता की बड़ी दुलारी एवं निज कुटुंब और नगर वासियों की प्यारी थी। यह सबसे मीठे वचन बोलती थी। इसे देखकर कैसा ही दुखिया हो, चैन पाता था। इसकी हँसनि और चितवन अनोखी

-मुख, शांति, शील और स्नेह का रूप थी। इसे देखकर मोह रहित भी मोहित हो जाते थे, प्रेमियों की तो बात ही क्या।

यह गूढ़ ज्ञान की चर्चा करती, इसके छोटे मुँह से बड़ी बात सुहावनी लगती थी। बालकपन में ही यह घर के सब काम, विविध प्रकार के भोजन -बनाना आदि, सीख गई थी।

अपने भाइयों को पढ़ता हुआ देखते देखते आप स्वय ही अक्षरों का पढ़ना लिखना सीख गई। पिता ने इसकी तीव्र बुद्धि जानकर पट्टी बुदिका ला दिए। थोड़े ही दिनों में यह इतनी योग्य हो गई कि लोग इसे सरस्वती कहने लगे। इसके पिता ने इसे व्याकरण पढ़ाया और कोष भी कठस्थ करा दिया जब यह वाल्मीकि-रामायण पढ़ने लगी, तो इसकी सरस्वती जाग उठी। यह छद शास्त्र पिंगल के नियम जान गई और इसे कविता करने का भी अभ्यास हो गया। यह पार्वती-महादेव का ध्यान किया करती और बड़े भाव के साथ विविध प्रकार से उनका पूजन करती थी।

जब पिता ने देखा कि पुत्री विवाह योग्य हो गई है, तो मन में विचार किया कि किस घर इसका भोग बदा है। यह वर के लिए अनेक गाँव हूँ॥

सिधार गए, तब दादी और पोते को बहुत शोक हुआ। ब्राह्मण वंश के अलौकिक दीपक (तुलसीदास) जोगमार्ग के पास रहते हैं। वह सदा राम-राम कहा करते हैं, इससे उनका नाम 'रामोला' प्रसिद्ध हो गया है। उनका रंग गोरा है। वह विद्या के निधान और विविध शास्त्रों के बड़े पंडित हैं। वह काव्य-रचना में बड़े चतुर और सब प्रकार की बुराइयों से रहित हैं। वह सब प्रकार से रत्नावली के योग्य है, बड़े सुशील हैं, और शरीर में कोई रोग नहीं है।

मित्र के ऐसे प्रिय वचन सुनकर पाठकजी प्रसन्न हुए, और गुरु नृसिंह के पास पहुँचे, उनको प्रणाम किया, और तुलसी के सुंदर मुख का दर्शन किया।

गुरुजी के मुख से उनका परिचय प्राप्त कर एवं गोत्र कुल-ग्राम आदि की विधि मिलाकर वाग्दान (पुत्री देने का वचन) दिया, और मन में बड़े प्रसन्न हुए। पुनः अपनी वंश-परंपराके अनुसार विवाह की पीली चिट्ठी भेज दी, और फिर लग्न-पत्रिका भेजकर विवाह की सब रीत यथावत् की। शुभ दिन में बरात आई। पुत्र और पुत्रीवाले दोनों पक्ष के लोग प्रसन्नता से अंग में फूले नहीं समाते थे। दीनबंधु ने हृदय की प्रसन्नता उत्साह के साथ विवाह का कृत्य विधि-पूर्वक संपन्न किया। तुलसीदास के हाथ में वेद-विधि से रत्नावली का हाथ दिया। अनंतर रत्नावली तुलसीदास के घर गई। उसका प्रेम पति के चरणों में बढ़ता गया।

रत्नावली सी स्त्री पाकर तुलसीदास के घर में सुख छा गया। तुलसी की दादी ने बहुत दुःख सहकर, छाती से लगाकर इनका पालन पोषण किया था। वह तुलसीदास और रत्नावली की सेवा से कुछ दिन सुखी हो स्वर्ग-वासिनी हो गई।

नंददास और चंद्रहास रामपुर में अपनी माता के पास रहते रहे। और

यह दम्पति (तुलसीदास और रत्नावली) वाराह ग्राम (सूकर-क्षेत्र) में वास करते हुए आठों पहर प्रसन्न रहते थे। कभी शास्त्र-चर्चा का आनंद लूटते और कभी कविता रचना कर आमोद प्रमोद में मग्न होते थे। वह प्रति दिन संध्या वंदन आदि नित्य कर्मों का सम्पादन कर गृहस्थ धर्म का पालन करते, अपने घर में रामजी की सुंदर मूर्ति रखने और प्रात. साय दोनों समय बड़े प्रेम के साथ पूजन करते थे। बात बात में राम राम का उच्चारण तुलसीदास के मुख से बड़ा अच्छा लगता था। तुलसीदासजी भगवद् भक्तों के घरों में पुराणों की कथा बाँचकर धन और प्रतिष्ठा पाते थे। पति के नेत्र-चन्द्र की चकोर-रूप रत्नावली प्रेम-आदर के साथ मीठे वचन बोलती थी। वह कभी अप्रिय बात नहीं कहती और न कभी पति पर क्रोध करती। नित्यप्रति पति के पैर और पीठ मलती और प्रेम पूर्वक स्नान कराती थी। उसको पति का वियोग क्षण भर को भी नहीं सुहाता था। पति के कहीं चले जाने पर उसका मुँह उतर जाता। पतिदेव जो चाहते, वही वह करती। पति की सेवा में उसे बड़ा उत्साह था। यदि कभी किसी बात से पतिदेव क्रुद्ध हो जाते, तो पैरों पड़कर उन्हें मना लेती। जब तक पतिदेव भोजन न कर लेते, तब तक आप भी कुछ नहीं खाती। जो बात उसके मन में होती, वही वचन और कर्म से प्रकट कर देती। पति से कोई भेद की बात नहीं छिपाती। दंपति के तारापति नाम का एक सुपुत्र उत्पन्न हुआ, जो बड़ा बुद्धिमान् और पुष्ट था। परंतु दैव-गति से उसका स्वर्ग-वास हो गया। इस अबला रत्नावली ने बहुत विलाप किया। पुत्र का शोक तो इसको बहुत हुआ, परंतु पति का मुखाव लोकन कर धीरज धर लिया। तुलसीदास भी रत्नावली को बहुत प्यार करते थे, यह इनके हृदय का हार हो रही थी। वह उसको आँखों से परे नहीं करना चाहते थे। जब कभी वह आँख-ओट हो जाती, तो इनके हृदय में बड़ी चोट लगती थी। स्त्री में इनका इतना अधिक प्रेम हो गया कि भजन-पूजन में भी ढील होने लगी। इनके विवाह को पंद्रह वर्ष बीत गए। यह

समय एक दुःख के सिवा बड़े हर्ष से कटा।

एक समय की बात है। रत्नावली राखी बाँधने के लिये पति से आज्ञा ले, प्रणाम कर, मन में प्रसन्न हो, भाई के साथ अपनी मा के घर गईं। इधर तुलसीदासजी रामायण का नवाह्न (नौ दिन की कथा) करने के लिये मन में (भगवान् अयोध्यानाथ रामचंद्र का) ध्यान धर चले गए। फिर ग्यारह दिन के अनंतर कथा समाप्त कर जब घर लौटकर आए, तो घर में इनका मन नहीं लगा, और रत्नावली को देखने की मन में प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई, इसलिये उत्साह के साथ ससुर के घर चल पड़े। होनहार बड़ी बलवान् है। जो कुछ होना होता है, होकर रहता है। वैसी ही बुद्धि हो जाती है। स्त्री के प्रेम-मद में तुलसी उन्मत्त हो गए, समय का भी ज्ञान न रहा, चल दिए। उस समय आधी रात बीत गई थी। आकाश में बादल थे। बिजली चमक-चमककर रह जाती थी, गंगाजी की धारा बड़े वेग से बह रही थी। वह पैरकर उसको पार कर गए, और दीनबंधु पाठक के घर पहुँच, आवाज़ देकर घर के सब लोग जगा दिए। वे सब उसी समय दरवाज़े पर आ गए। तुलसीदास को देखकर उनके साले भौंचक्के रह गए। प्रणाम कर कुशल-क्षेम पूछी, तो तुलसीदास 'हाँ' कहकर मन में लज्जित हुए। (ससुराल-वालों ने) समय के अनुसार आदर मान कर प्रेम के साथ उनको सुलाया। (थोड़ी देर में) रत्नावली एकांत पाकर हर्ष से पति के दर्शन के लिये पति के पास गईं। चरण छूकर पतिदेव को प्रणाम किया, और चरण पकड़कर धीरे-धीरे दबाने लगी, और पूछा—"इतने अँधेरे क्यों आए? बादल गरज रहे हैं। अँधेरी रात है। गंगाजी की धार कैसे पार की? मेरे मन में बड़ा आश्चर्य हो रहा है।" ये वचन सुनकर तुलसीदास बोले—"तुमसे मिलने को मेरे मन में प्रबल इच्छा हुई, तुम्हारे बिना मुझको चैन नहीं पड़ा। अब तुम्हें नेत्रों से देखकर मुझको शांति मिली है। हे सुमुखि, तेरे

जहाँ-जहाँ तुलसीदास के मिलने की आशा थी, वहाँ जब वह न मिले, तो सब लोग उदास हो बैठे। पति को न पाकर रत्नावली ऐसे व्याकुल हुई जैसे जल के बिना मछली तड़पती है। बहुत दिन तक खाना-पीना भी त्याग दिया, और स्वामी का ध्यान कर रोती रही। बहुत-से दिन, पक्ष और महीने बीत गए, और जब तुलसीदास के मिलने की कोई आशा न रही, तब उसने सब शृंगार त्याग दिए, और रात दिन में केवल एक ही बार भोजन करने लगी। उत्तम भोजन और बहुमूल्य वस्त्र पहनना छोड़ दिया। प्रियतम के विरह की आग उसके हृदय में सुलगती रहती थी। वह तुलसीदास की खड़ाऊँ छाती से लगा, भूमि पर कुशासन बिछाकर सोती, कभी (सूकरखेत से) रामपुर जाकर रहती और कभी बदरिका में आकर रहती थी। उसने कई बार चान्द्रायण-व्रत पूर्ण किए, तथा और भी अनेक व्रत रक्खे थे। (इस प्रकार) सती धर्म का अच्छी तरह पालन करती हुई वह मन, वाणी और कर्म से सदा पवित्र और मन लगाकर भगवान् के भजन में तत्पर रही। उसके दृढ़ पतिव्रत-नियम को देखकर अनेक नारियाँ सती बन गईं। वह (अपने जीवन में) स्त्रियों को उत्तमोत्तम शिक्षा देती और उनको धर्म का मार्ग दिखाती रही। पति के वियोग में योग साधकर उसने संसार के सब भोगों का परित्याग कर दिया। जो इसके चरण और गृह की धूलि को शरीर से लगाता है, वह निरोग हो जाता है। इस भाँति वह संसार में बड़ा यश पाकर सं० १६५१ वि० के अंत में स्वर्ग सिधार गई। हे रत्नावली माता, तुमको धन्य है। तुम्हारे समान संसार में और दूसरी स्त्री कहाँ ?

सं० १८२६ वि० में जगद्वंदनीय सूकरक्षेत्र तीर्थ में सती रत्नावली की यह कथा जैसी वृद्धों के मुख से सुनी, वैसी ही मुझ द्विजवर मुरलीधर चतुर्वेदी ने संसार की भलाई के लिए लिख कर प्रकट की।

इस प्रकार श्रीरत्नावली-चरित समाप्त हुआ। चतुर्वेदी मुरलीधर+ ने

+ उक्त कवि मुरलीधर चतुर्वेदी का जन्म सं० १७४६ वि० में हुआ था।

प्रेम में मैं गंगाजी की धारा सहज ही पार कर आया।" इस पर रत्नावली ने कहा—"हे प्राणनाथ, मुझे धन्य है, जो आपका साथ मिला। नाथ, मेरे लिये आपने बहुत दुःख उठाया, और यहाँ आकर मुझको दर्शन दिया। मेरे समान बड़भागिनी स्त्री संसार मे दूसरी कौन है ? मेरे समान पतिकी प्यारी स्त्री दूसरी कौन है ? तुमने प्रेम की सीमा पार कर डाली। हे नाथ, तुम प्रेम के आधार हो, मेरे प्रेम को अपने हृदय में रखकर हे प्रिय, तुम गंगाजी को पार कर आए। जगदाधार श्रीभगवान् के चरणों में प्रेम कर मनुष्य संसार-सागर से पार हो जाता है। प्रेम के बिना जीवन असार है ! स्वामिन् ! प्रेम की महिमा का पार नहीं !" (इस प्रकार) रत्नावली की सुन्दर वाणी सुनकर (तुलसीदास को) सांसारिक विषय-वासनाओं से *ग्लानि हो गई। वह चित्र के समान स्थगित रह गए, और मन में कुछ* विचार करते हुए-से उदास हो गए।

रत्नावली समझी, पतिदेव को नींद आ गई, इससे हाथ जोड़, चरण छूकर चली गई। अब तो दैव ने दोनों के मिलन का अंत ही कर दिया; पति कहीं और पत्नी कहीं। जहाँ संयोग है, वहाँ वियोग भी। जो भोग भोगते हैं, वे शोक भी पाते हैं। काल और कर्म की गति बड़ी विचित्र है, जो कभी मित्र रहे थे, वे ही शत्रु भी बन जाते हैं। मनुष्य जो कुछ आज सोचता है, वह होनहार के वश कल कुछ और ही हो जाता है। श्रीराम को गद्दी होनेवाली थी, किंतु राज छोड़कर उन्हें वन जाना पड़ा। तुलसीदास को रत्नावली प्राणों से भी प्यारी थी, किंतु उसी रत्नावली को त्यागकर वह चले गए।

घर के लोगों को सोता जान तुलसीदास सहज में चलते बने। रात बीत गई, सवेरा हुआ; परंतु तुलसीदास किसी को कहीं न दिखाई पड़े। आसपास के सब गाँवों में लोगों से पूछा गया, परंतु उत्तर यही मिला कि हमने तुलसीदास नहीं देखे।

जहाँ जहाँ तुलसीदास के मिलने की आशा थी, वहाँ जब वह न मिले, तो सब लोग उदास हो बैठे। पति को न पाकर रत्नावली ऐसे व्याकुल हुई जैसे जल के बिना मछली तड़पती है। बहुत दिन तक खाना पीना भी त्याग दिया, और स्वामी का ध्यान कर रोती रही। बहुत-से दिन, पक्ष और महीने बीत गए, और जब तुलसीदास के मिलने की कोई आशा न रही, तब उसने सब शृंगार त्याग दिए, और रात दिन में केवल एक ही बार भोजन करने लगी। उत्तम भोजन और बहुमूल्य वस्त्र पहनना छोड़ दिया। प्रियतम के विरह की आग उसके हृदय में सुलगती रहती थी। वह तुलसीदास की खड़ाऊँ छाती से लगा, भूमि पर कुशासन बिछाकर सोती, कभी (सूकरखेत से) रामपुर जाकर रहती और कभी बदरिका में आकर रहती थी। उसने कई बार चांद्रायण-व्रत पूर्ण किए, तथा और भी अनेक व्रत रखे थे। (इस प्रकार) सती धर्म का अच्छी तरह पालन करती हुई वह मन, वाणी और कर्म से सदा पवित्र और मन लगाकर भगवान् के भजन में तत्पर रही। उसके दृढ़ पतिव्रत-नियम को देखकर अनेक नारियाँ सती बन गईं। वह (अपने जीवन में) स्त्रियों को उत्तमोत्तम शिक्षा देती और उनको धर्म का मार्ग दिखाती रही। पति के वियोग में योग साधकर उसने संसार के सब भोगों का परित्याग कर दिया। जो इसके चरण और गृह की धूलि को शरीर से लगाता है, वह निरोग हो जाता है। इस भाँति वह संसार में बड़ा यश पाकर सं० १६५१ वि० के अंत में स्वर्ग सिधार गई। हे रत्नावली माता, तुमको धन्य है। तुम्हारे समान संसार में अब दूसरी स्त्री कहाँ?

सं० १८२९ वि० में जगद्वंदनीय सूकरक्षेत्र तीर्थ में सती रत्नावली की यह कथा जैसी वृद्धों के मुख से सुनी, वैसी ही मुझ द्विजवर मुरलीधर चतुर्वेदी ने संसार की भलाई के लिए लिख कर प्रकट की।

इस प्रकार श्रीरत्नावली-चरित समाप्त हुआ। चतुर्वेदी मुरलीधर+ ने

+ उक्त कवि मुरलीधर चतुर्वेदी का जन्म सं० १७४९ वि० में हुआ था।

सोरों-क्षेत्र मे सवत् १८२६ श्रावण शुक्ला १ पड़वा शुक्रवार को इसे लिखा। शुभ होवे!

रत्नावली चरित–कवि मुरलीधर चतुर्वेदी कृत (पाठान्तर सहित)–

॥ वन्दे गणपति मीशम् ॥

सकल देव पूजित महि हार मनुज तनु करि वदनम् ॥
मगल मूल गिरिजा नन्दन महोदर सुख सदनम् ॥ वन्दे० ॥
विविध भूत गण सेवित पाद चारु सिद्धि दातारम् ॥
ऋद्धि बुद्धि नव निधि प्रदायक विपुल गुणगणागारम् ॥ वन्दे० ॥
त्रिनयनमेकदन्तमति दिव्य विकट विघ्न विनाशम् ॥
परशु कमल धर माखुवाहन सिन्दूराभ विकाशम् ॥ वन्दे० ॥
श्रोङ्काराक्षर रूपमुत्तम भक्त भद्र कर्त्तारम् ॥
लड्डुकप्रिय चन्द्रचूड़ मोदक भक्षण मेक मुदारम् ॥ वन्दे० ॥
मौलि मिलित बद्धाञ्जलि नाऽहम् गायन्सस्तव पद्यम् ॥
अधिवाचे मुरलीधर विप्रो मति वैभव मन वद्यम् ॥ वन्दे० ॥

श्रीगणपतये नम ॥ सरस्वत्यै नम ॥

हरि हर गुरु भक्त कर्म धर्मानुरक्त
त्रिभुवन गत कीर्ति. कान्ति कन्दर्प मूर्तिः ॥
रघुवर गुण गाथा गान शीलो महात्मा
सजयति सुकुलात्मा राम सूनु कवीन्द्रः ॥१॥
रत्नावली वदन चन्द्र चकोर रूपः
श्रीरामचन्द्र पद पङ्कज चञ्चरीकः ॥

श्रीशुक्ल वश तिलकन्तुलसी द्विजेन्द्री
वन्द्यो बुधो जयति शौकर तीर्थ तीर्थः ॥२॥

अथ रत्नावली चरित लिख्यने ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥ अथ रत्नावली लिख्यते ॥

चन्दों बिकट बराह ईस । वन्दों [सनकादिक मुनीस ॥
बन्दहुं वन्दहु
सती सारदहि सीस नाइ । सानित्री सिय गुनन गाइ ॥
नाय श्री गाय
अरुन्धती दमयन्ति नारि । अनुसुया पुनि गान्धारि ॥
-य- अनसुया
सती भई जे जगत धाम । तिनहिं सबनु कहं करि प्रनाम ॥
रत्नावलि की लिपहु गाथ । तिहि चरनन महं नाइ म.थ ॥
लिखहुं
जासु चरित है अति गभीर । तदपि लिपहुं कछु धारि धीर ॥
लिखहुं
विदित वेद अघ हरन हारि । पतितनु पावन करन हारि ॥
सुर सरिता के दछिन कूल । धन्न धरनि मंगलन मूल ॥
निज सुभाव वस जगत नाइ । हरि प्रगट्यो जह वपु वराह ॥६॥
तासों जे वाराह पैतु । भई भूमि भवतरन सेतु ॥
खेत सेत
तीरथ सूकर पेत नाम । भयो विदित जन मुकति धाम ॥
खेत
बहु तीरथ जहं रहे राजि । सेवत अघगन जात भाजि ॥
पाई मुनि जन जहाँ शान्ति । मैटी निज भव भीति भ्रान्ति ॥

आदि तीर्थ जे जगत माहिं । सब तीर्थनु फल है जहांहिं ॥
सुरसरि पुनि बाराह पेत । मधुर ऊप पुनि फलहु देत ॥
खेत ऊख
जह बराह प्रभु सदन एक । सोहत सुर सदनहु अनेक ॥
जवननु डारे बहुत तोरि । पुनि कछु पुनि भगतन लये जोरि ॥
बहुरि पुनि
जह सुरसरि की बहति धारि । जनु बराह पद रहि पखार ॥
पखारि
विपुल विप्र जह करत बास । रह वेद धरमहिं प्रकास ॥१६॥
बहुरि
बाँचत नित चित सों पुरान । प्रभु की कीरति करत गान ॥
जह जोगी जन मठ समाधि । बनी दरस सों हरति व्याधि ॥
सोरकी नृप सोम दत्त । भयो जहां श्रुति धरम मत्त ॥
स्रुति
तासु दुर्ग अवसेस नाहिं । कछुक चिन्ह ताके जपाहि ॥
दुरग लखाहिं
सोरकी नृप के सुनाम । भयो छेत्र सोरछ गाम ॥
छेत्र
ताके पच्छिम दिशि कछार । बहति पुरातन गगधार ॥
तासु प्रतीची तीर धाम । कबहु रह्यो नयनाभिराम ॥
नाम बदरिका बन प्रसिद्ध । होत मृगादि न जहां बिद्ध ॥
विविध गुल्म तरु लता जाल । बर पाकर पीपर रसाल ॥
कर्दम निंब खद्ररु पखूरि । सिसप बदरिन रह्यो पूरि ॥
खजूर पूर

रत्नावली चरित

मुरलीधर चतुर्वेदकृत
संवत् १८२९ वि
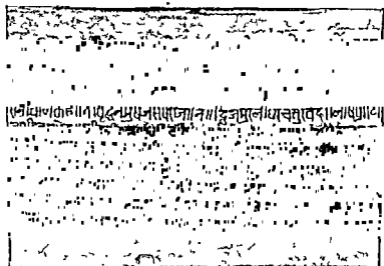
मुरलीधर चतुर्वेद की प्रति। इसमें तुलसीदास, रत्नावली, नंददास, और रत्नावली की जन्म भूमि पर प्रचुर प्रकाश है

दे. पृ. ११४

रत्नावली ...

सवत् १८६४ वि०

मुरलीधर चतुर्वेद के शिष्य रामवल्लभ मिश्र की प्रति। तुलसीदास, रत्नावली, नन्ददास, और रत्नावली की जन्म भूमि पर प्रकाश ... पृ० १२०

कूजत तहँ वहु विध विहंग । सुवि स्वान्त विहरन कुरंग ॥
जहँ मुख सुतंत्र
रच्यो शान्ति को यज्ञ विशाल । वदरी वन भुईं अन्तराल ॥३१॥
सान्ति
जहाँ राजनी मुनि कुटीर । वही ज्ञान की जहँ समीर ॥
ग्यान
जहां वसे ऋषि मुनि विरक्त । सिद्ध साधु जोगी सुभक्त ॥
रिखि
सोइ काल वस मुनिन धाम । वन्यो गृहस्थनु वास गाम ॥
जाहि वदरिका गाम धाइ । विविध जाति जन वसे आइ ॥
धाय आय
वसतु तहां वर विप्र एकु । धारतु निगमागम विवेकु ॥
एक क
दीनबन्धु पाठक सुनाम । ईश भक्त बहु गुनन ग्राम ॥
ईस
उपाध्याय की धरत वृत्ति । निरत कर्म पट सुकृत कृत्ति ॥
खट
तासु. दयावति नाम वाम । पतिवरता गुन शील धाम ॥
सील
दोउन प्रगटे पुत्र तीन । शिव शंकर शंभू प्रवीन ॥
संकर संभू
तनया रत्नावलि कनीन । पति पितु कुल जिन पूत कीन ॥४१॥
रतना
जासु रूप अति मनोहारि । जनु विरचि विरची सम्हारि ॥४२॥
जनक जननिकी अति दुलारि । परिजन पुरजन सबै प्यारि ॥

बोलति सबसों मधुर बैन । जेहि लपिपावत दुपित चैन ॥
जिहि लखि दुखित
जासु हसनि चितवनि अनूप । शान्ति शील सुप नेह रूप ॥
सान्ति सील सुख
निर्मोही लपि मोहि जाति । फिर नेहिन की कौन बात ॥
गूढ ज्ञान की कहति बात । बड़ी बात लघु मुप लपात ॥
मुख लखात
बालक पन सों गेह काज । सीपि गई सब पाक साज ॥
सीखि
निज भ्रातनु सो पढ़त देपि । आपहु आंपर पढ़त लेपि ॥
देखि आंखर
प्रपर बुद्धि तिहि जनक जानि । पाटी बुदिका दयो आनि ॥
प्रखर
कछुक दिननु मह भई जोग । कहहिं सरसुती ताहि लोग ॥
पुनि व्याकरनहु पितु पढ़ाइ । दीनो कोशहु तेहि घुकाइ ॥
पढाय कोसहु तिहि घुकाय
बालमीकि पुनि पढन लागि । गई भारती तासु जागि ॥
पिंगल के कछु अंग जानि । काव्य करन की परी बानि ॥५४॥
पि-
शिव गौरी को धरति ध्यान । पूजतिबहु विधि सहित मान ॥५५॥
सिव
पितु तनया लपि ब्याह जोग । सोचहि किन घर जासु भोग ॥
लखि
ढूंढि फिरे सो बहुरि गाम । भई न पूरी मनोकाम ॥
भये दुपित अति चित्त माहिं । सुता जोग वर मिलत नाहिं ॥
दुखित

तबहिं मीत इक दई आस । गुरु नृसिंह के जाउ पास ॥
तबै

स्मारत वैष्णव सो पुनीत । सकल वेद आगम अधीत ॥
म अखिल

चक्र तीर्थ ढिग पाठशाल । तहीं पढावत विपुल बाल ॥
पाठसाल

तहां रामपुर के सनाढ्य । सुकुल वशधर द्वै गुनाढ्य ॥
तुलसिदास अरु नन्ददास । पढत करत विद्या विलास ॥
एक पिता मह पौत्र दोउ । चन्द्रहास लघु अपर सोउ ॥
तुलसी आत्माराम पूत । उदर हुलासी के प्रसूत ॥
आतम-

गये दोउ ते अमर लोक । दादी पोतहिं करि सशोक ॥६६॥
ससोक

वसत जोग मारग समीप । विप्रवंश वर दिव्य दीप ॥६७॥
कहत रह्यो सो राम राम । रामोला हू तासु नाम ॥
गौर बरन विद्या निधान । विविध शास्त्र पंडित महान ॥
• सास्त्र

काव्य कला मह सो प्रवीन । सकल दुर्गुनन सों विहीन ॥
सब विधि रत्नावली जोग । अति सुशील तनु रहित रोग ॥
सुसील

सुनि एती प्रिय मीत बात । गे नृसिंह गुरु ढिग सिहात ॥
पाठक तिन कहं करि प्रनाम । देष्यो तुलसी मुष ललाम ॥
देख्यो मुख

गुरु मुष परिचय तासु पाय । गोत गाम कुल विधि मिलाय ॥
मुख

चरि दीनों पुनि वाग दान। मुदित भये मन मद महान ॥
पीत पत्रिका लगन रीति। करी सबहि ज्स वश नीति ॥७६॥
शुभ दिन पुनि आइ बरात। दोऊ पच्छ न फूले समात ॥
कीन जथाविधि विधि विवाह। दीनबन्धु भरि उर उछाह ॥७७॥
तुलसी वर में सह विधान। रत्नावलि को दयो दान ॥
रत्नावलि गइ तुलसी गेह। तासु बढ्यो पति पदनु नेह ॥
रत्नावलि सी नारि पाई। तुलसी घर सुख गयो छाई ॥
सुख

पितामही बहु सुख उछाइ। पोषे तुलसी उर लगाई ॥
दंपति रंथा सों सिहाइ। सुख गई कुछ दिन बिताइ।'
नन्ददास अरु चन्द हास। रहहि रामपुर मातु पास ॥
दंपति वसि वाराह धाम। लहत मोद आठोहु याम ॥
कबहु करत विविध विनोद। लहत शब्द चातुरि प्रमोद ॥
सनद

संध्यावदन आदि कर्म। करत सकल नित यही धर्म ॥
जपत राम मूरति सनेह। उभय सधि पूजत सनेह ॥८८॥
सु—

वात वात श्रीराम राम। तुलसी मुख लागहि ललाम ॥८६॥
मुख

भक्तनु घर वांचहिं पुरान। तुलसी लहहिं धन और मान ॥
तुलसि

रत्नावलि तेहि चंद्र चकोरि। मधुर वचन बोलति निहोरि ॥
चख

कबहु न अप्रिय कहति बात। कबहु न सो पति सों रिसात।
भोजनि नित पति पाय पीठ। नितहि न्हवावति प्रेम दीठि।
पांय

पति वियोग नहिं छिन सुहात। जात कहू मुष उतरि जात ॥
मुख

कहति सोइ जो पतिहि चहइ। पति सेवन मन अति उछहइ ॥
कबहु जातु जो पति रिसाइ। पायनु परि लेवइ मनाइ।
हू खिभाइ पायनु लेवहि मनाय ॥
जौलौं पति मोजन न पाइ। तौलौं आपुहु कछु न षाइ ॥
जौलौं खा
जो मन सोई वचन कर्म। पतिहि लुकावत कछु न मर्म ॥
पतिहिं
तारापति नामक सुपून। भयो तासु बुधि बल अकूत ॥६६॥
सपूत
गयो दैव गति स्वर्ग धाम। बिलपति रत्नावली बाम ॥१००॥
सुरग
भयो पुत्र को अधिक सोच। धरी धीर पति मुष विलोक ॥
मुख
तुलसी हू बहु करत प्यार। रत्नावलि भइ हृदय हार ॥
ताहि न चाहत आंषि ओट। ओट होति हिय लगति चोट ॥
आंखि
सिथिल परी प्रभु भजन रीति। बाढ़ी तिय महं अधिक प्रीति ॥
में
व्याह भये दस पाँच वर्ष। इक दुष तजि बीते सहर्ष ॥
दुख
राषी बाँधन एक बार। भ्राता संग हिए हरष धार ॥
राखी हरख
पति आयसु गहि सीस नाइ। गई माइ के सदन धाइ ॥
नाय धाय

इत तुलसी करति नबाह । राम सुमरि उर अरध नाह ॥

तुलसी ग्यारह दिन बिताइ । आय तिनहि न घर सुहाइ

तिनहिं

रत्नावलि मन लगन चाह । चले ससुर घर भरि उमाह ॥

लखन उछाह

होनहार बलवान होत । जस भवितव्य तस ज्ञान होत ॥

ग्यान

नारि प्रेम मद गय मोह । चले समय को ज्ञान खोह ॥

खोइ

बीति गई तब अरध राति । नभ घन चपला चमकि जाति ॥

बहति जोर सुरधुनी धार । ताहि पैरि करि गय पार ॥

दीनबन्धु की पौरि जाय । टेरि दये घर के जगाय ॥

पौंरि

द्वारहि आये ततहिं काल । तुलसिहि लखि भे चकित श्याल ।

द्वारहिं ततहि लखि स्याल

करि प्रनाम कहि कुशल तात । हाँ कहि तुलसी मन लजात ॥

कुसल

करि आदर समयानुसार । पौंढाये करि बहु दुलारि ॥

पौढ़ाये

रत्नावलि एकान्त पाइ । पति दर्शन हित गई धाइ ॥

पाय धाय

पति पद परसे करि प्रणाम । चरण दबावन लागि वाम ॥

प्रनाम बाम

बूझी किमि आए अबेरि । गरजत घन गाढ़ी अधेरि ॥

आय

कैसे उतरे गगधार । मेरे जिय अचरज अपार ॥
जिय

इमि सुनि बोले तुलसिदास । तुमहिं मिलन अति उर उलास ॥
तुम बिन परत न मोहि चैन । भई शान्ति तब लखत नैन ॥१२४॥
सान्ति

तब सुप्रेम मइं गग धार । सुमुखि सहज ही भयो पार ॥१२५॥
में सुमुखि

कहि रत्नावली प्राननाथ । धन्य आपको मिल्यो साथ ॥
रतना आपुको

मेरे हित बहु दुख उठाइ । दरस दयो तुम नाथ आइ ॥
दुख उठाय आय

मो सम को बड़ भागि नारि । मोसम को तिय पतिहि प्यारि ॥
सीम प्रेम तुम करी पार । नाथ प्रेम के तुम अधार
मम सुप्रेम निज हिये धार । उतरे प्रिय सुर सरित पार ॥
जग अधार पद प्रेम धार । जातु मनुज भव उदधि पार ॥
जात

प्रेम हीन जीवन असार । नाथ प्रेम महिमा अपार ॥
सुनि रत्नावलि मव्य बानि । भव विषयनु सों भई गलानि ॥
रतनावलि ग्लानि

भये चित्र सम तुलसिदास । कछु जनु सोचत भयो उदास ॥
रतनावलि पति नींद जानि । गई परसि पद जोरि पानि ॥
नीद

दैव मिलन को करयो अन्त । कहूं नारि अरु कहूं कन्त ॥१३६॥
जहां योग तह है वियोग । घरत भोग सो लहत सोग ॥१३७॥
काल कर्म गति है विचित्र । बनत शत्रु जो रहे मित्र ॥
शत्रु

आतु करत नर कछु विचारि । कालि होत कछु होनहार ।।
राम लैन कह योगराज । बन गे तजि सो राज साज ।।
जो तुलसिहि प्रानन पियारि । सो रत्नावलि दइ बिसारि ।।
रतनावलि
यह जन सोवत करि प्रमान । अन्तर किये तुलसी पयान ।।
रैनि गई उदयो प्रभात । तुलसी काहु कहु लखात ।।
लखात
ढूंढ़ि फिरे सब ग्राम माहिं । सबनु कही हम लखे नाहिं ।।
लखे नाहिं
जह जह तुलसी मिलन आस । मिले न तहु सब भे उदास ।।
पति बिनु रत्नावली दीन । बिलपति जल बिनु जथा मीन ।।
रतनावली
बहु दिन त्यागो पान पान । रुदन करयो धरि नाथ ध्यान ।।
खान
बीते बहु दिन पाख मास । भई न तुलसी मिलन आस ।।
पाख
तजि दीने सब ही सिंगार । करति एक बारहि अहार ।।१४६।।
करत
उत्तम भोजन बसन त्यागि । सुलगति प्रिय पति विरह आग ।।
तुलसि पादुका उर लगाइ । सोवति तून आसन बिछाय ।।१५०।।
कबहु रामपुर बसति जाइ । कबहु बदरिका रहति आइ ।।
तिन चान्द्रायन बरत धार । पूरन कीने विपुल बार ।।
धारे औरहु व्रत अपार । सती धरम निबह्यो सम्हार ।।
मन वच करमन रही पूत । करयो भजन प्रभु तिन अकूत ।।
जासु पतिव्रत दृढ़ निहारि । भई अनेकन सती नारि ।।

देती नारिन सीन नीक। रही दिखावति धरम लीक॥
सील

पति वियोग मह साधि जोग। त्यागि दये सब जगत भोग॥
में

चरन सदन रज जासु कोइ। धरत देह रज रहित होइ॥ *
भू शर रस भू वरस पूरि। स्वर्ग गई लहि सुजस भूरि॥
सर सुरग

धनि रत्नावलि मात धन्य। जेहि सम अब कह जगत अन्य॥
नवकर वसु भू निकमीय। शूकर तीरथ वदनीय॥
निकरमीय सूकर

साध्वी रत्नावलि व्हानि। रदन मुवा ज्स परी जानि॥
निरधन मुन

द्विज मुरलीधर चतुर्वेद। लिखि प्रगटी जगहित सभेद ॥१६३॥
लिखि

इति श्री रतनावली सपूरणम् लिपितम् श्रीमुरलीधर चतुर वेदि शिष्येन रमवलभ मिश्रेन सोरों मध्ये सवत् १८६४॥ मारगशिर मासे शुक्लपक्षे ६ शनिवासरे। कृष्णायनम्॥ शुभम् शुभम् शुभम् शुभम् शुभम् शुभम् भूयात्

इति श्री रत्नावली चरित सपूर्णम् शुभम्। सम्वत् १८२६ श्रावण शुक्ला १ प्रतिपदायाम् शुक्र वासरे लिपितम् चतुर्वेदी मुरलीधरेण सोरों क्षेत्रे। शुभमस्तु॥

छप्पै एक पितामह सदन दोउ जनमे बुधि रासी।
दोऊ एकहि गुरु नृसिंह बुध अन्ते वासी।
तुलसिदास नन्ददास मते है मुरली धारे।

* यह पक्ति रामवल्लभ मिश्र की प्रति म नहीं है।

एक भजे सियराम एक घनश्याम पुकारे।
एक बसे सो रामपुर एक श्यामपुर मह रहे।
एक राम गाथा लिखी एक भागवत पद कहे ॥१॥
एक पिता के पूत दोउ बलराम मुरारी।
मुरलि चक्र इक धर्यो एक हल मूशल धारी।
नीलांबर तनु एक एक पीताम्बर धारो।
दोउन चरित उदार रह्यो मत न्यारो न्यारो।
इमि कर्तव्य रुचि मत प्रकृति जन जन कीन समान जग।
जनमि एक हू गृह महँ निज स्वभाव अनुरूप मग ॥२॥*
जय जय आदि वराह क्षेत्र तप भूमि सुहावनि।
क्षेत्र
बहति जहां सुर सरित दरिद दुरितादि बहावनि।
लसत विविध सुर सदन भक्त जन जीय जुरावन।
सकल अमगल हरन करन मगल मुनि भावन।
विप्र वृन्द जोगी जती बरनत वेद पुरान जह।
मुरलीधर अस पाइयत दूजो जग मह धाम कह ॥३॥१॥
उभय सधि मह देव आरती भक्त उतारत।
उभै मे
घटा दुदुभि शख झांझ धुनि मोद पसारत।
सख
भक्त भक्ति मद मत्त तहां प्रभु को जस गावत।
मृदँग मजु मजीर तार झनकार सुहावत।
मृदग

---

* उपरोक्त दोनों छप्पै मिश्रजी की प्रति मे नहीं है। रा० भा०

जय गंगा वाराह की पावन धुनि कान परत।
कानन
मीर हरिपदी तीर द्विज मुरलीधर संध्या करत ॥४॥२॥
विपुल सिद्ध मुनि वृद्ध सन्त जन वृन्द बसत जहं।
वृद
श्री हरि पदनु प्रसूत हरि पदी लोल लसत जहं।
पदन
तासु कूल सोपान सेनि नयनाभिराम जह।
भक्ति ज्ञान वैराग पुंज वाराह धाम तहं।
बहु पुन्यन सों पाइयत दरस क्षेत्र वाराह महि।
क्षेत्र
केतिक पुन्यनु फल लह्यो द्विज मुरली जह जनम गहि ॥५॥
पुन्यन
सुत दुत बीते असी लगे मुरली इक्यासी।
बसत सौकरव आस कटैं बंधन चौरासी।
दीठि भई अब मंद दुरत सिर कंपत कर कर
तदपि न मानन लिपन कहत मन कविता सुदर।
सो अब कस बानक बनहि मन बहलावन करि रहे।
जिमि जन विन दसनन चनक पीसि पीसि मुख भरि रहे ॥६॥ *

॥ कृष्णदास कृत वंशावली ॥

पेत वराह समीप शुचि गाम रामपुर एक।
तह पण्डित मंडित बसत सुकुल वस सविवेक ॥१॥
पण्डित नारायण सुकुल तासु पुरष परधान
धाम्यो सत्य सनाढ्यपद है तप वेद निधान ॥२॥

---

* यहाँ रामवल्लभ मिश्र की प्रति समाप्त होती है। रा० मा०

शस्त्र शास्त्र विद्या कुशल भे गुरु द्रोण समान।
ब्रह्म रंध्र निज भेदि जिन पायो पद निर्वान ॥३॥
तेहि सुत गुरु ज्ञानी भये भक्त पिता अनुहारि।
पंडित श्रीधर शेषधर सनक सनातन चारि ॥४॥
भये सनातन देव सुत पंडित परमानन्द।
व्यास सरिस वक्ता तनय जासु सच्चिदानंद ॥५॥
तेहि सुत आत्माराम बुध निगमागम परबीन।
लघु सुत जीवाराम भे पंडित धरम धुरीन ॥६॥
पुत्र आत्माराम के पंडित तुलसीदास।
तिमि सुत जीवाराम के नन्ददास चँदहास ॥७॥
मथि मथि बेद पुरान सब काव्य शास्त्र इतिहास।
रामचरित मानस रच्यो पंडित तुलसीदास ॥८॥
वल्लभ कुल वल्लभ भये तासु अनुज नँददास।
धरि वल्लभ आचार जिन रच्यो भागवत रास ॥९॥
नन्ददास सुत हों भयो कृष्णदास मतिमन्द।
चँदहास बुध सुत अहै चिरजीवी ब्रजचन्द ॥१०॥

॥ इति कृष्णदास वंशावली ॥

वर्षके वार और इष्ट के घटीपल निकासिवे की क्रिया

छप्पै ॥ गत वर्षनु धरि तीन ठौर करि प्रथम सवाए।
दूजे कीने अरध तृतिय मुरली ड्योंढाए।
क्रमसों जोरे जनम वार तहँ इष्ट घटी पल।
भये साठि त्यहि एक मानि दए जोरि पूर्व यल।
प्रथम अंक मँह सात को भाग दयो रह शेष जो।
जानि वरष को वार सो गनहु घटी पल अपर सो ॥ १ ॥

द्वितीय विधि ॥ १००७ ॥

सात अधिक इक सहस घुरा धरि गत वर्ष नु गुनि ।
तहँ लहि मुरली भाग आठ सौ से लब्धनु पुनि ।
गुनहु साठि सौं शेष आठ सौ से लब्धनु लहि ।
शेष साठि सौं गुनहु भाग दै पुनिहु लब्ध लहि ।
क्रमसौं तीनिहु लब्ध मह जनम वार घटि पल जुर ।
वार घरी पल वरष के या विधि गनतन मन फुरै ॥ २ ॥

वर्ष की तिथि की क्रिया ॥

गत वर्षनु कह गुनहु ३४३ तीन सौ तेतालिस सौं ।
ता मह मुरली भाग देउ पुनि तुम इकतिस ३१ सौं ।
लब्धनु मह तिथि जोरि जनम की भाग तीस ३० पुनि ।
देउ रहै जो शेष वरष तिथि सोइ कही मुनि ।
या विधि सौं तिथि वरष की होति जनम तिथि सौं प्रगट ।
जनम लगन सौं वरष की लगन वनै सोउ धरहु घट ॥ ३ ॥

वर्ष लगन की विधि ॥

इकत्तीस सौं गुनौं वर्ष गत की सख्या कह ।
ता मह दस को देउ भाग गहि लब्ध धरौ तह ।
लब्धन मह पुनि जनम लगन के अंकनु जोरौ ।
तह बारह को देउ भाग लहि लब्धनु छोरौ ।
शेषहि गिनि पुनि मेष सौं होइ प्रगट हायन लगन ।
तसहि लिख्यो जस उपदिस्यो मोहि गुरु रूरनायतन ॥ ४ ॥

अथ शुभ सम्वत् १८२६ मित वर्षे वैक्रम कार्तिक शुक्ला १० दशम्याम् बुधवासरे घ० ४६-२८ शतभिषा मे ४६ । ४३ याम् ४२ । १५ । तुलार्क गतांशा २२ इष्ट लग्नोदय मनु० मुरलीधरस्य ८९ मित हायने प्रवेश गताब्दा ८० ।

वर्ष ल० चक्रम्
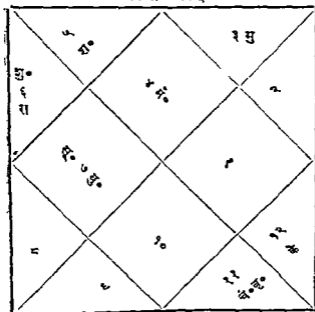
पञ्च वर्गी ।

ज०	व०	मु०	त्रि	सं०
७	४	३	४	११
स्वा०	स्वा०	स्वा०	स्वा०	स्वा०
शु०	चं०	बु०	मं०	श०

शुभम्

चन्द्र स्पष्ट नि० ॥ सिद्ध् ६० म
मजात ममोगोद्धृतं ६० तत्वतर्क
मधिम्मेषु युक्त द्वि निघ्नम् ॥
४ नवाप्त शशीमाण पूर्वरतु मुवितः
खखा अष्ट वेदाः ४८०००
ममोगेन मवाः ॥ १ ॥

रत्नावली की रचना (आलोचना)

भाषा की दृष्टि से रत्नावली के दोहे बहुत मनोहर हैं। ब्रजभाषा स्पष्ट है; न तो संस्कृत के तत्सम शब्दों की भरमार है, और न शब्दों की विकृत तोड़ मरोड़ ही। तत्सम और तद्भव दोनों प्रकार के शब्द प्रायः बराबर की संख्या में हैं। कुछ देशीय और प्रांतीय शब्द भी हैं, किंतु बस। रत्नावली ने 'पुनीत' और 'पूत', दोनों शब्दों का प्रयोग किया है, दूसरा तो शुद्ध संस्कृत-शब्द है, और पहला सैकड़ों वर्ष के प्रयोग से अब संस्कृत बन रहा है। रत्नावली ने केवल दो विदेशी शब्दों—तुपक और चकमक—का प्रयोग किया है; उसे विदेशी शब्दों के व्यवहार का कम अवसर प्राप्त होगा। उसका जन्म धर्म-प्राण हिंदू-कुल में हुआ था, और उसके पिता की आजीविका भी धार्मिक थी। तिस पर सोरों, तीर्थ होने के कारण, हिंदुओं की बस्ती थी और है। यद्यपि तुलसीदास का मकान गलकटियों (कसाइयों) के पास था, तथापि कदाचित् रत्नावली को अड़ोस पड़ोस की स्त्रियों के

टिप्पणी—प्रधान पाठ मोटे अक्षरों में मुरलीधर चतुर्वेद की, और पाठान्तर छोटे अक्षरों में उनके शिष्य रामवल्लभ मिश्र की, हस्तलिखित प्रति के अनुसार है।

ससंग मे आना रुचिकर न हुआ होगा। यह भी निश्चय नहीं कहा जा सकता कि उन दिनों वहाँ के अपठित कसाई और उनकी स्त्रियाँ हिंदू-स्थान म फारसी और अरबी शब्दों का प्रयोग करते होंगे।

रत्नावली न रीति-काल क कवियों की भाँति अपने कवित-कौशल को प्रदर्शित करने का प्रयत्न नहीं किया। किंतु उसके वाक्य व्याकरण सम्मत है। हाँ, कभी-कभी अनावश्यक क्रियाओं को छोड़ दिया है, जिनम भाव स्पष्टता में कोई अतर नहीं पड़ता, प्रत्युत पिष्ट पेषण और द्विरुक्ति-दोषका निवारण हो गया है। इसने गागरमें सागर भरने का प्रयत्न किया, और कविता का आदर्श, जिसका उसने यथाशक्ति स्वय पालन किया, इस प्रकार है—

रतन भाव भरि भूरि जिमि कवि पद भरत समास,
तिमि उचरहु लघु पद करहि अरथ गभीर विकास।

रचना के लिए इसने दोहा पसद किया, जो बहुत छोटा छद है। इसी मे इसने अपने गूढ़, गभीर और पुष्कल विचार भर दिए। दोहा लिखने मे यह बिहारी और तुलसी के समकक्ष है, और रहीम तथा वृद से बढ़कर। इसके दोहों में च्युति-दोष का अभाव-सा है, यदि कहीं है भी, तो वह पूर्णबिंदु और चद्रबिंदु के अव्यवस्थित प्रयोग से, जो उन दिनों अधिक ध्यान का विषय न था। यतिभग का भी अभाव है। अतएव कहा जा सकता है कि रत्नावली का दोह पर अधिकार था।

युक्ति और कारण-निर्देश के समय रत्नावली निजी अनुभव और आप्त वाक्य का आधार लेती है, प्रधानत पहले प्रकार का। उसकी तर्क शैली ओजस्विनी और विश्वासोत्पादनी है, उसकी रचना शैली ललित, किन्तु विशद, लोक-प्रिय, किन्तु उन्नत है। रत्नावली के दोहों मे सयोग और विप्रलम्भ शृगार एव कहीं कहीं शांत रस भी विद्यमान है। इसके दोहोंमें अलकारों

की कमी नहीं। अनेक स्थलों पर अनुप्रास, यमक और श्लेष मिलते हैं। विषादन, विनोक्ति, स्मरण, विरोध, दृष्टांत, अर्थान्तरन्यास, उदाहरण, पदार्थ वृत्ति दीपक, रूपकातिशयोक्ति, पर्यायोक्ति, उपमा और रूपक का प्रचुर प्रयोग हुआ है। विस्तार भय से इन अलङ्कारों के उदाहरण अभीष्ट नहीं। हाँ, उसकी उत्कृष्ट कल्पना के कतिपय उदाहरणों से रत्नावली के कवित्व का आभास अवश्य मिल जायगा।

दीनबंधु कर घर पली, दीनबंधु कर छाँह,
तौउ भई हौं दीन अति, पति त्यागी मो बाँह।

पदार्थ-वृत्ति दीपक, विरोधाभास और यमक का अच्छा उदाहरण है।

सनक सनातन कुल सुकुल, गेह भयो पिय स्याम,
रतनावलि आभा गई, तुम बिन बन सम गाम।

इसमें 'सुकुल' और 'स्याम' के कारण विरोधाभास प्रतीत होता है। सुकुल शब्द के दो अर्थ हैं—अच्छा कुल और श्वेत।

जासु दलहि लहि हरषि हरि हरत भगत भव रोग,
तासु दास पद-दासि है रतन लहत कत सोग।

पर्यायोक्ति का अच्छा उदाहरण है। रत्नावली अपने पति (तुलसीदास) का नाम लेने में संकोच करती है, क्योंकि शास्त्रों के अनुसार पत्नी को पति का नाम लेना उचित नहीं, फिर भी वह अपने पति का नाम व्यक्त कर रही है।

राम जासु हिरदे बसत, सो पिय मम उर धाम,
एक बसत दोऊ बसैं, रतन भाग अभिराम।

राम तुलसीदास के और तुलसीदास रत्नावली के हृदय में रहते हैं, अत इस पुण्यशीला को पतिदेव एव भगवान् दोनों का ही सान्निध्य प्राप्त

है। कैसी सुन्दर कल्पना है!

पति सेवति रतनावली सकुची धरि मन लाज;
सकुच गई कछु, पिय गए सज्यो न सेवा साज।

संकोच की परा काष्ठा है, दोहे के शब्दों में भी संकोच प्रतिबिंबित है।

कर गहि लाए नाथ, तुम वादन बहु बजवाय;
पदहु न परसाए तजत रतनावलिहि जगाय।

विवाह के समय तो तुलसीदास ने रत्नावली का हाथ पकड़ने के लिए स्वयं अपना हाथ बढ़ाया, किन्तु घर छोड़ते समय पैर छुआने में भी संकोच किया।

मलिया सींची विविध विधि रतन लता करि प्यार;
नहिं बसंत-आगम भयो, तब लगि परयो तुसार।

अप्रत्यक्ष रूप से वह अपने पिता की तुलना उद्यान के माली से, अपनी वेल से, पति-वियोग की पाले से और भविष्य-सुख की वसन्त से करती है।

तिय-जीवन तेमन-सरिस, तौलौं कछुक रुचै न;
पिय-सनेह-रस रामरस जौलौं रतन मिलै न।

बड़ी सुन्दर उपमा है। जीवन में पति-प्रेम का वही स्थान है, जो शाक में नमक का।

रतन प्रेम डंडी तुला, पला जुरे इकसार;
एक बाट • पीड़ा सहै, एक गेह – संभार।

प्रेम की तुलना तराजू की डंडी से और पति-पत्नी की पलड़ों से दी है। जिस प्रकार पलड़े डंडी से जुड़े होते है, उसी प्रकार पति-पत्नी का संयोग प्रेम द्वारा होता है। एक पलड़े में बाट रक्खा जाता है, दूसरे में घर की कोई

वस्तु। तुलसीदास यदि मार्ग का कष्ट सहन कर रहे हैं, तो रत्नावली घर के झंझटों में व्यस्त है। बाट और गेह-समार के श्लेष सुंदर हैं।

नर-अधार बिनु नारि तिमि, जिमि स्वर बिनु इल होत;
करनधार बिनु उदधि जिमि, रतनावलि गति पोत।
भल इकलो रहिबो रतन, भलो न खल-सहवास;
जिमि तरु दीमक सँग लहै, आपन रूप बिनास।
सवरन स्वर लघु है मिलत, दीरघ रूप लखात;
रतनावलि असवरन है मिलि निज रूप नसात।

पति-पत्नी-समीकरण, कुरंग, दोष एवं सम-संग की महिमा के ये अच्छे उदाहरण हैं।

उदय भाग-रवि मीत बहु, छाया बड़ी लखात;
अस्त भए निज मीत कहँ, तनु छाया तजि जात।

बनावटी मित्र का कैसा सुन्दर लक्षण है! जब सूर्य उदित होकर ऊपर चढ़ने लगता है, तो शरीर की छाया-बड़ी हो जाती है; किंतु सूर्य अस्त होने पर यह छाया विलीन हो जाती है; इसी प्रकार भाग्य के चेतने पर मित्र-मंडल बड़ा हो जाता है, और बुरे दिन आने पर मित्रों का तो कहना क्या, अपना शरीर भी छोड़कर चला जाता है। सूर्य की उपमा भाग्य से दी है, छाया की मित्र-मंडल से। कितनी उत्कृष्ट सूक्ति है।

अभी तक रत्नावली के २०१ दोहों का पता चला है। इनमें से ८८ दोहों में उसने अपना नाम 'रत्नावली' अथवा 'रतनावलि' और ८२ दोहों में 'रतन' प्रकट किया है। केवल ३१ दोहे ऐसे हैं, जिसमें उसने अपना नाम नहीं दिया। कभी-कभी उसने अपने विषय में भी उल्लेख किया है। देखिए, किस कौशल से वह अपने पति का नाम प्रकट करती है—

जासु दलहिं रुहिं हरषि हरि हरत भगत भव-रोग,
तासु दास पद दासि ह्वै रतन करत लहत सोग।

रत्नावली अपने पति की राम भक्ति की ओर इंगित करती है—

राम जासु हिरदै बसत, सो पिय मम उर धाम,
एक बसत दोऊ बसैं, रतन भाग अभिराम।

वह अपने पिता दीनबंधु और अपने पति के सुकुल वंश का इस प्रकार स्मरण करती है—

दीनबंधु कर घर पली, दीन बंधु कर छाँह,
तोउ भई हौं दीन अति, पति त्यागी मो बाँह।
सनक सनातन कुल सुकुल, गेह भयो पिय स्याम,
रतनावलि आभा गई, तुम बिन बन-सम गाम।

रतनावलि बदरिया में पैदा हुई थी, और उसके पतिदेव शूकर क्षेत्र में। वह लिखती है—

जनमि बदरिका कुल भई हौं पिय कंटक रूप,
बिंधत दुखित ह्वै चल गए रत्नावलि-उर भूप।
हाइ बदरिका बन भई, हौं बामा विष बेलि,
रत्नावलि हौं नाम की, रसहिं दयो विष मेलि।
प्रभु बराह पद पूत महि, जनममही पुनि एहि
सुरसरि तट महिं त्याग अस, गए धाम पिय केहि।
तीरथ आदि बराह जे, तीरथ सुरसरि धार,
याही तीरथ आइ पिय भजउ जगत करतार।

रत्नावली का विवाह बाजे गाजे से १२ वर्ष की, गौना १६ वर्ष की और पति वियोग २७ वर्ष की उम्र में हुआ था—

कर गहि लाए नाथ तुम, बादन बहु बजवाइ,

पदहु न परसाए तजत रतनावलिहि जगाय।
सोवत सों पिय जगि गए, जगिहु गई हौं सोइ;
कबहुँ कि अब रतनावलिहि आइ जगावहि मोइ।
बैस बारहीं कर गह्यो, सोरहिं गवन कराइ;
सत्ताइस लागत करी नाथ रतन असहाइ।

सं० १६०४ वि० रत्नावली के लिये बड़ा अशुभ सिद्ध हुआ; उस वर्ष उसका पति से वियोग और उसकी माता का देहावसान हुआ—

सागर पारस सखी रतन, संवत मो दुखदाइ;
पिय-वियोग, जननी-मरन, करन न भूल्यो जाइ।

क्या रत्नावली पति-वियोग के लिये दोषी थी ? नहीं, वह निर्दोष थी; वह स्पष्ट कहती है—

हौं न नाथ, अपराधिनी, तऊ छमा कर देउ;
चरनन-दासी जानि निज बेग मोर सुधि लेउ।

पति-वियोग का क्या कारण था ? यही न कि उसने दंपति प्रेम के समय असावधानी से भगवत् प्रेम की अप्रासंगिक चर्चा छेड़ दी थी, जिससे तुलसीदास के प्रसुप्त संस्कार अकस्मात् जाग्रत् हो उठे। वह कहती है—

सुमहु वचन अप्रकृत गरल रतन प्रकृत के साथ;
जो मो कहँ पति-प्रेम सँग, ईस-प्रेम की गाथ।
हाइ सहज ही हौं कही, लह्यो बोध हिरदेस;
हौं रत्नावलि जचि गई पिय हिय काच विसेस।

वास्तव में अपराधिनी न होते हुए भी पति-परायणा रत्नावली अपने को अपराधिनी ही समझती है—

छमा करहु अपराध सब अपराधिनि के आय;
बुरी-भली हौं आपकी तजउ न, लेउ निभाय।

रत्नावली क्या प्रतिज्ञा करती है। वह कहती है कि यदि उसके पति लौट आएँगे, तो वह उन्हें कभी इस बात का उराहना न देगी कि वे उसे छोड़कर क्यों चले गये थे।

> नाथ, रहौंगी मौन हों, धारहु पिय जिय तोष;
> कबहुँ न दऊँ उराहनो, दऊँ न कबहूँ दोष।

उसका पति-वियोग अति तीव्र है। उसके शब्दों में पश्चात्ताप की पराकाष्ठा है। वह अपनी दीन-हीन दशा का कितना भाव-पूर्ण चित्रण करती है—

> असन, बसन, भूषन, भवन, पिय बिन कछु न सुहाइ;
> भार-रूप जीवन भयो, छिन-छिन जिय अकुलाइ।

पति-वियोग में पति की खड़ाऊँ ही उसके प्राणाधार हैं—

> पति-पद सेवा सों रहत रतन पादुका सेइ;
> गिरत नाव सों रज्जु तेहि सरित पार करि देइ।

रत्नावली इस बात का उल्लेख करती है कि नंददास गोस्वामीजी के छोटे भाई थे, और उन्होंने अपने भाई का सदेशा लाकर अपनी भाभी को दिया—

> मोहिं दीनो संदेश पिय अनुज नंद के हाथ;
> रतन समुझि जनि पृथक मोहि जो सुमिरनि रघुनाथ।

इधर रत्नावली पति-वियोग में घर के झंझटों का अनुभव कर रही थी, और यह भी कल्पना करके दुःख पा रही थी कि उधर उसके पतिदेव मार्ग के दुःखों का अनुभव कर रहे होंगे। उसकी कल्पना कितनी उत्कृष्ट है, और कविता कितनी श्लाघ्य—

> रतन प्रेम डंडी तुला, पला जुरे इकसार;
> *एक बाट पीड़ा सहै, एक गेह-संभार।*

दर्शनाभिलाषा इतनी तीव्र है कि निराशामय हो गई है—

कहाँ हमारे भाग अस, जो पिय दरसन देहँ,
वादि पाछिली दीठि सों एक बार लखि लेहँ।

पति-भक्ति के लिए रत्नावली की प्रार्थना अपने पति के इष्ट देव के अनुराग में रंजित होकर कितनी प्रशस्त हो गई है—

जनम-जनम पिय पद-पदम रहै राम अनुराग,
पिय बिछुरन होइ न कबहुँ, पावहुँ अचल सुहाग।

फिर भी मलाल बना ही रहता है—

पति सेवति रत्नावली सकुची धरि मन लाज,
सकुच गई कछु, पिय गए सज्यो न सेवा साज।

अनेक दोहों में रत्नावली ने स्त्रियों को नीति पूर्ण उपदेश दिया है, जिनमें पति-महिमा, पति के प्रति सद्भाव तथा सद्व्यवहार का उल्लेख है—

नेह सील गुन वित रहित, कामी हूँ पति होय,
रतनावलि भलि नारि हित पुज्जदेव-सम सोय।
पति गति, पति वित, मीत पति, पति गुरु, सुर भरतार,
रतनावलि सरबस पतिहि, बधु बध जग सार।

रत्नावली कहती है कि स्त्री को अपने युवा पिता, दामाद, ससुर, देवर और भाई से भी एकांत में बात नहीं करनी चाहिए—

जुवक जनक, जामात, सुत, ससुर, दिवर और भ्रात,
इनहूँ को एकात बहु कामिनि, सुन जनि बात।
घी को घट है कामिनी, पुरुष तपत अगार,
रतनावलि घी अगिनि को उचित न सग बिचार।

रत्नावली के मत में सुनारी (सुतिय) वही है, जो घर का सब काम—

-काज मन लगाकर स्वच्छतापूर्वक, प्रमाद रहित होकर करती है—

तन, मन, अन, भाजन, बसन, भोजन, भवन पुनीत—
जो राखति रतनावली, तेहि गावत सुर गीत।
धन जोरति, मितव्यय धरति घर की वस्तु सुधारि,
सुपकरम आचार कुल पति रत रतन सुनारि।
पति बरतन जिहि वस्तु नित, तेहि धर रतन सँभारि;
समय समय नित दै पियहि आलस मदहि बिसारि।
रतनावलि सबसों प्रथम जगि उठकर गृह-काज;
सबनु सुवाइहि सोय तिय, घरि सँभारि गृह-साज।

रत्नावली का उपदेश है कि घर की बातें, धन, दवाई आदि की चर्चा यों ही अड़ोसी पड़ोसियों से नहीं करते रहना चाहिए—

सदन भेद, तन धन रतन, सुरति, सुभेषज, अन्न;
दान, धरम, उपकार तिमि राखि बधू परछन्न।

सुहेमन को चाहिए कि वह अनजान व्यक्तियों और फेरीवालों से सतर्क रहे; नौकर-चाकरों से कम बोले, साथ ही उन्हें उज्ज्वल वस्त्रादि देकर प्रसन्न भी रखे—

अनजाने जन की रतन कबहुँ न करि बिसवास;
वस्तु न ताकी खाइ कछु, देइ न गेह निवास।
बनिक, फेरुआ, भिच्छुकन जनि बहु पतिआय,
रतनावलि जेइ रूप धरि ठग जन ठगति भ्रमाय।
करमचारि जन सों भली जथाकाज बतरानि;
बहु बतान रतनावली, सुनि अकाज की खानि।
घरि धुवाय रतनावली, निज पिय पाट पुरान;
जथासमय जिन दै करहु करमचारि-सनमान।

बहुत बोलना, हँसना, घर-घर घूमना, चोरी, लोभ झूठ, व्यभिचार, जुआ आदि दोष हैं। मिष्ट भाषण के विषय में बड़ी सुन्दर कल्पना है—

रतनावलि मुख वचन हूँ इक-सुख-दुख को मूल;
सुख सरसावत वचन मधु, कटु उपजावत सूल।
मधुर असन बनि देउ कोउ, बोलौ मधुरे बैन;
मधु भोजन छिन देत सुख, बैन जनम भरि चैन।
रतनावलि काँटो लग्यो, बैदनु दयो निकारि;
वचन लग्यो निकस्यो न कहुँ, उन डारो हिय फारि।

इनके अतिरिक्त और भी नीति-पूर्ण विषय हैं, जो वास्तव में बड़े मधुर हैं।

रत्नावली स्त्री का आदर्श इस प्रकार उपस्थित करती है—

देनि मंत्र सुठि मीत-सम, नेहिनि मातु-समान;
सेवत पति दासी-सरिस रतन सुतिय घनि जान।
तू गृह-श्री ही, धी रतन, तू तिय सकति महान;
तू अबला सबला बने, धरि उर सती विधान।

रत्नावली शिक्षा, विशेषतः स्त्री-शिक्षा, के विषय में अपने विचार रखती है। स्त्री का गुरु पति है। हाँ, वह माता-पिता और बड़े भाई से भी पढ़ सकती है, सो भी हित की व्यर्थ की बातें नहीं—

चतुर बरन को विप्र गुरु, अतिथि सबन गुरु जान;
रतनावलि तिमि नारि को पति गुरु कह्यो प्रमान।
जननि, जनक, भ्राता बड़ो, होइ जो निज भरतार;
पढ़इ नारि इन चारि सौं, रतन नारि हितसार।

बालकों को बचपन से ही दया, धर्मादि की शिक्षा देनी क्योंकि बचपन में जो आदत पड़ जाती है, वह दृढ़ हो जाती है

बाल बैस ही सों धरो दया, धरम, कुल कानि,
बड़े भए रतनावली, कठिन परैगी बानि।
बारेपन सों मातु-पितु जैसी डारत बानि;
सो न छुटाए पुनि छुटति रतन भएहुँ सयानि।

सच्चे लालन-पालन का उद्देश्य यही है कि बालक छिछोरापन छोड़कर गुरुता ग्रहण करे—

बालहिं लालहु अस रतन, जो न औगुनी होय;
दिन दिन गुन गुरुता गहै, साँचो लालन सोय।

शिक्षा की कसौटी क्या है? अच्छी शिक्षा वही है, जो मनुष्य-मात्र को प्रसन्न और सुखी करे। शिक्षित बालक वही है, जिसे देख-देखकर मनुष्य प्रसन्न हों, और आशीर्वाद दें—

बालहिं सीप सिपाय अस, लपि-लपि लोग सिहायँ;
आसिप दें हरपें रतन, नेह करें पुलकायँ।

सह-शिक्षा की तो बात ही क्या, रत्नावली बालक और बालिकाओं के साथ साथ खेलने को अच्छा नहीं समझती —

लरिकन सँग खेलनि-हँसनि, बैठनि रतन इकंत;
मलिन करन कन्या-चरित, हरन सील वहँ संत।

रत्नावली के दार्शनिक विचार पुष्ट, परिमार्जित और प्रशस्त हैं। यह स्पष्ट है कि वह भाग्यवादिनी है, भाग्य में उसका विश्वास है—

रतन दैव-वस अमृत विप, विप अमिरत बनि जात:
सूधी हू उलटी परै, उलटी सूधी बात।
रतनावलि औरै कछू चहिं [illegible] और;
पाँच पैंड़ आगे चलै, है [illegible] ठौर।

किंतु यह निष्क्रियता का प्रचार नहीं [illegible] आलस्य के

का उपदेश करती है। उसका भाग्यवाद कोई साधारण भाग्यवाद नहीं। सात्विक विचार से भाग्यवाद भले ही ठीक हो, किंतु व्यवहार की दृष्टि से पुरुषार्थ आवश्यक है। दुःखों से भी नहीं डरना चाहिए—

ज्यों ज्यों दुख भोगति तबहिं, दूरि होत सब पाप;
रतनावलि निरमल बनत, जिम सुबरन सहि ताप।

भगवान् बुद्ध की भाँति वह जानती है कि उपभोगों से विषयों की शांति नहीं होती। वह कहती है कि यौवन, शक्ति, प्रभुता, संपत्ति और अविवेक, इनमें से प्रत्येक ही अवगुण को उत्पन्न करता है। यदि ये चारों एकत्र हो जायँ, तो बड़े अनिष्ट-कारक होते हैं—

तरुणाई, धन, देह-बल, बहु दोषन-आगार;
बिनु बिवेक रतनावली, पशु-सम करत विचार।
रतनावलि उपभोग सों, होहु विषय नहिं शांति;
ज्यों ज्यों हवि होमें अनल, त्यों-त्यों बढ़त नितांत।

अतएव इंद्रियों का दमन करना चाहिए। इंद्रियाँ घोड़े के समान हैं। यदि इनको दमन न किया जाय, तो उद्धत घोड़ों की भाँति वे शरीर-रूपी रथ को विनाश के गर्त में पटक दें।

पाँच तुरग तन-रथ जुरे, चपल कुपथ लै जात;
रतनावलि मन-सारथिहि रोकि रुके उत्पात।

रत्नावली ठीक कहती है कि पंचज्ञानेंद्रियों में प्रत्येक इंद्रिय उद्धत होकर अनिष्ट कर सकती है, और इनको काबू में रखने से हित होता है—

मैन, नैन, रसना रतन, करन, नासिका साँच;
एकहि मारत अवश है, स्ववस जिआवत पाँच।

रत्नावली दूसरों के दोष-दर्शन को बुरा बताती है, और चाहती है कि अपने दोषों पर विचारकर आत्मा की उन्नति की जाय। स्वसंस्कार के निमित्त

अच्छे अभ्यासों की आवश्यकता है। बचपन से ही दया-धर्म और कुल-मर्यादा आदि की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। अच्छा बनने में तो समय लगता है, बुरा बनते क्या देर लगती है? सुमेरु पर चढ़ना कठिन है, गिरना सरल। रत्नावली सरल जीवन और उच्च विचार की शिक्षा देती है। सरल जीवन के लिये सत्य, दया और लज्जा की आवश्यकता है। किंतु सत्य कटु नहीं होना चाहिए। सदाचार का सदा उपार्जन करते रहना चाहिए। सदाचार के लिए दया, करुणा, सत्य, लज्जा की तो आवश्यकता होती ही है; किंतु पापों से परहेज़ की भी आवश्यकता है। अतएव मद्य-पान, द्यूत, परगृह-वास, क्रोध, अभिमान, लोभ और दुराचार से बचना चाहिए। इनसे पतन होता है। नारी को बहुत बोलना, हँसना, बात काटना और चुगली करना आदि बातों से दूर रहना चाहिए। कन्या को नृत्य, गान, भूषण, भ्रमण, आलस्य, शृंगार और आगारादि से बचना उचित है। स्त्री के लिए यह आवश्यक है कि वह कुसंग से बचे। जिस प्रकार चिनगारी रुई का ढेर भस्म कर देती है, उसी प्रकार थोड़ी देर का कुसंग भी स्त्री का सतीत्व नष्ट कर देता है। स्त्री-पुरुष का स्वतंत्र प्रसंग हितकर नहीं—

> छनहुँ न कर रतनावली, कुलटा तिय को संग;
> तनिक सुधाकर संग सों पलटति रजनी रंग।

रत्नावली बार-बार कहती है कि अपने पतियों को संतुष्ट रक्खो, उनकी पूजा करो, क्योंकि पति ही पत्नी के लिए अंतिम गति है। वह धन है, मित्र है, गुरु है, और संसारका सार है—

> पति गति, पति वित, मीत पति, पति गुरु, सुर भरतार,
> रतनावलि सरबस पतिहि, बंधु बंध जगसार।

यह बात नहीं कि गुणी पति की ही सेवा की जाय, अवगुणी की सेवा का भी आदेश है—

अंध, पगु, रोगी, बधिर सुतहि न त्यगति माय;
तिमि कुरूप दुरगुन पतिहि रतन न सती विहाय।
कूर, कुटिल, रोगी, ऋनी, दरिद-मद-मति नाह,
पाइन मन अनपाइ तिय, सती करति निरवाह।

तो क्या पत्नी दुर्गुणी पति के अत्याचारों, कुकर्मों को देखती रहे, और कष्ट सहन करती रहे? रत्नावली एक युक्ति बताती है—

पतिहि कुदीठिहि लखि रतन, जनि दुरवचन उचारि,
पति सों रूठि न रोष करि, तिय निज धरम सम्हारि।
अनाचार धन-नाश-रत, निज पति रतन लखाइ,
लहि औसर समुचित वचन रहसि बोधिए ताइ।

यों तो पति को प्रसन्न रखने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि पत्नी सदा वह सत्कार्य करे, जो पति को अच्छा लगे, पति के जीवन काल तक ही नहीं किंतु उसके मरने के पीछे भी—

पति के जीवत निधनहूँ, पति अनरूचत काम,
करति न सो जग जस लहति, पावति गति अभिराम।

पति-पत्नी की एकता पर रत्नावली का विशेष आग्रह है। पत्नी को चाहिए कि वह अपनी अभिलाषाओं, इच्छाओं और आशाओं को पति की इच्छा और अभिलाषा में मिला दे। स्त्री को पति से अलग धार्मिक कृत्य भी नहीं करने चाहिए, क्योंकि पति-सेवा से ही उस संपूर्ण सुख की प्राप्ति हो सकती है—

रतनावलि पति सों अलग कह्यो न बरत उपास;
पति सेवति तिय सकल सुख, पावति सुरपुर-वास।
रतनावलि करतब समुझि सेइ पतिहि निषकाम;
तप तीरथ व्रत फल सकल लह बैठि घर धाम।
पुन्य धरम हित नित पतिहि रहि सहाय उतसाह,

ताहि पुन्य निज गुनि रतन, पुन्य करन जो नाह।
तुव पिय निन नित हरि भजत, तू तिय सेवति ताइ;
तासु भजन तिय तुव भजन, रतन न मनहि भ्रमाइ।

क्या इससे बढ़कर कोई त्याग हो सकता है? यह है पति-पत्नी का साम्यवाद 'कम्यूनिटी ऑफ़ कांजुगल इंटरेस्ट्स'। युक्ति भी सगत है। यदि तेरा पति भगवान् का भजन करता है, और तू पति का भजन करती है, तो रूपांतर से तू भी भगवान का भजन करती है। पति-पत्नी के एकीकरण (असिमिलेशन) को रत्नावली स्पष्ट करती है—

पति के सुख सुख मानती, पति-दुख देखि दुखाति;
रत्नावलि धनि द्वैत तजि तिय पिय-रूप लखाति।

यही पति पत्नी का सायुज्य है। रत्नावली तो ब्रह्मानंद को भी प्रिय प्रेम रस से घटकर समझती है। परमार्थ की दृष्टि से कदाचित् रत्नावली का विश्वास और विचार न टिक सके; किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि व्यवहार की दृष्टिसे गृहस्थ जीवन में रत्नावली की धारणा सत्य है, शिव है, और सुंदर है—

सब रस रस इक ब्रह्म रस, रतन कहत बुध लोय;
पै तिय कहँ पिय-प्रेम-रस, बिंदु सरिस नहिं सोय।

तो क्या रत्नावली संकुचित प्रेम—दांपत्य प्रेम—का आदर्श उपस्थित करती है। नहीं वह परोपकार, दया और करुणा की भूरि-भूरि प्रशंसा करती है। जो प्राणी दूसरे के लिये जीता है वह प्रशस्त है, क्योंकि कुत्ते, गाय, बंदर भी अपने लिये जीते हैं। दूसरों के लिये, परोपकार के लिये, क्षण-मात्र भी जीवित रहना अच्छा है; जो ऐसा करता है, वही वास्तव मे जीवित है, अन्यथा मृतप्राय है—

पर-हित जीवन जासु जग, रतन सफल है सोई;
निज हित कूकर, काक, कपि जीवहि का फल होइ।

रतनावलि इनहूँ जिये धरि पर-हित-जश-ज्ञान;
सोई जन जीवत गनहु, अनि जीवत मृत मान।

किन्तु पर-हित प्रत्युपकार की आशा से नहीं, निष्काम करना चाहिए—

रतन करहु उपकार पर, चहहु न प्रति उपकार;
लहहिं न बदलो साधु जन, बदलो लघु व्योहार।

दूसरों के उपकार को स्मरण रखो, अपने किए हुए उपकार को भूल जाओ—

पर-हित करि बरनत न बुध, गुरत रयहिं दै दान;
पर-उपकृत सुमिरत रतन, करत न निज गुन गान।

परोपकार का अर्थ यह नहीं कि अपने जान-पहचानवालों के ही साथ उपकार करो, अथवा अपनों को ही रेवड़ियाँ बाँटो। परोपकार में पक्षपात नहीं, अपने पराए का भेद-भाव नहीं। परोपकार तो जाति और देश-प्रेम से भी बढ़कर है। वास्तविक परोपकार में तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की पुनीत भावना है। रत्नावली कहती है—

जे निज, जे पर, भेद इमि लघु जन करत विचार;
चरित उदारन को रतन, सकल जगत परिवार।

पिय प्रेम और पर-हित दोनों में त्याग की पराकाष्ठा है। दोनों में प्रेम है, एक दाम्पत्य प्रेम है, तो दूसरा विश्व-प्रेम।

रत्नावली के सभी दोहे वास्तव में सरल और शुद्ध हृदय के भावमय उद्गार हैं, और तुलसी-दोहों के सदृश ही सरस भी। संख्या में अधिक न होने पर भी ये रत्नावली की कीर्ति अमर रखने के लिये पर्याप्त हैं।

दोहा रत्नावली

श्री गणेशायनमः ।। अथ दोहा रतनावली लिष्यतें ।। *

श्रीमते रामानुजाय नमः ।। श्री गुर चरण कमलेभ्यो नमः ।।

अथ दोहा रत्नावली लि० =

श्री गणेशायनमः ।। अथ रतनावली कृत दोह लिष्यते ।। +

श्री गनेसायनमः अथ रतनावली किरत दोह लिष्यते ।। ×

।। दोहा ।।

हाइ सहज ही हौं कही लह्यो बोध हिरदेस ।।
हौं रतनावली जचि गई पिय हिय काच विसेस ।। १ ।।

हाय, लह्यों, जँचि, काँच, हौं, हौं

हाय, जँचि ।। १ ।।

रतनावलि, जची गई, पिय, हिय ।। १ ।।

जनमि बदरिका कुल भई हौं पिय कंटक रूप ।।
विघत दुषित है चलि गए रतनावलि उर भूप ।। २ ।।

बदरिका, हौं, रूप, विंघत, व्है, गयें ।

विधत, दुखित गये मो रतनावलि भूप ।। २ ।।

भई, पिय, रूप, विघुत, है भूप ।। २ ।।

हाई बदरिका बन भई, हौं बामा विषवेलि ।।
रतनावलि हौं नाम की रसहि दयो विष मेलि ।। ३ ।।

हैं विषवेलि, हौं, विष, वदरिका, वन, वामा

---

* गोपालदास की प्रति = गङ्गाधर की प्रति

+ रामचन्द्र की प्रति —— × ईश्वरनाथ की प्रति

चामा, विप, विस ॥ ३ ॥

बदरिका, वन, भटी, वामा, विप रखहि बीस मेलि ॥ ३ ॥

सुमहु वचन अप्रकृत गरल रतन प्रकृत के साथ ॥
जो मो कहँ पति प्रेम सग ईस प्रेम की गाथ ॥ ४ ॥

अप्रकृत्रित ज्यौं, मोकँह सँग

x

x

कहि अनुरागी बचन हू परिनति हिये विचारि ॥
जो न होइ पछिताउ डर रतनावलि अनुहारि ॥ ५ ॥

हूँ

x

x

रतन दैव बस अमृत विस विस अमिरत बनि जात ॥
सूधी हू उलटी परै उलटी सूधी बात ॥ ६ ॥

रतन दैव बस अमृत विप विप अमिरत बनि जात

x

x

रतनावलि औरहि कछू चहिय होइ कछु और ॥
पांच पैंड आगे चलै होनहार सब ठौर ॥ ८ ॥

औरे कछू, पाँच पैंड

x

x

भल चाहत रतनावली विधि बस अनमल होइ ॥
हों पिय प्रेम बढ़यो चहयो दयो मूलतं पोइ ॥ ९ ॥

चाहत, हैं

×

×

जानि परै कहु रज्जु अहि कहुं अहि रज्जु लखात ॥
रज्जु रज्जु अहि अहि कबहु रतन समय की बात ॥ ९ ॥

कहुँ, कहुँ कबहुँ

×

×

धिक मोकहं मो बचन लगि मो पति लहयो विराग ॥
भई वियोगिनि निज करनि रहू उड़ावति काग ॥ १० ॥

मोकहँ, रहूँ, उडावति
मो कहँ, उडावति ॥ ४ ॥
मोकों, भई, वियोगिन ॥ ४ ॥

हों न नाथ अपराधिनी, तऊ छमा करि देउ ॥
चरनन दासी जानि निज वेग मोरि सुधि लेउ ॥ ११ ॥

तौउ, वेगि,
तौउ ॥ ५ ॥
तौउ, छिमा, मोर, सुधिय लेउ ॥ ५ ॥

जदपि गए घर सों निकरि मो मन निकरे नाहिं ॥
मन सों निकरहु ता दिनहि जा दिन प्रान नसाहिं * ॥१२॥

×

गये, निकरौ ॥६॥

---

* जदपि गये घर सेों निकरि मो मन निकरे नाहिं ॥
नाथ रहोंगी मौन हों धारहु पिय जिय तोष।
मनसो निकरों तादिनहिं जा दिन प्रान नसाहिं ॥१२॥

गऐ, निकरी, नाद, दिनहिं, दिरान, नशाद ॥६॥

नाथ रहोंगी मौन हों धारहु पिय जिय तोष ॥
कबहु न दऊ उराहनो, देउ कबऊ दोष ॥१३॥ *

×

धारौ, तोप, उराहनो, दोप ॥ ७ ॥

धारौ, पिय, जिश्र, कबउ, देंउ, उराहनो, देंउ कबऊ ॥७॥

छमा करहु अपराध सब अपराधिनि के आइ ।
बुरी भली हों आपकी तजउ न लेउ निभाइ ॥१४॥

अपराधिन के आय, निभाय,

करौ, आय बुरी, तजौ, निभाय ॥८॥

छिमा, करौ, अपराधिन, बुरे, तजौ, निभाही ॥८॥

कहां हमारे भाग अस जो पिय दरसन देइ ॥
वाइ पाछिली दीठि सों एक वार लखि लेइ ॥१५॥

वाहि, देयँ, लेयँ, कहाँ

दैय, वाहि पाछिली प्रीति सों, लखि लैय ॥१०॥

पिश्र, देई, एक, लेई ॥१०॥

दीन बधु कर घर पली दीन बधु कर छांह ॥
तोउ भई हो दीन अति पति त्यागी मो बांह ॥ १६ ॥

दीनबन्धु, छाँह, हों, बाँह ॥६॥

दीनबन्धु कैं, दीन बधु के, तोउ, भई, हों, तयागी, बांह ॥६॥

सनक सनातन कुल सुकुल गेह भयो पिय स्याम ॥

---

* कबहु न देऊँ उराहनो उराहना देऊ कबहु ना दोष ॥१३॥ +

+ भिन्न स्याही में लिखा है ।

रतनावलि आभा गई तुम बिन बन सम गाम ॥१७॥

बिन, बन, ग्राम

बिन ॥११॥

भयो, पिय, सखा, गही, बिन, बन ॥११॥

कबहु कि ऊगे भाग रवि कबहुं कि होइ बिहान ॥

कबहुँ कि बिकसे उर कमल रतनावलि सकुचान ॥१८॥

× कबहुँ, रवि, कबहु, कबहुं बिकसैं, सकुचाँन

×

×

सोवत सों पिय जगि गए जगिहु गई हो सोइ ॥

कबहु कि अब रतनावलिहि आइ जगावहिं मोइ ॥१९॥

× जगि गये, हों, कबहु, जगावें,

×

×

राम भगति भूषित भयो पिय हिय निपट निकाम ॥

अब किमि भूषित होइ हैं तंइ रतनावलि बाम ॥२०॥

होहि है, तइ

तइ ॥१५॥

पिअ, हिअ, होइं, तइं, वांम ॥१५॥

तीरथ आदि बराह जे तीरथ सुर सरि धार ॥

जाही तीरथ आइ पिय भजउ जगत करतार ॥२१॥

आय, भजहु, याही तीरथ

---

* 'सोवत सों' का तक भिन्न स्याही में लिखा हुआ है। 'मोइ' शब्द पर भिन्न स्याही फेरी गई है।

चन्दु ॥१६॥

आही, मझी ॥१६॥

प्रभु बराह पद पूत महि जनम मही पुनि पेहि ॥
सुरसरि तट महि त्यागि अब गए धाम निज देहि ॥ २२ ॥

पूत महि, गये

बराह, गये ॥१७॥

मिलु, पुत महि, पेहि, मही, तिआग, गये, निज ॥१७॥

सबहि तीरथनु रमि रह्यो राम अनेकन रूप ॥
जहाँ नाथ आओ चले ध्याओ त्रिभुवन-भूप ॥ २३ ॥

आओ, ध्याओ, त्रिभुवन

आओ, त्रिभुवन ॥१८॥

सबै, धिआओ, तिरभुवन ॥१८॥

सुबरन पिय सग हो लसी रतनावलि उप कांचु ॥
तिहि बिछुरत रतनावली रही कांचु अब सांचु ॥ २४ ॥

+ हो,बिछुरत

सँग, काँचु, काँचु, साँचु ॥३१॥

पिअ, हौं, बिछुरत, अब ॥३१॥

जासु दलहि लहि हरषि हरि हरत भगत भवरोग ॥
तासु दास पद दासि ह्वै रतन लहत कत सोग ॥ २५ ॥

भव, ह्वै +

भव, ॥६८॥

भव ॥६८॥

+ लाल चन्दन से 'है' का 'ह्वै' कर दिया गया है।

राम जासु हिरदै बसत सो पिय मम उर धाम ॥
एक बसत दोऊ बसहिं रतन भाग अभिराम ॥ २६ ॥

हिरदे, बँसे

×

×

मोहि दीनो संदेस पिय अनुज नंद के हाथ ॥
रतन समुझि जनि पृथक मोहि जो सुमिरति रघुनाथ ॥ २७ ॥

मोइ, दीनों, नन्द

मोइ, मोइ, सुमिरत ॥६६॥

मोइ, पियअ, प्रियक, मोइ ॥६६॥

दुपनु भोगि रतनावली मन मईं जनि दुपियाइ ॥
पापनु फल दुप भोगि तू पुनि निरमल ह्वै जाइ ॥ २८ ॥

जाय

दुखनु, महँ, दुखियाय, दुख ॥ ६६ ॥

× ॥६६॥

ज्यों ज्यों दुप भोगति तसहिं दूरि होत तुव पाप ॥
रतनावलि निरमल बनत जिमि सुवरन सहि तप्प ॥ २६ ॥

ज्यों, ज्यों, तसहि, तव, निरमल, चनत

दुख, तव, वनत ॥६७॥

तसहि, नव, वनत ॥६७॥

को जाने रतनावली पिय वियोग दुप वात ॥
पिय बिछुरन दुप जानतीं सीय दमैंती मात ॥ ३० ॥

जानें सीय, दमैंती,

जानैं, दुख, दुख, ॥३२॥

पिम्र, पिम्र, जानती, सीम्र, दमेती ॥३२॥

रतनावलि भव सिंधु मधि तिय जीवन की नाव ॥
पिय केवट बिनु कौन जग पेइ किनारे लाव ॥ ३१ ॥

भव ॥ ३१ ॥

खेइ ॥३३॥

तिम्र पिम्र ॥३३॥

हौं न उऋन पिय सों भई सेवा करि इन हाथ ॥
अब हौं पावहुं कौन विधि सदगति दीनाथ ॥ ३२ ॥

सेवा, दीनानाथ, पावहूँ

सेवा दीनानाथ ॥१६॥

उरित, पिम्र सो भई, हात, पावौं, कोन, दीनानाथ ॥ १६ ॥

पति सेवति रतनावली सकुची धरि मन लाज ॥
सकुच गई कछु पिय गए सज्यो न सेवा साज ॥ ३३ ॥

गये ॥३३।

×

×

पति पद सेवा सों रहित रतन पादुका सेइ ॥
गिरत नाव सों रज्जु तेहि सहित पार करि देइ ॥ ३४ ॥

हों. तिहि

×

×

रतनावलि पति राग रंगि दै विराग मइं आगि ॥

उभा रमा बडभागिनी नित पतिपद अनुरागि ॥ ३५ ॥

रँगि, मै आगि ।३५।

× ×

× ×

कबहुँ रह्यो नवनीत सो पिय हिय भयो कठोर ॥

किमु न द्रवहि हिम उपल सम रतन फिरइ दिन मोर ॥ ३६ ॥

रह्यौ, नवनीत, किमि न द्रवहि, फिरे

× × ×

× × ×

कर गहि लाए नाथ तुम बादन बहु बजवाइ ॥

पदहु न परसाए तजत रतनावलिहि जगाइ ॥ ३७ ॥

× लाये, बजवाय, परसाये, जगाय

× × ×

× × ×

मलिया सींची बिबिध बिधि रतन लता करि प्यार ॥

नहिं बसत आगम भयो तब लगि पर्‌यो तुसार ॥ ३८ ॥

× विविध, नहि, वसन्त, तलगि पर्‌यो

× × × ×

× × × ×

नारि सोइ बडभागिनी जाके पीतम पास ॥

लपि लपि चप सीतल करै हीतल लहै हुलास ॥ ३६ ॥

* हीलल

* 'हीलल' के द्वितीय लकार को भिन्न स्याही फेर कर तकार बना दिया है।

लखि लखि चख ॥१२॥

बड़ भागनी, चपि, लहे ॥१२॥

अशन बसन भूषन भवन पिय बिन कछु न सुहाइ ॥
भार रूप जौवन भयो छिन छिन जिय अकुलाइ ॥ ४० ॥

बसन, बिन, सुहाय, रूप, अकुलाय
बसन, बिन, सुहाय, अकुलाय ॥ १३ ॥
वसन, भुषन, पिअ, जिअ ॥ १३ ॥

बैस बारहीं कर गह्यो सोरहिं गवन कराइ ॥
सत्ताइस लागत करी नाथ रतन असहाइ ॥ ४१ ॥

× बारही, सोरहि, गौन, कराय, असहाय

×

×

४०६ १

सागर परस ससी रतन सवत भी दुपदाइ ॥
पिय वियोग जननी मरन करन न भूल्यो जाइ ॥ ४२ ॥

सागर पर रस ससि + रतन

×

×

पिय वियोग दावा दही रत्न काल नगिचाय ॥
निज कर दाहैं आइ तन तौ मन अबहु सिराय ॥४३॥

+ सीधे हाशिये पर 'ससि' का 'सि' 'सी' लिखा गया है। 'पर' के 'प' भिन्न स्याही से 'क' का रूप देनेके लिए 'प' लिखा गया है।

रतन, अबहुँ

×

×

जनम जनम पिय पद पदम रहै राम अनुराग ॥
पिय बिछुरन होइ न कबहुं पावहु अचल सुहाग ॥४४॥

कबहुं, पावहुँ ।४४।

× ॥२०॥

-पिअ, रहै, पिअ, कमंड, पावौं ॥२०॥

रतन प्रेम डंडी तुला पला जुरे इकसार ॥
एक बाट पीडा सहै एक गेह संभार ॥४५॥

बाट ।४५।

×

×

पति गति पति वित मीत पति पति गुर सुर भरतार ॥
रतनावलि सरबस पतिहि बंधु बंद्य जगसार ॥४६॥

-बंद्य

गुरु, बंद्य ॥३०॥

-गुरु, रतनावली, बंदि ॥३०॥

पति के सुप सुप मानती पति दुप देपि दुपाति ॥
रतनावलि धनि द्वैत तजि तिय पिय [illegible]ति ॥ ४७ ॥

रुप । ४७ ।

सुख सुख, दुख देखि दुखाति, रूप ॥

-रतनावली दुखेति, तिअ, पिअ, रू

सब रस रस इक ब्रह्म रस रतन कहत बुधलोय ॥
पै तिय कहं पिय प्रेम रस बिंदु सरिस नहिं सोय ॥ ४८ ॥

ब्रह्म, कहँ, नहि

×

×

तिय जीवन तेमन सरिस तौलौं कछुक रुचै न ॥
पिय सनेह रस राम रस जौ लों रतन मिलै न ॥ ४६ ॥

तौलो, रुचै, जौलो

पिय साँचौ सिंगार तिय सब झूठे सिंगार ॥
सब सिंगार रतनावली इक पिय बिनु निस्सार ॥ ५० ॥

सांचो, सब, बिनु । ५० ।

सांचो, झूठे, सब, सिंगार, पिउ बिन ॥ १४ ॥

पिअ, सांचो, सिंघार, तिअ, झूठे, सिंघार, सिंघार, निसार ॥१४॥

नेह सील गुन बित रहित कामी हू पति होइ ॥
रतनावलि भलि नारि हित पुज्ज देव सम सोइ ॥५१॥

हूँ, होय, सोय ।५१।

×, ।२१।

पूजिअ देव सम होइ ॥२१॥

अंध पंगु रोगी बधिर सुतहिं न त्यागति माइ ॥
तिमि कुरूप दुरगुनि पतिहिं रतन न सती बिहाइ ॥५२॥

माय, कुरूप, दुरगुन, बिहाय

× × ×

× × ×

रतन, अवहुँ

×

×

जनम जनम पिय पद पदम रहै राम अनुराग ॥
पिय बिछुरन होइ न कबहु पावहु अचल सुहाग ॥४४॥

कबहुं, पावहुँ ।४४।

× ॥२०॥

पिश्र, रहे, पिश्र, कमउ, वावौं ॥२०॥

रतन प्रेम डंडी तुला पला जुरे इकसार ॥
एक बाट पीडा सहै एक गेह संभार ॥४५॥

बाट ।४५।

×

×

पति गति पति वित मीत पति पति गुर सुर भरतार ॥
रतनावलि सरवस पतिहि बंधु वंदय जगसार ॥४६॥

-वंद्य

गुरु, वद्य ॥३०॥

गुरु, रतनावली, वदि ॥३०॥

पति के सुख सुख मानती पति दुख देखि दुखाति ॥
रतनावलि धनि द्वैत तजि तिय पिय रूप लखाति ॥ ४७ ॥

रूप । ४७ ।

सुख सुख, दुख देखि दुखाति, रूप लखाति ॥ ५४ ॥

-रतनावली दुखेति, तिश्र, पिश्र, रूप ॥ ५४ ॥

सब रस रस इक ब्रह्म रस रतन कहत बुललोय ।।
मैं तिय कहं पिय प्रेम रस बिंदु सरिस नहि सोय ।। ४९ ।।

ब्रह्म, कहँ, नहि

×

×

तिय जीवन तेमन सरिस तौलौं कछुक रुचै न ।।
पिय सनेह रस राम रस जौ लों रतन मिलै न ।। ४६ ।।

तौलौ, रुचै, जौलौ

पिय साँचो सिंगार तिय सब भूंठे सिँगार ।।
सब सिंगार रतनावली इक पिय बिनु निस्सार ।। ५० ।।

साँचो, सब,. बिनु । ५० ।

साँचो, भूंठे, सब, सिंगार, पिउ बिन ।। १४ ।।

पिअ, साँचो, सिंघार, तिअ, झुठे, सिंघार, सिंघार, निसार ।।१४

नेह सील गुन वित रहित कामी हू पति होइ ।।
रतनावलि भलि नारि हित पुज्ज देव सम सोइ ।।५१।।

हूँ, होय, सोय ।५१।

×, ।२१।

पुजिअ देव सम होइ ।।२१।।

अंध पंगु रोगी बधिर सुतहि न त्यागति माइ ।।
तिमि कुरूप दुरगुनि पतिहि रतन न सती बिहाइ ।।५२।।

माय, कुरूप, दुरगुन, बिहाय

× × ×
× × ×

क्रूर कुटिल रोगी ऋनी दरिद मद मति नाह ।।
पाइ न मन अनपाइ तिय सती करति निरवाह ।।५३।।

×

अनखाइ ।।५६।।

कूर, रिनी, अनुपाइ, तिअ ।।५६।।

बन बाघिनि आमिष भषति भूषी घासुन पाइ ।।
रतन सती तिमि दुख सहति सुख हित अघ न कमाइ ।।५४।।

वन, भकति

× × ×

× × ×

विपति कसौटी पै विमल जासु चरित दुति होइ ।।
जात सराहन जोग तिय रतन सती है सोइ ।।५५।।

होय, सोय

× ×

× ×

सती बनत जीवन लगै असती बनत न देर ।।
गिरत देर लागै कहा चढ़िवौ कठिन सुमेर ।।५६।।

चढिवो, बनत

× ×

× ×

बाल वैस ही सों धरो दया धरम कुल कानि ।।
बड़े भएे रतनावली कठिन परैगी बानि ।।५७।।

बाल, बडे, भये, बानि

× ×

रत्नावलिकृत

दोहा रत्नावली

संवत् १५२९ वि.

[illegible]

गंङ्गाधर की प्रति। गोस्वामी तुलसीदास की पत्नीके २०१ दोहे ८

\+ +

बारे पन सों मातु पितु जैसी डारत बानि ॥
सो न छुटायें पुनि छुटति रतन भयेहु सयानि ॥५८॥

बारे, बानि, छुटाये, छुटत

\+

\+

नाच विषय रस गीत गंधि भूषन भ्रमन बिचारु ॥
अगराग आलस रतन कन्यहिं हित न सिंगारु ॥५३॥

गँधि, विचारु, सिंगारु

\+ +

\+ +

लरिकन सग खेलनि हसनि बैठनि रतनि इकत ॥
मलिन करन कन्या चरित हरन सील कहँ सत ॥६०॥

\+

\+

\+

नयन वचन तिय बसन निज निरमल नीचे धार ॥
करतन रतन विचार तिमि ऊंचे राखि उदार ॥६१॥

करतन, ऊँचे,

\+

\+

हसन कहन हिचकन छिकन अगउन ऊँचे बैन ॥
गुरु जन सनमुख भल न निज ऊंचे आसन नैन ॥६२॥

हँसन, गुरु

+

+

सदन भेद तन धन रतन सरति सुमेषज अन्न ॥
दान धरम उपकार पर राषि बधू परछन्न ॥६३॥

उपकार तिमि राखि बधू

+ +

+ +

भूषन रतन अनेक जग पै न सील सम कोइ ॥
सील जासु नैनन बसत सो जग भूषन होइ ॥६४॥

+ बसत

+

+

सत्य सरस्वानी रतन सील लाज जे तीन ॥
भूषन साजति जो सती सोभा तासु अधीन ॥६५॥

+ +

+ +

+ +

सुबरन मय रतनावली मनमुकता हारादि ॥
एक लाज बिनु नारि कहं सब भूषन जगवादि ॥६६॥

रतनावली, मनि, बिनु, सब

बिनु, कहं, सबभूसन ॥५१॥

रतनावली, ऐक, बिनु, नारिकौं, भूषन ।५१।

ऊंचे कुल जनमें रतन रूपवती पुनि होइ ॥
धरम दया गुन सील बिनु ताहि सराह न कोइ ॥६७॥

ऊँचे, रूप, विनु

+

+

स्वजन सगी सों जनि करहु कवहू अन व्योहार
अन सों प्रीति प्रतीति तिय रतन होति सब छार ६८

करहुँ, कबहु,

+

+

रतन हास पर घर गमन पेल देह सिंगार
तजि उतसवन विलोकिवो लहि वियोग भरतार ६९

+

+

+

रतन भरोखन भांकिवो तिमि बैठनि गृह द्वार
वातगात मलपन हंसन तिय दूषन दातार ७०

भाँकिवो, वातवात

+

+

मदक पान पर घर वसन भ्रमन सयनु विनु काल
पृथक वास पति दुष्ट सग पट तिय दूषन जाल ७१

+ + +

सयन, सँग, सट ॥७२॥

भ्रिमन, सयन, प्रियक, दुसट, तिम्र, दपन ॥७२॥

कबहु अकेली जनि करहु सतहु निकट पयान

देपि अकेली तिय रतन तजत संतहू ग्यान ७२
बचहुँ, करहुँ, ज्ञान,
+
+

घर घर घूमनि नारियों रतनावलि मित चोलि
इनसों प्रीति न जारि बहु जनि मह भेदनु पोलि ७३
चोलि, बहु ।७३।
बोलि, वहु, खोलि ॥८८॥
बोलि, बहु, मह ॥८८॥

क्रोध जुआ व्यभिचार मद लोभ चोरि मदपान
पतन करावन हार जे रतनावली महान ७४
+ + ॥७४॥
विभिचार ॥८६॥
विभचार ॥८६॥

वहु हंसनी बहु बोलनी बतकट जिभचट नारि
बड बोलनि दूतिनि रतन लहतीं दूषन भारि ७५
बहु, वड बोलनि, दूपनि,
हँसनी, बहु वड बोलनि ॥६०॥
बहु, बहु, वडबोलनि ॥६०॥

कबहूं नारि उतार सों करिय न बैर सनेह
दोऊ विधि रतनावली करत कलंकित एह ७६
कबहूं, बैर, दोउ ।७६।

कवहूँ, वैर ॥६१॥

कवहूं, वैर, ऐह ॥६१॥

वनिक फेरुआ भिच्छुकन जनि कवहूं पतिआइ
रतनावलि जेइ रूप धरि ठग जन ठगत भ्रमाइ ७७

कवहूँ, फेरुआ, कवहूँ, रूप

फेरुआ, कवहूं, पतियाय, रूप, भ्रमाय ॥७५॥

फेरुआ, भिछुकन, कवउ, रतनावलि, रूप, भ्रिरमाइ ॥७५॥

अनजाने जन कौ रतन कवहु न करि विसवास
वस्तु न ताकी पाइ कछु देइ न गेह निवास ७८

कवहु

+

+

करमचारि जन सों भली जथा काज बतरानि
बहु बतानि रतनावली गुनि अकाज की पानि ७६

वतरानि, वहु वतानि, रतनावली ।७६।

वतरानि, वहु वतानि, रतनावली, खानि ॥१०५॥

करमचारी, वतरानि, वहुवतानि, रतनावली ॥१०४॥

अनृत वचन मायारचन रतनावली विसारि
माया अनिरत कारने सती तजी त्रिपुरारि ८०

तजी, त्रिपुरारि ।

त्रिपुरारि ॥१०८॥

अनिरत, त्रिपुरारि ॥१०८॥

साहस सों रतनावली जनि करि कबहूँ नेह
सहसा पितु घर गौन करि सती जराई देह ८१

+

कबहूँ ॥१०६॥

कबहुं, जराई ॥१०६॥

अगिनि तूल चकमक दिया निसि महं धरहु संभारि
रतनावलि जनु का समय काज परहि लेउ बारि ८२

सम्हारि, वारि,

महँ, सम्हारि, परै, वारि ॥१०३॥

सम्हारि, परै, वारि ॥१०३॥

आलस तजि रतनावली जथा समय करि काज,
अबको करिबो अबहि करि तबहि पुरै सुख साज ॥ ८३ ॥

करिबो, अबहि, पुरै,

अबको करिबो अबहि, सुख ॥ १०१ ॥

अबको, करिबो अबहि ॥ १११ ॥

रतनावलि सबसों प्रथम जगि उठि करि गृह काज।
सबनु सुवाइहि सोइ तिय धरि संभारि गृह साज ॥ ८४ ॥

सबसों, सबनु, सुवइहि, सम्हारि

सबसों, सबन, सुवाइहि, सम्हारि ॥ १०२ ॥

सबसों, प्रियम, सबनु, सुवाइहि, सम्हारि ॥ ११२ ॥

तू गृह श्री श्री धी रतन तू तिय सकति महान।
तू अबला सबला बनै धरि उर सती विधान ॥ ८५ ॥

तू गृह श्री ह्री धी रतन, अनला

+

+

रतन रमा सी सुप सदन बनि सारद धरि ग्यान।
पलन दलन हित कालिका बनि कर धारि कृपान ॥ ८६ ॥

बनि, ग्रान, बनि,

+

+

सासु ससुर पति पद परसि रतनावलि प्रात।
सादर सेइ सनेह नित सुनि सादर तेहि बात ॥ ८७ ॥

रतनावलि उठि प्रात बात

+

+

सासु ससुर पति पद रतन कुल तिय तीरथ धाम।
सेवहि तिय जग जस लहहि पुनि पति लोक ललाम ॥ ८८ ॥

सेवइ,' लहै,

+

+

मात पिता सासुहु ससुर ननद नाय कटु बैन।
भेषज सम रतनावली पचत करत तन चैन ॥ ८९ ॥

सासु, तनु

सासु ॥ ६९ ॥

सासु, चेन ॥ ६९ ॥

जननि जनक भ्राता बडो होइ जु निज भरतार ।
पढ़इ नारि इन चारि सों रतन नारि हित सार ॥ ६० ॥

चडो, पढइ । ६० ।

वडो, पढ़ै ॥ ५५ ॥

भ्रिता, होई, पढ़े, चारिहो ॥ ५५ ॥

सुवक जनक जामात सुत ससुर दिवर अरु भ्रात ।
इनहू की एकान्त बहु कामिनि सुनि बात ॥ ६१ ॥

एकान्त, बहु, कामिनि सुनि जनि बात, अरु, इनहूँ
अरु, इनहूँ, एकान्त, बहु कामिनि सुनि जनि बात ॥ ४३ ॥

अरु, भिरात, ऐकांत जिन बात ॥ ४३ ॥

रतनावलि पति छांडि इक जेते नर जग माहिं ।
पिता भ्रात सुत सम लखहु दीरघ सम लघु आहिं ॥ ६२ ॥

छाडि, माहि आहि
छाँडि, माहिं, लखहु ॥ ७३ ॥

छाडि, मांइ, भ्रिरात, लखौ, आइ ॥ ७३ ॥

सासु जिठानिहि जननि सम ननदहि भगिनि समान ।
रतनावलि निज सुत सरिस देवर करहु प्रमान ॥ ६३ ॥

सासु जिठानि जननि सम,

\+ \+

जिठानीहि, करौ, प्रिमान ॥ ४७ ॥

सौतिहि सखि सखि सम व्यवहरहु रतन भेद करि दूरि ।
तासु तनय निज तनय गनि लहहु सुजस सुर भूरि ॥ ६४ ॥

-सौतिहि सखि सम ब्यवहरो, लही,

+

+

गुरु सखि बाँधव भृत्य जन जथा जोग गुनि चित्त ।
रतन इनहिं आदर सदा बरतहु बितरहु वित्त ॥ ६५ ॥

-गुरु, बाँधव, चित्त, इनहि, बरतहु, वित्त

+

+

पति पितु जननी बधु हितु कुटुम परोसि बिचारि ।
जथा जोग आदर करहि सो कुलवंती नारि ॥६६॥

बधु, करै ॥ ६६ ॥

बधु, करै ॥ ६२ ॥

-करै ॥ ६२ ॥

घरि धुवाइ रतनावली निज पिय पाट पुरान ।
जथा समय जिन दे करहुँ धरम चारि सनमान ॥ ६७ ॥

-सनमान

+

+

तन मन अन भाजन बसन भोजन भवन पुनीत ।
जो राखति रतनावली तेहि गावत सुर गीत ॥ ६८ ॥

+

राखति ॥ ७० ॥

जे, तिहि ॥ ७० ॥

धन जोरति मित व्यय धरति घर की वस्तु सुधारि ।
सुप करम आचार कुल पतिरत रतन सुनारि ॥६६॥

+ ॥६६॥

+ ॥७१॥

वसतु सभारि, सुप ॥७१॥

जे न लाभ अनुसार जन मित व्यय करहिं विचारि ।
ते पाछे पछितात अति रतन रंकता धारि ॥१००॥

पाछें

+

+

तन मन पति सेवा निरत हुलसे पति लखि जोय
इक पति कहं पूरुष गनै सती सिरोमनि सोय ॥१०१॥

तन सन पति, हुलसै, कह पूरष, सिरोमनि*

हुलसै, लखि, कहं, पूरुष, गुनै ॥६१॥

जोइ, पूरुष, गिनै सोइ ॥६१॥

- बारी पितु आधीन रहि जौवन पति आधीन
विनु पति सुत आधीन रहि पतित होत स्वाधीन ॥१०२॥

बारी, होति,

वारी, होति ॥३७॥

वारी, जोवन, सुआधीन ॥३७॥

पितु पति सुत कुल पृथक रहि पावन तिय वस्यान

---

* 'सिरोमनि' का 'रो' पीछेसे लाल स्याही बनाया हुआ है ।

रतनावलि पतिता बनति हरति दोउ कुल मान ॥१०३॥

\+ + +

पितु पति सुत सों अलग रहि ॥२२॥

सुत सों अलग रहि, पावै न तिअ कलियान ॥२२॥

चिनगारिहु रतनावली तूलहि देति जराय
लघु कुसग जिमि नारि को पतिव्रत देत डिगाय ॥१०४॥

तूलहिं, तिमि

तूलहिं तिमि नारिको ॥४५॥

रतनावली, तूलहि, जराही, तिमि नारिको, पति विरत डिगारी ॥४५॥

छनहु न करि रतनावली कुलटा तिय को सग
तनक सुधाकर सग सों पलटति रजनी रग ॥१०५॥

छनहु,

सुधा के सग सों ॥४७॥

छिनउ, तिअ, तनक सुधायों गसो लगी पलटति ॥ ४७॥

धिक तिय सो पर पति भजति कहि निदरत जग लोग
बिगरत दोऊ लोक तेहि पावन विधवा जोग ॥१०६॥

बिगरत, तिहि,

धिक सो तिय, बिगरत, तिहि ॥२८॥

सो तिअ, निदरति, बिगरति, दोउ, तिहि ॥२८॥

दीन हीन पति त्यागि निज करति सुपति परबीद
दो पति नारि कहाय धिक पावति पद अकुलीन ॥१०७॥

\+ +
\+ +

तिआगि, कहाइ, पावति कुल अकुलीन ॥२७॥

एकुहि जगदाधार तिमि एकुहि तिय भरतार
वचन सुजन को एकु ही रतन एकु जग सार ॥१०८

\+ +
\+ +
\+ +

जो व्यभिचार विचार उर रतन धरै तिय सोय
कोटिकलप बसि नरक पुनि जनमि कुकरी होय ॥१०६॥

\+

विभिचार ॥४७॥

व्यभिचार, धरे, तिअ, सोई, कूकरी, होई ॥४७॥

धरम सदन सतति चरित कुल कीरति कुल रीति
सबहि बिगारति नारि इक करि पर नरसों प्रीति ॥११०॥

सबहि

सन्तति, सबहि ॥४६॥

नरसो ॥ ४६ ॥

घी को घट है कामिनी पुरुष तपत अगार
रतनावलि घी अगिन को उचित न सग विचार ॥१११॥

× पुरुष, अगिन को

पुरुष अगार, विचारु ॥४४॥

घट है, पुरुष ॥४४॥

जो तिय सतति लोभ बस करत अपर नर भोग
रतनावलि नरकहिं परति ज निंदरत सब लोग ॥११२॥

करले, भिरात ॥ २६ ॥

पति सनमुप हसमुप रहति कुसल सकल
रतनावलि पति सुपद तिय धरति जुगल है

हँस

सनमुख, हसमुख, सुखद ॥ २३ ॥

घर काज, तिश्र ॥ २२ ॥

जो मन पानी देह सों पियहि नाहिं दुप
रतनावलि सो साधवी धनि सुर ज्य जस

नाहि

दुख, सुख जस जा लेति ॥ २४ ॥

देहसों, पिअहि नाहि ॥ २४ ॥

उदयापन तीरथ वरत जोग जग्य जप दा
रतनावलि पति सेव बिन सबहि अकारथ जान

बिन, सबहि

उद्यापन, बिनु, सबहि ॥ ३८ ॥

उदिश्रापन, बिरत, जोग जगि, बिन, सबै ॥ ३८ ॥

रतनावलि न दुपाइये करि निज पति अपमान ।
अपमानित पति के भऐं अपमानित भगवान ॥

भये ॥ १२० ॥

दुखाइये, भये ॥ ३६ ॥

दुपाइऐ, भऐ ॥ ३६ ॥

सात पैग जा सग भरे ता सग कीजै प्रीति।

सब विधि ताहि निवाहिये रतन वेद की रीति १२१

-सब ॥ १२१ ॥

सँग, सँग, सब ॥ ४० ॥

मरै, निमाइऐ ॥ ४० ॥

जाने निज तन मन दयो ताहि न दीजै पीठि
रतनावलि तापै रखहु सदा प्रेम की दीठि १२२

प्रीति की दीठि ॥ १२२ ॥

जानैं, रखहु ॥ ४१ ॥

पीठी, रखौ ॥ ४१ ॥

अनाचार धननाधरत निज पति रतन लगाहि
लहि औसर समुचित वचन रहसि बोधिये ताहि १२३

लगाइ, बोधिये,

+

+

सत संगति उपवास जप तप मख जोग विवेक
पति सेवा मन वच करम रतनावलि उर एक १२४

+

मख, ॥ ४८

उपवास, जोगु, विवेकु, पखी, रतनावली, ऐकु ॥ ४८ ॥

पति के जीवत निधन हूं पति अनरूचत काम
करति न सो जग जस लहति पावति गति अभिराम १२

हूँ, अनरूचत

अनस्त्चत, ॥ २५ ॥

अनघ्चत ॥ २५ ॥

रतनावलि पति सौं अलग कह्यो न वरत उपाद
पति सेवति तिय सफल सुष पावति सुर पुर वास १२६

+ पति सौं *

कह्यो, बरत, सुख ॥ २६ ॥

पतिसों, तिश्र ॥ २६ ॥

बिनु पति पति जगपति सुमिरि साक मूल फल पाइ
विरमचर्ज ब्रत धारि तिय जीवन रतन बनाइ १२७

विनु, विरमचरज ॥१२७।

बिनु, साइ, विरम्चरच ॥४२॥

विनु, साग, पिरमचरज, विरत, तिश्र ॥ ४२॥

जीवत पति सासन गहैं सेवहि ताहि सप्रेम
गयें सतीव्रत अनुसरहि पति हित जप तप नेम १२८

गये, अनुसैर

गयें, अनुसरै ॥५२॥

गहे, सेवे, ताइ, गएे, सतीव्रित, अनुसैरे ॥५२॥

धनि तिय सो रतनावली पति सग दाहैं देह
जौलों पति जीवत जिये मरत मरैं पति नेह १२९

जिये,

सँगदाहै, जियै मरै ॥ ५३ ॥

* 'सों' पर बिन्दी लाल स्याही से लगी है।

तिय, दाहे, जोलो, जिए, मरे ॥ ५३ ॥

धन सुख जन सुख वधु सुख सुत सुख सबहि सराहिं
पै रतनावलि सकल सुख पिय सुख पटतरि नाहिं १३०

+

सुख, सुख, सुख, सुख, पटतर ॥ ६७ ॥

सबै, सराहि, पै, रतनावली, मिश्र, पटतर, नाहिं ॥ ६७ ॥

मात पिता भ्रातादि सब जे परिमित दातार
रतनावलि दातार इक सरबस को भरतार १३१

+ सब *

+ ॥१०४॥

परीमित ॥१०४॥

अपनु मन रतनावली पिय मन महं करि लीन
सती सिरोमनि दोइ धनि जस आसन आधीन १३२

मनमें ॥६८॥

आपन, पिय, मनमे ॥६८॥

जे तिय पति हित आचरहिं रहि पति चित अनुकूल
लगहिं न सपनेहु पर पुरुष ते तारहिं दोउ कूल १३३

सपनेहुँ, पुरुष तारहि,

लखहिं, सपनिहु, पुरुष ॥४०॥

तिय, आचरै, रह पति चित अनुकूल, लषै सपनिउ, पुरुष,
तारै, कुल ॥४०॥

---

* 'सब' सावरसादी से लिखा है।

उदर पाक करपाक तिय रतनावलि गुन दोय
सील सनेह समेत तौ सुरभित सुबरन सोय १३४

सुबरन होय ॥४६॥
तिअ, रतनावली, दोई, सो होई ॥४६॥

चतुर बरन कह विप्र गुरु अतिथि सवन गुरु जानि
रतनावलि जिमि नारि कहं पति गुरु कह्यो प्रमानि १३५

चतुरवरन को विप्रगुरु, गुरु, नारिको, गुरु
गुरु, गुरु, नारि को, गुरु ॥६४॥
वरन को, अतिथी, गुरु, जान, तिमि, नारिको, प्रिरमान ॥६४॥

तीरथ न्हान उपास व्रत सुर सेवा जप दान
स्वामि विमुर रतनावलो निसफल सकल प्रमान १३६

विमुख, निपफल ॥६३॥
निरत, प्रिरमान ॥६३॥

देति मंत्र सुठि मीत सम नेहिनि मातु समान
सेवति पति दासी सरिस रतन सुतिय घनि जान १३७

+
+
+

रतन देह पतिकी भयी तोहि कहा अधिकार
पति समुहें पाछें रतन रहि पति चित अनुसार १३८

पतिको भयो

+
+

सुर भूसुर ईसुर रतन साखी सुजन समाज
पतिहि वचन दीने सुमिरि पालि धारि उर लाज १३९

+
+
+

वचन हेत हरिचंद नृप भए स्वपच के दास
वचन हेत दसरथ दयो रतन सुतहिं बनवास १४०

भये, सुपच, बनवास

+ +
+ +

वचन हेत भीषम करयो गुरुसों समर महान
वचन हेत नृप बलि दयो परवहिं सरवस दान १४१

करयो, गुरु,

+
+

वचन आपनो सत्य करि रतन न अनिरत भाषि
अनृत भाषिनो पाप पुनि उठति लोक सों साषि १४२

माँषि, भाँषियो

+ +
+ +

कन्या दान विभाग अरु वचन दान जे तीन
रतनावलि इक वार ही करत साधु परवीन १४३

अरु ॥ १४३ ॥
अरु, तीनि ॥ ६५ ॥
अरु ॥ ६५ ॥

सुजन वचन सरिता समय रतन बान अरु प्रान
गति गहि जे नहिं बाहुरत तुपक गुटी परिमान १४४

घान, अरु, बाहुरत

× × ×

× × ×

पतिहि कुदीठि न लपि रतन जनि दुरवचन उचारि
पतिसौं रूठि न रोस करि तिय निज धरम संभारि १४५

रूठि, रोप, सम्हारि

× ×

× ×

नर अधार बिनु नारि तिमि जिमि स्वर बिनु दल होत
करनधार बिनु उदधि जिमि रतनावलि पोत १४६

बिनु, बिनु, रतनावलि गति पोत

× ×

× ×

बिस अपजस पीऊस जस रतनावली निहारि
जियत मरैं लहि मृत जियैं बिस तजि अमिरत धारि १४७

विप, पीऊप, विप ॥ १४७ ॥

विप, पीऊप विष ॥ ८१ ॥

विप, पीऊप, नीहारि, जिअत, म्रित, विप अम्रित ॥ ८१ ॥

सुजस जासु जौलौं जगत तौलौं जीवत सोई
मारेहू मरत न रतन अजस लहत मृत होइ १४८

सोय, होय,

× ×

× ×

दुष्ट नारि निमि मीत्र सठ ऊतर दैनौ दास
रतनावलि अहिवास घर अतकाल जनु पास १४६

निमि, देनो, अहिवास *

निमि दैनो, अन्तकाल ॥ ६६ ॥

दुष्ट नारि तिमि, उतर देनो ॥ ६६ ॥

रतनावलि धरमहि रपत ताहि रखावत धर्म
धरमहि पातति सो पतति जेहि धरम को मर्म १५०

धरमहिं, धरमहिं ॥ १५० ॥

रतनावलि धरमहिं रपत, रखावत धरमहि ॥ ८० ॥

रतनावलि धरमहिं रपत, धरम, धरमहिं, मरम ॥ ८० ॥

मैन नैन रसना रसन करन नासिका साँच
एइहि मारत अरस है रसवस जिआवत पांच १५१

हैं, जियावत, पाँच,

× ×

× ×

रतन करहु उपकार पर चहहु न प्रति उपकार
लहहिं न बदलो साधुजन लघु व्यौहार १५२

बदलो, बदलो

×

×

परहित जीवन जासु जग रतन सफल है सोइ

---

* सीधे हाशिये पर, 'आहि' बारीक कलम से लिखा गया है।

निज हित कूकर काक कपि जीवहिं का फल होइ १५३

×

×

×

रतनावलि छनहू जिये परि पर हित जस ग्यान
सोई जन जीवत गनहु अनि जीवत मृत मान १५४

छनहूँ, ज्ञान, गनहु ॥ १५४ ॥

× × ॥ ७६ ॥

छिनहूँ, सोही, म्रत ॥ ७६ ॥

जे निज जे पर भेद इमि लघु जन करत विचार
चरित उदारन को रतन सकल जगत परिवार ॥१५५॥

×

×

×

अस करनी करि तू रतन सुजन सराहें तोइ
तुव जीवन लपि मुद लहहिं मरें करें दुप रोइ ॥१५६॥

तुम जीवत, लहै, मरैं, करैं सुधि रोइ १५६ ॥

×

×

सोइ सनेही जे रतन करहिं विपति में नेह
सुप सम्पति लपि जन वहुत वनहिं नेह के गेह ॥१५७॥

बनें,

× ×

× ×

बिगति परें जे-जन रतन निबहैं प्रीति पुरानि
हितू मीत खतिभाय ते पै न बहुत जिय जानि ॥१५८॥

निबहै

×

×

रतनावलि मुख वचन हूं इक सुख को मूल
सुख सरसावत वचन मधु कटु उपजावत सूल ॥१५६॥

हूँ, इक सुख दुख को मूल ॥ १५६ ॥

मुख वचन ही, सुख दुख, सुख ॥ ३४ ॥

वचन ही, सुखदुख ॥ ३४ ॥

मधुर असन जनि देउ कोउ बोलौ मधुरे बैन
मधु भोजन छिन देत सुख बैन जनम भरि चैन ॥१६०॥

बोलौ

घोलौ, सुख ॥ ३५ ॥

बोलौ ॥ ३५ ॥

रतनावलि कांटो लग्यो बैदनु दयो निकारि
वचन लग्यो निकस्यो न कहु उन डारो हिय फारि ॥१६१॥

निकस्यो, कहुँ

× × ॥ ३६ ॥

हिअ ॥ ३६ ॥

रतन भाव भरि भूरि जिमि कवि पद भरत समास
तिमि उचरहु लघु पद करहिं अरथ गभीर विकास ॥१६२॥

×

×
×

परहित बरि बरनत न बुध गुपत रगहिं दै दान।
पर उपकृति सुमिरत रतन करत न निज गुन गान।१६३।

×
×
×

मलहिं होइ दुरजन गुनी भलो न तासों प्रीति।
विषधर मनिधर हू रतन डसत करत जिमि भीति। १६४

भलें, तासों, विष

×
×

भल इकिलो रहिबो रतन भलो न खल सहवास।
जिमि तरु दीमक संग लहै आपन रूप विनास।१६५।

तरु, रूप

×
×

रतन बाँझ रहिबो भलो न सोउ वपूत।
बाँझ रहै तिय एक दुख पाइ वपूत अकूत।१३६।

बाँझ, भलो, बाँझ, रहे

× ×
× ×

कुल के एक सपूत सों सकल सपूती नारि।
रतन एकुलो चद जिमि करत जगत उजियारि॥१६७॥

सपूती, एक ही

× ×

× ×

बालहि लालहु अस रता जो न औगुनी होइ।
दिन दिन गुन गुरुता गहै सांचो लालन सोइ ॥१६८॥

गुरुता

×

×

बालहि सीप सिपाइ अस लपि लपि लोग सिहाय।
आसिप दें हरपे रतन नेह करें पुल काय ॥१६९॥

सिहाय, पुलकाय

×

×

सस्त्र सास्त्र वीना तुरग वचन लुगाई लोग।
पुरुप विसेसहि पाइ जे बनत सुजोग अजोग ॥१७०॥

पुरुप, विशेपहि ॥१०७॥

पुरुप ॥६२॥

लुगाई, पुरुप, विसेपहि ॥६२॥

जार जात मूरप दरिद सुत विद्या धन पाइ।
तृन समान मानत जगहिं रतनावलि बौराइ ॥१७१॥

पाय, बौराय ॥१७१॥

मूरख, जगहि ॥६३॥

जागहि ॥६३॥

फूलि फलहिं इतराइं खल जगनिदरहिं सतराइ ।
साधु फूलि फलि नइ रहहिं सबसों नइ बतराइ ॥१७२॥

फलहि, इतराइ, खल निदरहि, सतराय, रहैं, सबसों बतराय॥१७२॥

|| फलैं, इतराइँ; खल, सतराइँ, रहै, सबसों, बतराइँ ॥६४॥

फलैं, रहैं, सबसों ॥६४॥

एकु एकु आँपरु लिखें पोथी पूरति होइ ।
नेकु धरम तिमि नित करहु रतनावलि गति होइ ॥१७३॥

आंषरु, नेकु, करो,

आँखरु, लिखें, करें, ॥६५॥

आंषरु, नेकु, करें, ॥६५॥

दान भोग अरु नास जे रतन सुधन गति तीन ।
देत न भोगत तासु धन होत नास महं लीन ॥१७४॥

|| अरु, नास में लीन,

अरु, में ॥८३॥

अरु, नास में ॥८३॥

तरुनाई धन देह बल बहु दोसनु आगार ।
बिनु बिवेक रतनावली पसु सम करत विचार ।१७५।

तरुनाई, बल, दोषनु,

तरुनाई, बल, दोषनु, पशु, ।८४।

तरुनाई, बल, दोषनु, विन ।८४।

पांच तुरग तन रथ जुरे चपल कुपथ लै जात ।

पै *

×

×

तन धन जन बल रूप को गरब करौ जनि कोइ।
को जानैं विधि गति रतन छन महँ कछु कछु होइ।१८१।

रूव, कोय, जानै, छन में, होय

×

×

उदय भाग रवि मीत बहु छाया बडी लखाति।
अस्त भएँ निज मीत कहँ तनु छाया तजि जाति।१८२।

बहु, बडी, भये, कहँ

बहु, बडी, लखाति, भयें ॥८२॥

बहु, बडी, भयें ॥८२॥

वरन स्वर लघु द्वै मिलत दीरघ रूप लखात।
रतनावलि अखवरन द्वै मिलि निज रूप नसात।१८३।

रूप, द्वै+, रूप, रूप

×

×

स्रम सों बाढत देह बल सुप संपति धन कोष।
बिनु स्रम बाढत रोग तन रतन दरिद दुप दोष।१८४।

बल, कोष, दोष

---

* 'पै' पर गहरी काली स्याही फेरी गई है।

+ 'द्वै' पर गहरी काली स्याही फेरी गई है।

रत्नावलिकृत

रत्नावली लघु दोहा संग्रह

संवत् १५७८ वि०

रामचन्द्र की प्रति । तुलसी पत्रों से १११ दोहे

दे० पृ० १८२.

पै *

×
×

तन धन जन बल रूप को गरब करौ जनि कोइ ।
को जानै विधि गति रतन छन मह कछु कछु होइ ।१८१।

रूप, कोय, जानै, छन में, होय

×
×

उदय भाग रवि मीत बहु छाया बडी लखाति ।
अस्त भये निज मीत कह तनु छाया तजि जाति ।१८२।

बहु, बडी, भये, कहँ

बहु, बडी, लखाति, भयें ।।८२।।

बहु, बडी, भयें ।।८२।।

सबरन स्वर लघु द्वै मिलत दीरघ रूप लखात ।
रतनावलि अरावरन द्वै मिलि निज रूप नसात ।१८३।

रूप, द्वै+, रूप, रूप

×
×

स्रम सों बाढत देह बल सुख सपति धन कोस ।
बिनु स्रम बाढत रोग तन रतन दरिद दुख दोस ।१८४।

बल, कोष, दोष

---

* 'पै' पर गहरी काली स्याही फेरी गई है।

+ 'द्वै' पर गहरी काली स्याही फेरी गई है।

रत्नावलिकृत

रत्नावली लघु दोहा संग्रह

संवत् १५७८ वि०

रामचन्द्र की प्रति। तुलसीपर्णके १११ दोहे　　　　दे० पृ० १८२.

रत्नावली कृत

रत्नावली लघु दोहा संग्रह

स्वत् १८७५ वि०
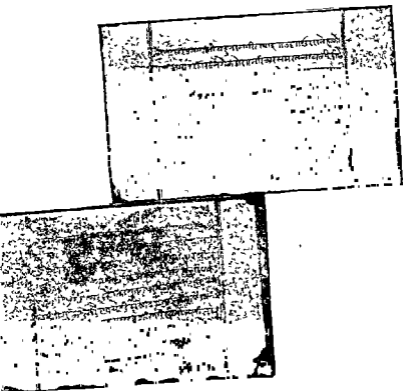
ईश्वरनाथ की प्रति । तुलसीपत्नी के १११ दोहे

दे० पृ० १९३

एकु एकु अनरथ करै किमु समुदित जदि चार १८६

×

जौवन, ॥१००॥·

जौवन, रतनावली ॥१००॥

मन वानी अरु करम मह सतजन एक लखाय
रतन जोइ विपरीत गति दुरजन सोइ कहाय १६०

अरु, करम में, लखायँ, कहायँ

अरु करम मे, लखायँ, कहायँ ॥१०६॥

अरु, करममें, लखाइ, जोही, कहाइ ॥१०६॥

जो उपकारी को रतन करत मूढ़ अपकार
ते जग अपजस लहत पुनि मरें नरक अधिकार १६१

जे ॥१६१॥

× ×

× ×

रतनावलि नइ चलि सदा नइ सुभाय बतराइ
नारि प्रसंसा नइ रहैं नित नूतन अधिकाइ १६२

प्रशंसा

बतराइ, रहैं, अधिकाय ॥११०॥

रहे ॥११०॥

पल रिपु बस परि जे रमहिं सतिपन सुजुगति पूरि
पति बरता तिन तियनु की रतनावलि पग धूरि १६३

× ×

खल, रखहिं ॥१०७॥

पतिव्रता ॥१०७॥

रतनावलि करतव समुझि सेइ पतिहि निष्काम
तप तीरथ व्रत फल सकल लहहि बैठि घर बाम-१६४

लहै

×

×

पति वरतत जेहि वस्तु नित तेहि धरि रतन सभारि
समय समय नित दै पियहि आलस मदहि बिसारि १६५

वरतन, सम्हारि

×

×

बिरच रतिनु ढिंग बैठि तिय तेहि अनुभौ धरि ध्यान
तेहि अनुसारहि बरति तेहि रापि रतन सनमान १६६

×

×

×

पुन्य धरम हित नित पतिहि रहि बढ़ाय उतसाह
ताहि पुन्य निज गुनि रतन पुन्य करत जो नाह १६७

बढाय ॥ १६७ ॥

×

×

तुव पिय नित नित हरि भजत तु तिय सेवति ताहि ,

जासु भजन तिय तुव भजन रतन न मनहि भ्रमाहि १९८

सेविति ताह, तासु भ्रमाइ

×

×

सती धरम धरि जाँचि नित हरि सों पति कुसलात

जनम जनम तुव तिय रतन अचल रहहि अहिवात १९९

जाचि, रहै अहिवात

×

×

जो तिय मन बच काय सों पिय सेवति हुलसाति

तेहि चरननु की धूरि धरि रतनावली सिहाति २००

×

×

×

जासु चरित वर अनुसरहि सतवती हरषाइ

ता इक नारी रतन पै रतनावलि बलिजाइ २०१

अनुसरै

अनुसरैं, सतवन्ती ॥ १११ ॥

अनुसरे ॥ १११ ॥

इति श्री रतनावलि कृत दोहा रतनावली संपूर्ण ॥ संवत् १८२४ भाद्रपद मासे कृष्ण पक्षे ३० अमावस्याम् सोमवासरे ॥ लिपि गोपालदासेन मुंशीमाधोराइ निमित्तम् शुभम् भवतु ॥ राम ॥ राम ॥ राम राम ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥

मगन भगवान निगुर्णमंगल गम्ट वन भगन पुण्डरीकाक्ष मगलायतो हरि ॥ १ ॥ शुभम्

इति श्री साधनी रतनावलि की दोहा रतनावली सपूरनम शुभम् सवत् १८२६ मादौ शुदि ३ चन्द्रे लिखितम् गगाधर ब्राह्मण जोगमारग समीपे वाराह क्षेत्रे श्रीरस्तु शुभमस्तु।

इति श्री रतनावलि लघु दोहा सग्रह सम्पूर्णम् ॥

लिखितमिदम् पुस्तकम् पडित रामचन्द्र बदरिया ग्रामे शुभ सम्वत् १८७४ चैत्र कृष्णा १३ भृग वासरे। ॐ नमो भगवते वराहाय। शुभम् भूयात

॥ इति ॥

छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्री रतनावली लघुदोहा सग्रिह सपूरनम् ॥ लिखित ईसुरनाथ पडीत सोरों नी मिती माह सुदी तेरसि १३ सोमवार सवतु १८७५ म ॥ गगा ॥

॥ ईति शुभम् ॥

रत्नावली के कुछ पद—

[आधार : जनश्रुति]

तुम बिनु सब जग मोहि अँधेरो
निशि दिन जगत चद रवि जगत
घर घर दीप उजेरो।

गृहजन परिजन सदननु देखे
नगर गाम मझियाये
बूझि बूझि हौं पथिकन हारी
पिय तुम कहूँ न पाये ।१।

कबहुँ न मो बिनु परयो चैन अब
सो मो सुधि बिसराई
का अपराध भयो गुरु मोसों
तासों उर रिसि छाई ।२।

आये अति सनेह उर लाये
जात न पद परसाये
आपनि कही न बूझी मोसों
सोवति छाँड़ि सिधाये ।३।

आहट लेति बाट नित जोहति
आवन आस तिहारी
रत्नावलि मुख चंद दिखावहु
आय होय उजियारी ।४।

रत्नावलि-कृत दोहोंके आधार-प्रायवचन—

दोहा ५ उचितमनुचित वा कुर्वता कार्यजातं
परिणतिरवधार्या यत्नतः पंडितेन;
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते
भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ।

६ विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ।

(अ) गुणोऽपि दोषतां याति वक्रीभूते विधातरि;
सानुकूले पुनस्तस्मिन् दोषोपि च गुणायते।

७ अचिन्तितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनाम्;
सुखान्यपि तथा मन्ये दैवमत्रातिरिच्यते।

(अ) अयाचितः सुखं दत्ते याचितश्च न यच्छति;
सर्वं तस्यापि हरति विधिरुच्छृंखलो नृणाम्;

(आ) यच्चिन्तितं तदिह दूरतरं प्रयाति
यच्चेतसापि न कृतं तदिहाभ्युपैति;
इत्थं विधेर्निधिविनिर्यमपाकलय्य
सन्तः सदा सुरसरित्तटमाश्रयन्ते।

२४ काचः काञ्चनसंसर्गाद् धत्ते मारकतीं द्युतिम्;
तथा सत्सन्निधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम्।

२६ दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तवर्णम्।

३१ एते वै विधिना प्रोक्ताः स्त्रीणां धर्माः सनातनाः;
ते नौकाः परमाः प्रोक्ता भवसागरतारणे।

४० गंधैर्माल्यैस्तथा धूपैर्विविधैर्भूषणैरपि;
वासोभिः शयनैश्चैव विधवा किं करिष्यति।

४६ पतिर्देवो हि नारीणां पतिर्बन्धुः पतिर्गतिः;
पत्युर्गतिसमा नास्ति दैवतं वा यथा पतिः।

४७ आर्त्तार्ते मुदिते हृष्टा प्रोषिते मलिना कृशा;
मृते म्रियेत या पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता।

(अ) यथाप्येव मन्त्रवेत्ता अनार्यो वृत्तवर्जितः;
अद्रव्यमुत्तमाङ्गः तथा ह्योर मया भवेत्।

(अ) स्त्रियः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृताङ्गना ।

४९ अभ्युत्थानमुपागते गृहपतौ तद्भाषणे नम्रता
तत्पादार्पितदृष्टिरासनविधिस्तस्योपचर्या स्वयम्;
सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्याच्चैः शय्यामिति
प्राच्यैः पुत्रि निवेदितः कुलवधूसिद्धान्तधर्मागमः ।

५० क्रीडाशरीरसंस्कारसमाजोत्सवदर्शनम्;
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत् प्रोषितभर्तृका ।

५१ विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः;
उपचर्यः सदा भर्त्ता सततं देववत् पतिः ।
(स्त्रीणामार्यस्वभावानां परम दैवत पतिः ।

(अ) दरिद्रो व्यसनी वृद्धो व्याधितो विकलस्तथा;
पतितः कृपणो वाऽपि स्त्रीणां भर्त्ता परा गतिः ।

५२ दुर्वृत्त वा सुवृत्तं वा सर्वपापरत तथा;
भर्त्तार तारयत्येषा भार्या धर्मेषु निष्ठिता ।

५३ ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्नो वा मित्रघ्नो वा भवेत्पतिः;
पुनात्यविधवा नारी तमादाय मृताऽपि वा ।

(अ) नगरस्थो वनस्थो वा पापी वा यदि वा शुभः;
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्त्ता तासां लोका महोदयाः ।

५४ वनेऽपि सिंहा मृगमांसभक्षिणो
बुभुक्षिता नैव तृणं चरन्ति;
एवं कुलीना व्यसनाभिभूता
न नीचकर्माणि समाचरन्ति ।

स्वप्नोऽन्यगेहे वासश्च नारीणां दूषणानि षट् ।

७२ माता स्वसा दुहिता वा न विविक्तासनो भवेत्,
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ।
वर्जयेदिन्द्रियजयी निर्जने जननीमपि,
पुत्रीकृतोऽपि प्रद्युम्न कामित शम्बरस्त्रिया ।

७४ द्यूत पुस्तकवाद्ये च नाटकेषु च सक्तता,
स्त्रियस्तन्द्रा च निद्रा च विद्याविघ्नकराणि षट् ।

७५ विवादशीलां स्वयमर्थचोरिणीं
परानुकूलां परपाकशालिनीं,
सक्रोधनीं चान्यगृहेषु वासिनी
त्यजति भार्यां दशपुत्रमातरम् ।

७६ वर्जनीयो मतिमता दुर्जन सख्यवैरयो,
श्वा भवत्यपकाराय लिहन्नपि दशन्नपि ।
दुर्जनेन सम सख्य प्रीतिं चापि न कारयेत्,
उष्णो दहति चाङ्गार शीत कृष्णायते करम् ।

७७ सकृदपि कुलगामियोगिनीभिक्षुकीभि ,
नटविटघटिनाभि सस्त्रै मौलिकाभि ।

७८ अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित् ।

(अ) यस्य न ज्ञायते शील कुल विद्या नरस्य च,
कस्तेन सह विश्वास पुमान्कुर्याद्विचक्षण. ।

८० प्रमादोन्मादरोषेर्ष्या वचन चातिमानिताम्,
पैशुन्यहिंसाविद्वेषमहाहकारधूर्त्तताम्,
नास्तिक्य साहस स्तेय दम्भान् साध्वी विवर्जयेत् ।

१०० क्षिप्रमायमनालोच्य व्ययानश्च स्ववाञ्छया,
परिक्षीयत एवाऽसौ धनी वैश्रवणोपम ।
इदमव हि पाण्डित्यमियमेव विदग्धता,
अयमेव परो धर्मो यदायान्नाधिको व्यय ।
आयात्पाद व्यय कुर्यात् तृतीय चार्धमेव वा,
सर्वलोप न कुर्वीत यदि जीवितुमिच्छति ।
व्ययमनहितचित्ता चिन्तिताऽऽय च कुर्यात् ।

१०२ बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत् पाणिग्राहस्य यौवने,
पुत्राणां भर्त्तरि प्रेते न भजेत् स्त्री स्वतन्त्रताम् ।
पिता रक्षति कौमरे भर्त्ता रक्षति यौवने,
पुत्राश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ।

१०३ पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छेद्विरहमात्मन,
एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये कुर्यादुभे कुले ।

१०४ अहो दुर्जनससर्गान्मानहानि पदे पदे,
पावको लोहसगेन मुद्गरैरभिहन्यते ।

१०५ भिक्षुकीश्रमणक्षपणाकुलटाकुहकचेटीशिवामूलकारिकाभिर्नसख्यं

१०६ दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि च,
पति स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ।

१०७ पति हित्वापकृष्ट स्वमुत्कृष्ट या निषेवते,
निन्द्यैव सा भवेल्लोके परपूर्वेति चोच्यते ।
अस्वर्ग्यमयशस्य च फल्गु कृच्छ्र भयावहम्,
जुगुप्सित च सर्वत्रमौपपत्य कुलस्त्रिय ।

१०८ न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्त्तोपदिश्यते ।

न जातु मीलो मगायो वसन्ति ।

९२ मातृवत् स्वसृवच्चैव तथा दुहितृवच्च ये;
परदारान् प्रपश्यन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ।

९३ भक्तिः प्रेयसि संश्रितेषु करुणा श्वश्रूषु नम्र शिरः ।

९४ प्रीतिर्भ्रातृषु गौरव गुरुजने क्षान्तिः कृतागस्यपि ।

९५ अम्लानः कुलयोषितां व्रतविधिः सोऽयं विधेयः पुनः
मद्भर्तुर्दयिता इति प्रियसखीबुद्धिः सपत्नीष्वपि ।

९६ निर्व्याजा दयिते ननान्दृषु नता श्वश्रूषु भक्ता भव
स्निग्धा बन्धुषु वत्सला परिजने स्मेरी सपत्नीजने;
भर्तुर्मित्रजने सनम्रवचना खिन्ना च तद्वैरिषु
प्रायः संवनन नतभ्रु तदिदं वीतौषध भर्तृषु ।

९७ प्रियतमपरिभुक्तत्यक्तवस्त्रादिरक्षाम्;
शुचिभिरवसरे तैर्मानिन भृत्यर्गे ।

(श्र) तत्रवन्यानां च जीर्णवाससां सचयस्तैर्विविध-
रागैः शुद्धैर्वा कृतकर्मणां परिचारकाणामनुग्रहो
मानार्थेषु च दानमन्यत्र वोपयोगः ।

९८-९९ पत्युः पूर्वं समुत्थाय देहशुद्धि विधाय च;
उत्थाप्य शयनाद्यानि कृत्वा वेश्मविशोधनम् ।
मार्जनैर्लेपनैः प्राप्य साग्निशालां स्वमंगलाम्;
मृद्भिश्च शोधयेच्चुल्लीं तत्राग्निं विन्यसेत्पुनः ।
न चापि व्ययशीला स्यान्न धर्मार्थविरोधिनी;
सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया;
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ।

१०० क्षिप्रमायमनालोच्य व्ययानश्च स्ववांछया;
परिक्षीयेत एवाऽसौ धनी वैश्रवणोपमः ।
इदमेव हि पाण्डित्यमियमेव विदग्धता;
अयमेव परो धर्मो यदायान्नाधिको व्ययः ।
आयात्पादं व्ययं कुर्यात् तृतीयं चार्धमेव वा;
सर्वलोप न कुर्वीत यदि जीवितुमिच्छति ।
व्ययमवहितचित्ता चिन्तिताऽव्ययं च कुर्यात् ।

१०२ बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत् पाणिग्राहस्य यौवने;
पुत्राणां भर्त्तरि प्रेते न भजेत् स्त्री स्वतंत्रताम् ।
पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने;
पुत्राश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ।

१०३ पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छेद्विरहमात्मनः;
एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये कुर्यादुभे कुले ।

१०४ अहो दुर्जनसंसर्गान्मानहानिः पदे पदे;
पावको लोहसंगेन मुद्गरैरभिहन्यते ।

१०५ भिक्षुकीश्रमणादक्षणाकुलटाकुहकेक्षणिकामूलकारिकाभिर्नसंसृज्येत ।

१०६ दुश्शीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि च;
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ।

१०७ पतिं हित्वापकृष्टं स्वमुत्कृष्टं या निषेवते,
निन्द्यैव सा भवेल्लोके परपूर्वेति चोच्यते ।
अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम्;
जुगुप्सितं च सर्वत्रमौपपत्यं कुलस्त्रियः ।

१०८ न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्त्तोपदिश्यते ।

(अ) साध्वीनां तु स्थितानां तु शीले सत्ये श्रुतिरिष्यते;

(आ) लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वा-
मत्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्तमानाम्;
तेजस्विनः सुखमसूनपि सन्त्यजन्ति
सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम्।

११० व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निंद्यताम;
शृगालयोनिं चाऽऽप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते।

१११ घृतकुम्भसमा नारी तप्तांगारसमः पुमान्;
तस्माद्घृतं च वह्निं च नैकत्र स्थापयेद् बुधः

११२ अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्तारमतिवर्तते,
सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते।

११४ निरक्षरे वीक्ष्य महाधनत्वं विद्यानवद्या विदुषा न हेयाः;
रत्नावतंसाः कुलटाः समीक्ष्य किमार्यनार्यः कुलटा भवन्ति।

११५ इभतुरगशतैः प्रयान्ति मूढा
धनरहिता विबुधाः प्रयांति पद्भ्याम्
गिरिशिखरेषु वसेच्च काकपंक्तिः
नहि समयेऽपि तथापि राजहंसः।

११६ यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता चानुमते पितुः;
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत्।
पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य च;
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत् किंचिदप्रियम्।

११७ सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया;
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया।

११८ पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता;
सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते ।

११९ भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च,
तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं भजेत्सती ।
नास्ति यज्ञः स्त्रियः कश्चित् न व्रतं नोपवासकम्,
या तु भर्तरि शुश्रूषा तया स्वर्गं जयत्यसौ ।

१२० आर्ये किमवमन्येऽहं स्त्रीणां भर्ता हि दैवतम् ।

१२३ रहसि च परिबोध्यो वित्तनाशे प्रसक्तः ।
अतिव्ययमसद्व्ययं वा कुर्वाणं रहसि बोधयेत् ।

१२४ योषिच्छुश्रूषणाद् भर्तुः कर्मणा मनसा गिरा;
तद्धिता शुभमाप्नोति तत्सालोक्यं यतो द्विजाः ।

(अ) मृते जीवति वा पत्यौ या नान्यमुपगच्छति;
सेह कीर्तिमवाप्नोति मोदते चोमया सह ।

१२५ पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा;
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत् किंचिदप्रियम् ।

१२६ न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च,
नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात् ।

(अ) नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम्,
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ।

१२७ कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलाशनैः,
न तु नामापि गृह्णीयात् पत्यौ प्रेते परस्य तु ।

१२८ जीवति जीवति नाथे मृते मृता या मुदा युते मुदिता;
सहजस्नेहरसाला कुलवनिता केन तुल्या स्यात् ।

आधीत ऽऽपरणात् क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी,
यो धर्म एकपत्नीनां कांक्षती तमनुत्तमम् ।

१३० नाऽपति सुखमाप्नोति नारी बधुशतैरपि,
नाऽतन्त्री विद्यते वीणा नाऽचक्री विद्यते रथ ।

१३१ मित ददाति हि पिता मित भ्राता मित सुत,
अमितस्य तु दातार भर्त्तारं का न पूजयेत् ।
न पिता नात्मजो राम न माता न सखीजन,
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गति सदा ।

१३२ अनेन नारीवृत्तेन मनोवाग्देहसयता,
इहाग्र्यां कीर्तिमाप्नोति पतिलोक परत्र च ।

१३३ पतिप्रियहिते युक्ता स्वाचारा विजितेन्द्रिया,
सेह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमां गतिम् ।

१३४ सैव साध्वी सुभक्तश्च सुस्नेह सरसोज्ज्वल,
पाक सजायते यस्या करादप्युदरादपि ।

१३५ गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरु
पतिरेको गुरु स्त्रीणां सर्वत्राऽभ्यागतो गुरु ।

१३७ कार्येषु मत्री करणेषु दासी भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा,
धर्मानुकूला क्षमया धरित्री भार्या च षाड्गुण्यवतीह दुर्लभा

१३६ पाणिप्रदानकाले च यत्पुरा त्वग्निसंनिधौ
अनुशिष्ट जनन्या मे वाक्य तदपि मे ध्रुवम् ।
न विस्मृत तु मे सर्वं वाक्यैस्तैर्धर्मचारिणि,
पतिशुश्रूषणान्नार्यास्तपो नान्यद्विधीयते ।

१४२ सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रवि,

सत्येन वायवो वान्ति सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ।

१४३ सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते;
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत् ।

१४४ शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने;
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः.
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामा कुलस्याधयः ।

१४५ चिरमथ गिरमस्मिन् विप्रियां न प्रयच्छेत् ।

(अ) युवतिरपि विहाय प्रातिकूल्यं स्वनाथ ।
वचनहृदयकायैः पूजयेदिष्टदेवम् ।

१४७ नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ।
प्राप्तावधिरजीवेऽपि जीवेत् सुकृतसन्तति ,
जीवन्त्यद्यापि मान्धातृमुखाः कार्यैर्यशोमयैः ।
मुहूर्तमपि जीवेच्चेन्नरः शुक्लेन कर्मणा ।
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना

१४८ स जीवति यशो यस्य कीर्तिर्यस्य स जीवति;
अयशोऽकीर्तिसंयुक्तो जीवन्नपि मृतोपमः ।

१४९ दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः,
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ।

१५० धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः;
तस्माद् धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ।

१५१ पञ्चेन्द्रियस्य मर्त्यस्य छिद्रं चेदेकमिन्द्रियम्;
ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ।

१५२ इयमुन्नतसत्त्वशालिनां महतां कापि कठोरचित्तता;
उपकृत्य भवन्ति दूरतः परतः प्रत्युपकारशंकया ।

१५३ यस्मिन् जीवति जीवन्ति बहवः स तु जीवति;
काकोऽपि किं न कुरुते चञ्चा स्वदोरपूरणम् ।

१५४ यज्जीव्यते क्षणमपि प्रथितं मनुष्यै-
र्विज्ञानविक्रमयशोभिरभज्यमानम्,
तन्नाम जीवितमिह प्रवदन्ति तज्ज्ञाः
काकोऽपि जीवति चिराय बलिञ्च भुङ्क्ते ।

(अ) परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम्;
नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदः स्युः पदे पदे ।

१५५ अयं निजः परोवेत्ति गणना लघुचेतसाम्;
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।

१५६ अनेन मर्त्यदेहेन यल्लोकद्वयशर्मदम्;
विचिन्त्य तदनुष्ठेयं कर्म हेयं ततोऽन्यथा ।

१५७ मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानन्दनं चेतसः
पात्रं यत् सुखदुःखयोः सह भवेन्मित्रेण तद्दुर्लभम्;
ये चान्ये सुहृदः समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषाकुलाः;
ते सर्वत्र मिलन्ति तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषां विपत् ।

१५८ कराविव शरीरस्य नेत्रयोरिव पक्ष्मणि ;
अविचार्य प्रियं कुर्यात्तन्मित्रं मित्रमुच्यते ।

१५९ लक्ष्मीर्वसति जिह्वाग्रे जिह्वाग्रे मित्रबांधवाः,
जिह्वाग्रे बंधनं प्राप्तं जिह्वाग्रे मरणं ध्रुवम् ।

१६० प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।

तस्मादेव हि वक्तव्य वचने का दरिद्रता।
नहीदृश सवनन त्रिषु लोकेषु विद्यते,
दानमैत्री च भूतेषु दया च मधुरा च वाक्

२६१ कर्णिनालीकनाराचा निर्हरन्ति शरीरत;
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदि शयो हि सः।

(अ) नारुंतुदः स्यादावमानी परस्य मित्रद्रोही नोतनीचोपसेवी।

२६२ तथ्य पथ्य सहेतुनियमतिमृदुल सत्यवदैन्यहीनम्
साभिप्राय दुराप सविनयमशठ चित्रमल्पाक्षर च;
बह्वर्थ कोप्यशून्य मितयुतघनद्राक्षिपयसदेहहीनम्;
वाक्य ब्रूयाद्दक्ष परिषदिसमये सप्रमाणाप्रमत्तम्।

२६३ प्रदान प्रच्छन्न गृहमुपगते सम्भ्रमविधि;
प्रियं कृत्वा मौन सदसि कथन नाप्युपकृते।

२६४ दुर्जन· परिहर्त्तव्यो विद्यालङ्कृतोऽपि सन्;
मणिना भूषितः सर्पे किमसौ न भयकरः।
वर पर्वतदुर्गेषु भ्रान्त वनचरै सह,
न मूर्खजनसर्गो सुरेन्द्रभवनेष्वपि।

२६५ अगुरप्यक्षता सग सद्गुण हन्ति विस्तृतम्,
गुणो रूपान्तरं याति तक्रयोगाद्यथा पय।

(अ) वर पर्वतदुर्गेषु भ्रान्त वनचरै सह,
न मूर्खजनसर्गो. सुरेन्द्रभवनेष्वपि।

(आ) सीमतिनीं वनांताद् दशरथसूनोर्जहार दशवक्त्र;
बन्धनमाप समुद्रो न दुर्जनस्यान्तिके निवसेत्।

२६६ वर वध्या भार्या शरमपि च गर्भेषु वसति·,

न चाविद्वान् रूपद्रविणगुणयुक्तोऽपि तनयः ।

१६७ वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खशतान्यपि;
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोऽपि च ।

१६८ पात्रं न तापयति नैव मलं प्रसूते
स्नेहं न संहरति नैव गुणान् क्षिणोति;
द्रव्यावसानसमये चलतां न धत्ते
सत्पुत्र एव कुलसद्मनि कोऽपि दीपः ।

१६९ स्वातन्त्र्यं पितृमन्दिरे निवसतिर्यात्रोत्सवे संगतिः
गोष्ठी पूरुषसन्निधावनियमो वासोविदेशे तथा;
संसर्गः सह पुंश्चलीभिरसकृद् वृत्तेर्निजायाः क्षतिः
पत्युर्वार्धकमीर्षितं प्रवसनं नाशस्य हेतुः स्त्रियाः ।

१७० अश्वः शस्त्रं शास्त्रं वीणा वाणी नरश्च नारी च;
पुरुषविशेषं प्राप्य भवन्ति योग्या अयोग्याश्च ।
कुवंशपतितो राजा मूर्खपुत्रश्च पण्डितः;
अधनेन धनं प्राप्य तृणवन्मन्यते जगत् ।

१७२ नमन्ति सफला वृक्षा नमन्ति सुजना जनाः;
शुष्क काष्ठं च मूर्खाश्च न नमन्ति कदाचन ।

१७३ जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः;
स एव हेतुर्विद्यानां धर्मस्य च धनस्य च ।

१७४ दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य;
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ।

१७५ तारुण्यं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता;
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ।

(आ) यो यत्र कार्ये कुशलः त तत्र विनियोजयेत्;
कर्मस्वदृष्टकर्मा यः शास्त्रज्ञोऽपि विमुह्यति।

१८६ अन्ये बदरिकाकारा बहिरेव मनोहराः।

१८७ नारिकेलसमाकारा दृश्यन्तेऽपि हि सज्जनाः।

१८८ मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णास्त्रिभुवन-
मुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्त.······सन्ति सन्त. त्रियन्त.।

१८९ यौवनं धनसम्पत्ति प्रभुत्वमविवेकता,
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्।

१९० मनस्यन्यद् वचस्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मन म्,
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।

१९१ उपकारिणि विश्रब्धे शुद्धमतौ यः समाचरति पापम्;
त जनमसत्यसंघ भगवति वसुधे कथ वहसि।

१९२ अतीवगुणसम्पन्नो न जातु विनयान्वित.,
सुसूक्ष्ममपि भूतानामुपमर्दमपेक्षते
···········ये···नराश्तान् विनर्जयेत्।

(अ) अकीर्ति विनयो हन्ति
विद्या ददाति विनयम्
विनयाद् याति पात्रताम्।

१९४ तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत्,
शंकरादपि विष्णोर्वा पतिरेकोऽधिक प्रिय.।

१९५ व्यपगतमदमाया वर्तयेस्त्वं यथार्हम्।

१९६ स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषानुकूलता।

१९७-१९९ व्रतनियमविधिं च क्षेमवृद्ध्यै विदध्यात्।

२०० कामैकच्चायचै साध्वी प्रश्रयेण दमेन च,
वाक्य सत्यै प्रियै प्रेम्णा काले काले भजेत्पतिम् ।

सुभाषितरत्नभांडागार, आह्निकसूत्रावली, मनुस्मृति, भर्तृहरिशतक, पंचतन्त्र, धर्मशास्त्रसंग्रह, पिंगलसूत्र, क्षेमेंद्रकवि रचना, वाल्मीकि रामायण, रतिरहस्य, कामसूत्र, रघुवंश, दुर्गासप्तशती, हनुमन्नाटक, नीति, कठोपनिषद्, गीता आदि ।

अविनाशराय-कृत तुलसी-प्रकाश--

[गोस्वामी तुलसीदास रत्नावली, और तुलसी के सम्बन्ध में अब तक प्राप्त छन्द]

दोहा

गंगा दच्छिन कूल इक तारी गाम सुथान
सोरकी हरसिंह जहँ भूमिपाल मतिमान ॥

तोमर

तहँ बसत भूसुर भूरि कछु लहत भूसुर सूरि
कछु दास जन सुखकारि लघु गाम पै मनहारि
जनि भूमि मेरी जेह आनद सुख सम देह
सिवराय जू पविराय मेरे जनक सुखदाय ॥

दोहा

कौंडिन मुनि गोती दुबे तहाँ विप्र सिर मौर
बसत अनुध्यानाथ बुध एहि सम गनक न और ॥

मदिरा

पूत न कोउ जियो उनको दुहिता हुलसी बहु जत्न भई
ब्याहन जोग भई जबही वर ढूँढन मे चित वृत्ति दई।
सूकर खेत समीप तबै वर रामपुरै मधि देखि लयो
आतमराम सुकुल्लहि के करमें हुलसी-कर दान दयो॥

सोरठा

आतमाराम वर हाथ मातु हीन हुलसी सुता
दई अजुध्यानाथ लोकवेद कुलरीति करि॥
जामातहि बुलवाइ बरस गएँ कछु ब्याह सों
निज सरवस्स गहाइ तारी तजि सुरपुर गए॥
तारी महँ वसि वरस इक पढ़ितु आतमाराम
आइ बसे हुलसी सहित सुखद रामपुर गाम॥

बांछ रूप फलदानि जहाँ तप धाम है
तहँ सुर सरिता तीर रामपुर गाम है।
जासु घरयो नँददास स्यामपुर नाम है
करयो स्यामसर तहाँ नैन अभिराम है।

तरुवर विविध लगाइ तहाँ उपवन करयो
थापि स्याम बलराम सदन जग जस भरयो।

सुकुल सनाढ्य विप्र वंस को वास तहँ
सुकुल सच्चितानंद भए यहि वंस महँ।

पंडित अति बुधिवंत महाज्ञानी रहे
आतमराम अरु जीवराम सुत द्वै लहे।

तेउ भए मतिमान महा विद्याधनी
छाइ रही चहुँ ओर कीर्ति घर-घर घनी ॥

सोरठा

सुकुल सच्चितानद जीवाराम विवाह करि
भोगि सकल आनद जाइ बसे सुरपुर सदन ॥

दोहा

पडित जीवारामकी चम्पा चपला नारि
लरिकाई वस सासुसों करी एक दिन रारि ॥
परुष बचन तेहि सासु सुनि सपथ करी तब एक
अब न बसौंगी रामपुर राम रखावें टेक ॥
सुन परयौ राजौरिया मातु पिताको धाम
अबहि जाइ सोरम बसौं करहुँ न छिन विसराम ॥
मातु सत्य पुन जानि मन बोले आतमाराम
जहाँ रहो सुखसों जननि तुरत चलहु तेहि धाम ॥

कवित्त

अनसूया अरुधती सावित्री सुकन्या-सी
सीता सी सती-सी सती सविता-सी भासमान
रूपवती सीलवती सत्यवती सुकृति सो
सुरसरी-सी पावनी सरसुती मूर्तिमान
माधुर रस सानी कोविल सम बानी जासु
धरनी सी धीर धनि गभीर सिंधु समान
रत्नावलि तुलसीकी घरनी गुनन खानि
हारयौ अविनास जासु करत कीरति बखान ।

सोरों की सामग्री

सवैया

रतनावलि सी मलि पाय वधू तुलसी पितु मातु महा सुख पायो
नित पाँय पलोटति धोवति सीस न्हवावति ताहि सनेह रचायो
रुचि होय पचावति व्यंजन सोइ करै नित सोइ जो ताहि सुहायो
अविनास रमासम गेह रमी तुलसी गृह स्वर्ग समान बनायो ।

रतनावलि पीय सनेह सनी अति चाव करै पतिकी सिवकाई
पतिकों निज प्रान परेस समान निहारि सुखी निय में सुख लाई
अवलोकि उदास उदास रहै तब है इक प्रान प्रमान लखाई
तुलसी बड भाग रही अविनास सती रतनावलि-सी तिय पाई ।।

नित राम सता सिव पूजति सो वर मागति एकुहि नाथ भलाई
निशि राम कथा अविनास सुनें कबहूँ सोइ आपु पढै मन लाई
नित काव्य पुरानन कानन में विहरै पति संग करै कविताई
मन तोष लहैं पति जा विधि सौं रतनावलि सोइ करै मन लाई ।।

कवित्त

सारस कपोत चक्रवाक सम तुलसी मे
रत्नावलि वियोग एक छनहूँ ना सुहात
सुनत रसीले बैन दीरघ लजीले नैन
मद मुसकान जासु देखि देखि ना अघात
आकृति अनूप रूप गोरो तन प्रेम नेम
गेह काज साज देखि मन फूले ना समात
तीय अनुराग मोह भूले सुधि सिय-पी की
बिसरो अपान उन्हें साँझ प्रात ना जनात ।।

निद्धि रस सिंधु इंदु बत्सर सित सावन सम्भु
आयो अविनासराइ अनुजाहि तीवै साथ
तुलसी मत पाय रत्नावलि लिवाय संग
बदरी पयान कर्‌यौ बंदि पाद रघुनाथ
दूजे दिन तुलसी हू आन ग्राम भक्त गेह
बैठि गए स्यदन सो बाचन श्रीराम-गाथ
ग्यारहीं साँझ आए बाढी तिय देखन चाह
चाव भरे आधीराति चलि दीने बदरी-पाथ ॥

भादों अँधियारी घटा कारी कजरारी घिरीं
परत फुहार तऊ तुलसी न मानी हार
नारि नेह मोहे जनु काहू मद मोए से
चलें अविनास राह पग धरें ना पिछार
राम उर धारि ज्यों बायुसूनु लाँघ्यों सिंधु
त्योंही उर धारि तिय गंगा लँघि गए पार
तुलसी हरषात सो जात चले भीजे गात
खोलियो किवार जाइ बोले ससुरार द्वार ॥

तुलसी सुर जानि रतनावलि भ्रात उठे
तुरते कपाट खोलि बोलि घर लाये जाइ
बूझी कुसलात उन गात करी आदर दै
सूखे पहराइ पट सेज पै सुवाए लाइ
जानि के इक्त कत रत्नावलि आई पास
चूहे अविनासराइ बैठी पद सीस नाइ
बोली कस आधीराति आए तुम प्राननाथ
गंगा कस उतरे पार हाय दुख पायौ आइ ॥

तुलसी सुनि बोले हौं राम-कथा पूरी करि
आजु साँझ आयो तुम बिनु घर भयो भार
जीय अकुलायो अविनास ना सुहायो कछु
देखन तोहि आयो लखि मोद भो अपार
तुम बिनु एक छन जुग-जैसो बीतै मोहि
वियोग में तिहारे जग लागतु है असार
बिनु ही प्रयास री प्रानप्रिय तिहारे प्रेम—
पोत के सहारे करि आयो सुरसिंधु पार ॥

सवैया

भो तन प्रेम केरी सरि पार करैं हरि प्रेम तरे भव प्रानी
प्रेम प्रताप महा महिमा लघु-धी अविनास न जाय बखानी
नाथ भई बड़ भागिनि हौं तुम प्रेम पयोनिधि पाय सिहानी
नैनन आनँद नीर भरे पुलकाइ कही रतनावलि बानी ॥

बैन सुनै तिय के तुलसी हरि प्रेम कथा मन माहिं समानी
सूखत रंमि सनेह को खेत दयो रतनावलि-मानहु पानी
राम बिसारि असार विचारनु बैठ चली अविनास न जानी
सोचत मे तुलसी धरि मौन सती तिय नैनन नींद समानी ॥

मायहि नींद लगी जिय जानि पलोटति पाँयनु-बदि सयानी
पीय अगाध सनेहहि पाइ गई रतनावलि हीय सिहानी
सोइ रही विधि याम लिखो अविनास मिटी न ललाट निसानी
रातिहि मैं तुलसी उठि भागि गए तिउ औचक काहु न जानी ॥

भोरहि होत उठी रतनावलि मोद भरी पिय देखन धाई
दीठि परै न कहूँ चहुँ ओर सबै बदरी नर-नारि मभाई

हीय सनाक भयो रतनावलि नैनन नीर नदी घहराई
जात कहे निनु नाहिं गयो अविनास कहा मन आजु समाई ॥

कवित्त

रामपुर सूकरखेत घाट बाट हाट गेह
देखत अथाई लोग चहुँ दिसि धाए हैं
पथी नर नारि बहु बूझे बहु देखे गाम
दूरि दूरि दूत लोग खोजिबे पठाए हैं
प्रो।। ।सराइ कहूँ न सनास लगी
खोजि खोजि हारे सब लौटि लौटि आए हैं
शिवनाथ ससुर सभु रतनावलि भ्रात सबै
बैठे निरास ह्वै तुलसी न पाए हैं ॥

निसिदिन बिललाति छलछलात जासु नैन
हीय छटपटात गात कुम्हिलायो है
दीरघ उसास लेति कबहूँ न सांस लेति
बेसुधि ह्वै जात मनो प्रान हूँ अथायो है
कवी अविनास कहै नाथ नाथ आओ नाथ
टेरत ही टेरत सुकंठ भरि आयो है
रतनावलि तुलसी के वियोग मई
बौरी सी जानि परै कबहू त्रिदोस जुर आयो है ॥

त्यागो परिवार ससुरार घर द्वार धन
मनहिं पछार मार नारि नेह तोरयो है
धारयो पै नारि बैन भौ-निधि सों तारनहार
सरबस बिसारि हरि सों नेह जोरयो है

मनहिं मन टेरत तुलसी अविराम राम
कहत तोहि भूलि राम हौं कुल बोर्यौ है
जैसो हौं तैसो हौं तेरो ही अविनासराइ
मोहि अपनाइ हौं जा सौं मुख मोर्यौ है ॥

(हुलसी के विषय में)

तार्यौ तें सुक्ल बस तार्यौ तें दुविन वश
सासु ससुर तारे तें तारी महतारी है
कहै अविनासराइ आपु तरी तार्यौ बापु
तार्यौ पति रामपुर तारी हू तारी है
अजहूँ हुलसात ले हुलसी जन तेरो नाम
तुलसी सो जायौ पूत धर्म अवतारी है
धन्य मात हुलसी तैं मोच्छ-द्वार-तारे की
मुमुच्छन हाथ दई तुलसी रूप तारी है ॥

बीती तरुनाई वीर मंडित बुंदेलखंड
कालिंजर वास करि सिहुड़ा कीनो वास।
पाए बहु वीर धीर मानी बड दानी जहाँ
साधु औ गुनग्य जे कविंद जन पूजें आस।
देखे बहु राजद्वार जाइ अविनासराइ
पायो बहु दान मान कहूँ प्रेम को प्रकास
पै न ओरछेस-सो गुनग्य कवि केसव-सो।
राजा-सो उदार साधु देख्यौ हौं न भक्तदास ॥

राजापुर, बसाइ, राजा, साधु, हू कृतारथ कीन
सेवा-फल दीन कीनी कीरति प्रकास

भक्तजन भीर जहाँ रहे न उद्वीर करी
जमुना के तीर करयौ दूजौ नैमिष निवास
राम गान ग्यान ध्यान जप्य अरु साधैं लोग
वेद औ पुरानन को छहरयौ जहँ उजास
भासै अविनास देखि देखि ना अघाए नैन
बर्नत थकाए वैन ऐसे श्री तुलसिदास ॥

राजा महाराज श्री जहाँगीर भूपति राज
तालीपति कर्नसिंह सोरकी सुभग वास
पन्द्रह सौ बयालीस वर्ष सक सुक्रवार
दौज तिथि स्याम पाख बर्यौ अत्र पूस मास
गुरुजन जस भाख्यौ देखि राख्यौ जैसो हों हू
जीय अभिलाख्यौ लिख्यौ चरित तुलसिदास
छहरै छबीलो छिति छेत्रमे छपाकर सो
नासै तम रासि अविनास तुलसी प्रकास।

'तुलसी प्रकास' पर कुछ विचार —

अविनाशराय ने 'तुलसी प्रकास' को पौष कृष्णा द्वितीया शुक्रवार शक १५४२ संवत् (अर्थात् १६७७ विक्रम संवत्; तदनुसार १ दिसम्बर १६२० ई०) में गोस्वामी तुलसीदास की मृत्यु से तीन वर्ष पहले, लिखा था। यों तो शोध-सामग्री के रामचरित मानस (१६४३ वि०) दोहा रत्नावली, कृष्णदासकृत वर्षफल (१६५७ वि०), सूकर-क्षेत्र माहात्म्य (१६७० वि०) वंशावली, नन्ददास के भ्रमर गीत की पुष्पिका (१६७२ वि०) श्री गुसाईं जी के सेवकचारि अष्टछापी तिनकी वार्त्ता.

(१६६७ वि०), नाभादासका भक्तमाल, प्रियादास और सवादास की टीकाएँ, बावन वचनामृत, २५२ वैष्णवन की वार्त्ता आदि अनेक प्राचीन पुस्तकों से गोस्वामी तुलसीदास और रत्नावली का बहुत कुछ परिचय मिलता है। किन्तु गो० तुलसीदास का क्रमबद्ध जीवन चरित्र मुरलीधर चतुर्वेद के 'रत्नावली चरित' (८२६ वि०) में मिला है। अविनाश राय का 'तुलसी-प्रकाश' तो और भी अधिक प्रकाश डालता है, विशेषत निम्न लिखित बातों पर —

(१) गो० तुलसीदास की ननसाल तारी (तारी) जिला एटा थी। उनकी माता का नाम हुलसी था और उनके नाना कौशिक्य गोत्रीय अयोध्यानाथ दुबे ज्योतिषी थे।

(२) तुलसीदास के पिता आत्माराम अपनी माता के कहने अपनी ननसाल के सून राजौरिया घर में, रामपुर से आकर सोरों रहने थे। कारण यह था कि तुलसीदास की चाची चम्पा ने अपनी सास (अर्थात् गोस्वामीजी की दादी) से कटु वचन कहे थे।

(३) अविनाशराय ने 'निद्धि इस सिंधु इन्दु' अर्थात् १४६६ शक सम्वत् का उल्लेख किया है जो रत्नावली के 'सागर पर रस सशी' अर्थात् १६०४ वि० सम्वत् से मेल खाता है। घटनाओं का भी साम्य है।

(४) अविनाशराय ने तुलसीदास की उपमा चन्द्रमा से दी है। हो सकता है 'सूर सूर तुलसी ससी' नामक युक्ति का उनपर प्रभाव हो अथवा उनके कारण उस उक्ति का प्रादुर्भाव हुआ हो। इस विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। अविनाशरायजी गोस्वामी तुलसीदास के समय के थे और केशवदासजी से भी बहुत प्रभावित थे।

(५) अविनाशराय ने लिखा है कि गो० तुलसीदास ने राज नामक

किसी भक्त साधु के नाम पर राजापुर की नींव डाली थी।

'तुलसी प्रकास' मुझे देखने को अभी नहीं मिला है। सुना है एक साधु रामदास ब्रह्मचारी जी के पास है जो कभी-कभी गंगातीर गढ़िया रसूलपुर जिला बदायूँ आते रहते हैं। उक्त छंद लो एटा के स्व० बाँकेलाल जी से प० भद्रदत्त जी को उपलब्ध हुए थे। 'तुलसी-प्रकास' में कितने छन्द हैं और छन्दों का क्या क्रम है, इस विषय में कुछ ज्ञात नहीं। हाँ, इस पुस्तक की पुष्पिका के सम्वत् मास पक्ष तिथि और वार गणना से ठीक उतरते हैं। अविनाशराय ने ऐसी सूचनाएँ अवश्य दी हैं जो मुरलीधर चतुर्वेद ने नहीं दीं, उनमें लगभग डेढ़-सौ वर्ष का अन्तर था, अतएव सम्भव है इस काल में बहुत सी बातों का विस्मरण हो गया हो। अविनाशराय ने राजापुर के अतिरिक्त सिहुँडा, कालिंजर और ओरछा का भी उल्लेख किया है, अत: उधर के विद्वानों को इस विषय में सचेष्ट होना चाहिए, कदाचित् वहाँ से कुछ और सूचनाएँ प्राप्त हो सकें। 'तुलसी-प्रकास' की प्रतियाँ और छन्द भी मिल जायँ तो कोई आश्चर्य न होगा।

अविनाशरायजी गिवराय के पुत्र, तारी के रहनेवाले थे। कर्ण-विलास' के रचयिता कान्हराय ब्रह्मभट्ट भी तारी के थे। एक ने तो अपने को जहाँगीर कालीन और दूसरे ने अपने को शाहजहाँ कालीन बताया है; किन्तु दोनों ही ने तारी के अधिपति कर्णसिंह सोलंकी का उल्लेख किया है। संभवत: कान्हराय अविनाशराय के वंशज हों।

अविनाशराय बहुत घूमे होंगे, उनका सर्वत्र आदर होता होगा, विशेषत: ओरछा में। इसमें सन्देह नहीं उनकी रचना में प्रवाह, प्रसाद और लालित्य है।

शङ्का-समाधान

(सोरों सामग्री पर आक्षेपों की आलोचना)

सोरों सामग्री की परीक्षा करने लखनऊ विश्वविद्यालय के डा० श्री दीनदयालु गुप्त एम. ए., डी. लिट्. १६३६ ई० में, तत्पश्चात् प्रयाग-विश्वविद्यालय के डा० श्री माताप्रसाद गुप्त एम. ए., डी. लिट् भी उसी वर्ष, व्यक्तिगत रूप से सोरों—कासगञ्ज आए। श्री दीनदयालु गुप्त एक वर्ष पश्चात् सोरों-सामग्री की पुनः परीक्षा करने के लिए आए और दोनों बार ही उन्हें सामग्री प्रामाणिक प्रतीत हुई, किन्तु श्री माताप्रसाद गुप्त ने इस पर कुछ सन्देह प्रकट किए हैं और उन सन्देहों ने कुछ अनर्गल प्रलापों को जन्म दिया है।

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन प्रयाग और नागरी प्रचारिणी सभा काशी का इस सामग्री के प्रति जो भाव रहा है वह प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। व्यक्तिगत धाँधली और पक्षपात का उल्लेख यहाँ रुचिकर प्रतीत नहीं होता। इस विषय में बहुत कुछ सूचना "नवीन भारत" के कुछ अङ्कों से प्राप्त हो सकती है। हाँ, साहित्यिक शोध की दृष्टि से, डा० माताप्रसाद गुप्त के सन्देहों और डा० उदयनारायण तिवारी के आक्षेपों पर विचार कर लेना उचित एवं आवश्यक प्रतीत होता है।

सोरों-सामग्री की प्रत्यालोचना—

डा० माताप्रसाद गुप्त एम. एम., डी. लिट्, ने 'सोरों में प्राप्त गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त से सम्बन्ध रखनेवाली सामग्री की बहिरङ्ग परीक्षा' और 'सोरों म प्राप्त गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त से

सम्बन्ध रखनेवाली सामग्री की 'अन्तरङ्ग परीक्षा' नामक दो लेख लिखे जो 'सम्मेलन पत्रिका' में संवत् १९९७ वि० के श्रावण-भाद्रपद और फाल्गुन-चैत्र के अङ्कों मे, तदनन्तर 'तुलसीदास' नामक उनकी पुस्तक में, भी प्रकाशित हुए।

डा० गुप्त की 'अन्तरङ्ग परीक्षा' बड़ी भ्रमात्मक है। गोस्वामी तुलसीदास की पत्नी रत्नावली ने अपनी 'दोहा रतनावली' में ४२ वाँ दोहा इस प्रकार दिया है—

> सागर प रस ससी रतन
> संवत भो दुखदाइ।
> पिय वियोग जननी मरन
> करन न भूल्यो जाय॥ ४२॥

इस दोहे के प्रथम चरण मे ससी = शशि = १, रस = ६, प = ख = आकाश = ०, सागर = ४। रत्नावली इस प्रकार अपने पति-वियोग और मातृ-मृत्यु का सवत् १६०४ वि० देती है। 'दोहा रतनावली' की दो प्रतियाँ उपलब्ध हैं, एक तो गोपालदास की, जो १८२४ वि० की है, दूसरी गङ्गाधर की, जो १८२६ वि० की है।

गङ्गाधर ने उक्त दोहे के प्रथम चरण का जो पाठ दिया है वह इस प्रकार है—'सागर पर रस ससि रतन'। उसने पाठान्तर रूप से हाशिये पर 'ससि' का दीर्घ ईकार दिया है। प्रतीत होता है कि उसे स्वय संवत् अस्पष्ट था। किसी पाठक ने पकार में पूँछ लगाकर उसे ककार बनाने की चेष्टा की है किन्तु कुछ हिचकिचाहट के साथ, जैसा कि स्याही से स्पष्ट है। प्रति की मूल स्याही काली है और पूँछ लाल-सी मसि मे लगाई गई है। गोपालदास का पाठ शुद्ध और स्पष्ट है, उसकी प्रति गंगाधर की प्रति से

कुछ पुरानी है किन्तु यह कुछ बाद को मिली थी। अविनाशराय कृत 'तुलसी प्रकाश' के कुछ छन्द, कुछ ही समय हुआ, प्राप्त हुए थे; और उसके एक छन्द में 'निदि रस सिन्धु इन्दु' सवत् का उल्लेख है। इन्दु = १, सिन्धु = ४, रस = ६, निदि = निधि = ६, अर्थात् १४६६; यह शक संवत् है और रत्नावली के दिये हुए १६०४ वि० सवत् से मेल खाता है।

माताप्रसाद गुप्त ने इटावा की अत्यन्त अशुद्ध छपी 'दोहा रतनावली' का उपयोग किया है, तदनुसार 'सागर कर रस ससी रतन' अशुद्ध अशुद्ध पाठ को मूल से आधार मान लिया है। उन्होंने 'सागर' का अर्थ 'सात' किया है, 'चार' करना चाहिए था; और सम्पूर्ण चरण से संवत् १६२७ वि० ग्रहण किया है, जो सर्वथा अशुद्ध है। उनकी 'अतरङ्ग परीक्षा' का मूलाधार यह अशुद्ध सवत् ही है। रत्नावली ने जो सवत् दिया है वह वास्तव में १६०४ वि० है। मूल के शोध लेने पर 'अन्तरङ्ग परीक्षा' के तर्क और कल्पना पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

गुप्तजी ने 'बहिरङ्ग परीक्षा' में सोरों की दश-विध सामग्री पर विचार किया है। यद्यपि उन्होंने समस्त पुस्तकों की प्राचीनता को स्वीकार किया है और उन्हें उन्हीं शताब्दियों की लिखी बताया है जिनकी वे लिखी हुई हैं, फिर भी अनेक स्थलों पर उन्हें अनेक सन्देह उपस्थित हुए हैं और उनसे सोरों-सामग्री के विषय में भ्रम फैल जाने की आशङ्का है, अतएव उनका समाधान करना अत्यन्त आवश्यक है, जो इस प्रकार है:—

(१) रामचरित-मानस का बाल-काण्ड। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्री रामचरित्र मानसे सकल कलिकलुष विध्वंसने विमल...ग्या सपादिनी नाम १ सोपान समाप्तः सवत् १६४३ शाके...१५०८...वासी

नन्ददास पुत्र कृष्नदास हत लिखी रघुनाथदास ने कासीपुरी मे।" शङ्का-कार मानते है कि देखने में प्रति इतनी काफी पुरानी जान पड़ती है कि वह विक्रमीय सत्रहवीं शताब्दी की कही जासके, फिर भी उन्हें तीन सन्देह उत्पन्न हुए हैं—

[क] "पुष्पिका की अन्तिम पंक्ति और अन्त से दूसरी पंक्ति के बीच मे एक छोटी आड़ी रेखा इस प्रकार खींची गई कि उससे जान पड़ता है कि पुष्पिका उसके ऊपर ही समाप्त हो गई थी।" इस शङ्का के समाधान में कहा जा सकता है कि दो विषयों का पार्थक्य दिखाने के लिए ही आड़ी रेखाएँ खींची गई हैं। आड़ी रेखा का विषय कोई मुख्य बात नहीं। यदि यह कहा जाय कि गोस्वामीजी के समय में ऐसी आड़ी रेखाएँ नहीं खिचती थीं, तो ठीक नहीं प्रतीत होता था। यदि शङ्का की जाय कि पुष्पिका बाद की लिखी हुई है तो भी ठीक नहीं क्योंकि पुष्पिका की लिखी हुई मसि और लिखावट पुस्तक की अन्य मसि और लिखावट से भिन्न नहीं तिस पर जो पुष्पिका अरण्य-काण्ड में है उसका संवत् उक्त पुष्पिका के संवत् से मेल खाता है। इसलिए शङ्का के लिए कोई कारण प्रतीत नहीं होता। सम्पूर्ण बाल काण्ड एवं उसकी प्रधान और उप-प्रधान पुष्पिकाओं का लिखने-वाला तो एक ही व्यक्ति है, फिर सन्देह क्यों?

[ख] दूसरी शङ्का है कि "अन्तिम पंक्ति की लिखावट शेष प्रति और पुष्पिका की लिखावट से पूरा पूरा मेल नहीं खाती।" शङ्काकार यह तो मानते है कि "अक्षरों के बीच के फासले और उनकी बनावट मे साम्य दिखाई पड़ता है" पर "अन्तिम पंक्ति में अक्षरों के ऊपर स्याही फेरकर उन्हें बिगाड़ दिया है, अत इन लिखावटों का मिलान गोलाई और खत की दृष्टियों से नहीं किया जा सकता"। समाधान रूप से निवेदन है कि हमने बाल-काण्ड की उक्त प्रति के सभी उपलब्ध पृष्ठों को देखा है।

उनमें अनेक स्थलों के अक्षर पुष्पिका की अन्तिम पंक्ति के अक्षरों के समान हैं। पुष्पिका की अन्तिम पंक्ति पर स्याही फेरी हुई है। कारण जान पड़ता है कि यह पुस्तक आज से ३६२ वर्ष की लिखी हुई है; उसकी स्याही चटरती है। जिन-जिन स्थानों के अक्षर उड़ गए, वहाँ वहाँ किसी पुस्तक रक्षक ने पुनः स्याही फेरकर अक्षर चमका दिए। स्याही फेरने पर के पश्चात् भी कुछ अक्षर उड़ गए हैं जो अबतक वैसे ही विद्यमान हैं। फिर भी जिन अक्षरों पर स्याही फेरी गई है वे अक्षर और उनके फ़ासले परीक्षक की दृष्टि में अन्य पंक्तियों के समान हैं। यदि मूल अक्षरों पर दुबारा स्याही फेरी जाय तो अक्षरों में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य पड़ जायगा। किन्तु इससे पुष्पिका की अन्तिम पंक्ति अथवा पुस्तक भर में अन्यान्य अक्षर जिनपर पुनः स्याही फेरकर पुस्तक की रक्षा की गई है अप्रामाणिक नहीं हो सकते। रक्षा के निमित्त ऐसा तो प्रायः होता है। प्रधान बात तो यह है कि सब-कुछ होने पर भी, स्पष्टतः लिखावट से, पुस्तक और पुष्पिकाएँ एक ही लेखक के हाथ की लिखी प्रतीत होती हैं, और सन्देह की गुंजाइश नहीं।

[ग] शंकाकार को पुष्पिका में संवत् १६४३ के '६' और '४' का एवं 'शाके' और '१५०८' के बीच के अन्तर अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं; किंतु ध्यान देने की बात है कि पुस्तक में अन्य स्थलों पर इसी प्रकार के फ़ासले हैं। यदि ऐसे अन्तर पुस्तक के अन्य स्थलों में न होते और केवल पुष्पिका में ही होते तो बात विचारणीय थी। ऐसे स्थल तो उसी पृष्ठ में हैं जिसका चित्र शङ्काकार ने अपनी पुस्तक में दिया है।

(२) रामचरित-मानस का आरण्य-काण्ड इसकी पुष्पिका इस प्रकार है:—

१—"इति श्री रा

२—मायने सक्ल कलि कलुष विध्वंसने विमल वैराग्य सपादिनी पट मुखन सवादे राम वन चरित

३—रनेनो नाम तृतियो सोपान आरन्यकांड समाप्त ॥३॥ श्री तुलसीदास गुरु की आग्या सों उन

४—के प्रीतासुत कृष्णदास सोरों छेत्र निवासी हेत लिखित लछिमनदास कासीजी मध्ये स

५—म्वत् १६४३ असाढ़ सुद ४ सुके इति ॥"

इस विषय में शङ्काकार मानते हैं कि "देखने में यह प्रति इतनी काफी पुरानी जान पड़ती है कि विक्रमीय सत्रहवीं शताब्दी की कही जा सके" पर वह शङ्का करते हैं कि "इस पुष्पिका में यह ध्यान देने योग्य है कि "इति" '३॥' तक का अङ्क पहले लाल स्याही से लिखा हुआ था, पीछे से उसपर चमक दार स्याही फेरी गई है। इस पुनरंञ्जन में केवल 'इति' और मध्ये'-के एकार की मात्रा अपने पहले रङ्ग में बने हुए हैं, शेष सभी काले कर दिये गए। इस अशके अनन्तर 'श्री' से 'इति' तक का अश चमकदार काली स्याही से लिखा हुआ है। इसपर फिर स्याही नहीं फेरी गई है केवल सवत् का '१६४' पुनर्लेखन का परिणाम जान पड़ता है।" इसके अतिरिक्त शङ्का चलती है कि " 'श्री तुलसी' से लेकर अन्तिम 'इति' तक की लिखावट शेष प्रति और पुष्पिका की लिखावट से शैली, गति और अक्षरों के आकार के विषय में भिन्न ज्ञात होती है, यद्यपि वह गोलाई और खम, अक्षरों के बीच के फासले और पंक्ति की सीधाई के सम्बन्ध में एक सी जान पड़ती है। 'क' 'ह' '१' और '६' की और इकार की मात्रा की बनावट में दोनों अशों में कुछ अन्तर ज्ञात होता है"।

समाधान में कहा जा सकता है कि बात ऐसी नहीं है। पुष्पिका के प्रत्येक अक्षर को ध्यानपूर्वक देखने से, ज्ञात होगा कि 'इति' से '॥ ३ ॥' तक अक्षरों में से प्रत्येक युग्म अक्षर एक बार लाल स्याही से पुनः एक बार काली स्याही से लिखे गए हैं। किन्तु यह कहना कि सभी अक्षर लाल

से लिखे गए थे ठीक नहीं। 'इति' के देखने से ज्ञात होता है कि लाल स्याही फीकी थी। अत. जान पड़ता है कि किसी ने बीच के उन युग्म अक्षरों पर जो लाल थे पुनः काली स्याही से लिख दिया है। और "वैराग्य' पर जो लाल स्याही में गलती से एकार की मात्रा लग गई थी वह काली स्याही फेरते समय यों ही छोड़ी थी। वास्तव में, वहाँ "ग्ये' अशुद्ध था और "ग्य' शुद्ध है। 'श्री तुलसी' से लेकर अन्तिम 'इति' पर्यन्त शैली गति और अक्षरों के आकार में भिन्नता नहीं जान पड़ती, और इतना तो शङ्काकार भी मानते हैं कि लिखावट (गोलाई खत, अक्षरों के बीच के फासले और पंक्ति की सीधाई के सम्बन्ध में) एक-सी जान पड़ती है। शङ्काकार को 'क', 'ह', और इकार की मात्रा में जो अन्तर प्रतीत होता है वह उनका भ्रममात्र है। पुस्तक भर में यह देखने को मिलता है कि कभी कोई अक्षर कुछ बड़े तो कभी कुछ छोटे,कभी कुछ तिरछे तो कभी कुछ सीधे हैं। यह बात तो उसी पृष्ठ से भी जानी जा सकती है जिसका चित्र शङ्काकार ने दिया है। इस विषय मे अधिक क्या कहा जाय। शङ्काकार ऐसे व्यतिक्रम से मुक्त नहीं, जैसा कि उनके पत्रों से स्पष्ट है; मैं भी नहीं।

उक्त पुष्पिका के विषय में शङ्काकार को एक प्रबल सन्देह है। "संवत् १६४३ के '१६४' इस प्रकार पुनर्निर्मित है कि वे पंक्ति अन्य अक्षरों और अङ्कों की अपेक्षा बहुत बड़े हो गए हैं। उनकी इस अस्वाभाविक विकृति को देखकर जान पड़ता है कि सम्भवतः किन्हीं दूसरे अङ्कों को बिगाड़कर उनका निर्माण किया गया है।"

यह प्रसन्नता की बात है कि शङ्काकार संवत् १६४३ के '३' को तो ठीक ही समझते हैं। न जाने उन्हें '१' और '४' को भी ठीक मान लेने में क्या अड़चन है, क्योंकि आकार में वे अक्षर और अङ्कों से ज़रा

भी बड़े नहीं। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि '६' अपेक्षाकृत बड़ा है, किन्तु लिपिकार '६' को बड़े आकार का ही लिखता था जैसा कि पुस्तक के अन्य स्थलों से स्पष्ट है। दूर जाने की बात नहीं, रामायण का जो चित्र शङ्काकार ने दिया है उसीके हाशिए पर पृष्ठ संख्या '२६' लिखी हुई है, और उसमें भी '२' की अपेक्षा '६' बड़ा है।

यदि शङ्काकार की यह बात थोड़ी देर के लिए मान भी ली जाय कि '६' के स्थान पर अन्य अङ्क था, तो यह जानना चाहिए कि उसके स्थान पर कौन-सा अङ्क हो सकता था। यह तो असम्भव है कि '६' के स्थान पर '५' अथवा इससे भी पूर्व का और कोई अङ्क रहा हो। 'मानस' १६३१ में लिखा गया था। इसलिए १५३१, १४३१, १३३१, १२३१, ११३१ आदि की कल्पनाएँ निरर्थक है। अतएव '६' के स्थान में यदि हो सकता था तो वह अक '७' '८' अथवा '९' होता। और यदि इनमें से कोई हो, तो उससे बने सवतों की मिति पक्ष मास वार आदि का मेल भी तो होना चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं है। पाठक गणना करके देख लें या किसी विशेषज्ञ से इस विषय में पूँछ लें। हमको भारत-सरकार के पुरातत्व विभाग के डिप्टी डाइरेक्टर जनरल से विदित हुआ है कि पुष्पिका की मिति आपाढ़ सुद ४ शुक्रवार सवत् १६४३ गणना के अनुसार बिलकुल ठीक है, और १७४३ अथवा १८४३ अथवा १९४३ सवत् में उक्त तिथि, पक्ष, मास, वार का योग न था। अत उक्त पुष्पिका का सवत् म किसी भी प्रकार के सदेह की गुंजाइश नहीं।

(३) सूकरक्षेत्र माहात्म्य भाषा। शंकाकार को "देखने में प्रति इतनी पुरानी जान पड़ती है कि उसे विक्रमीय १९वीं शताब्दी का कहा जा सके।" किन्तु उसके प्रत्येक शब्द का दूसरे शब्द से अलग लिखा जाना प्रत्येक शब्द में आनेवाले अक्षर को शिरोरेखा के नीचे लिखा जाना

सूकर क्षत्र माहात्म्य भाषा

महाकवि नन्ददास के पुत्र कवि कृष्णदासकृत
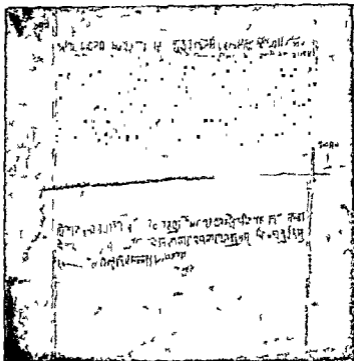
मुरलीधर चतुर्वेद की प्रत, संवत १८०९ वि० । इसके आदि और अन्त में गो... तुलसीदास और महाकवि नन्ददास के पद पर ... पड़ते हैं।

गो० तुलसादास का आतमा
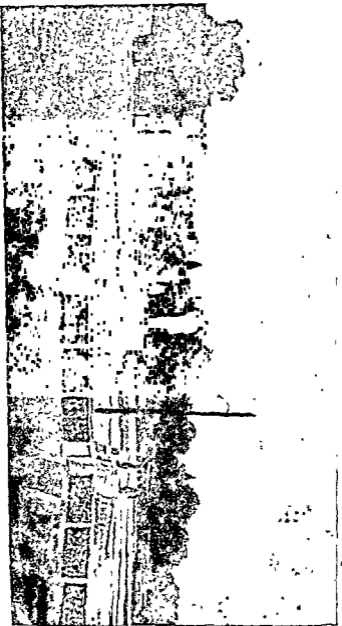
सोरों में श्रीवराह मन्दिर-घाट के सामने, हरि की पैरी नामक

और उन्हें प्रत्येक दूसरे शब्द के अक्षर-समूह से अलग रक्खा जाना खटकता है। "प्रति का लिपि-काल संवत् १८७० दिया गया है, इस समय के लगभग की एक भी प्रति शंकाकार के देखने में नहीं आई है जिसमें उपर्युक्त लेखन शैली वर्ती गई हो।"

उत्तर में निवेदन है कि हमारे देखने में कतिपय ऐसी पुस्तकें आई हैं। जिन पाठकों को पुरानी लिपियों को देखने का अवसर मिला हो वे इस बात के तथ्यातथ्य को भले प्रकार समझ सकते हैं। यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इस पुस्तक की एक और खण्डित किन्तु प्राचीनतर प्रति विद्यमान है, जिसे पण्डित मुरलीधर चतुर्वेदी ने सं० १८०६ विक्रमी में नकल किया था।

(४) रत्नावली। इसके विषय में शंकाकार मानते हैं कि "देखने में प्रति इतनी पुरानी अवश्य जान पड़ती है कि उसे विक्रमीय १६वीं शताब्दी का कहा जा सके"। फिर भी शंका चलती है कि "रत्नावली अब दो संस्करणों में प्रकाशित है। एक पं० भद्रदत्तजी वैद्यभूषण, कासगंज से प्राप्य है, और दूसरा पं० प्रभुदयाल शर्मा, शर्माभवन, इटावा से प्राप्य है। उसमें जो चौथा छप्पय दिया हुआ है वह अवश्य 'रत्नावली' प्रति में नहीं है।"

शंकाकार का कथन वस्तुतः सत्य है, किन्तु शंकाओं के बीच वह भ्रमोत्पादक हो गया है। अतः इसका स्पष्टीकरण आवश्यक है। मुरलीधर चतुर्वेदी ने 'रत्नावली चरित' लिखा था। उसकी नकल उनके शिष्य रामवल्लभ मिश्र ने की। जिस छप्पय का उल्लेख है वह चतुर्वेदीजी की प्रति में अन्य अनेक छप्पयों के साथ विद्यमान है, किन्तु मिश्रजी ने 'रत्नावली' सम्पूर्ण करने के पश्चात् केवल तीन छप्पय दिए हैं जिनमें यह नहीं है। वैद्यभूषण वाली 'रत्नावली' का सम्पादन श्री नाहरसिंह सोलङ्की ने

किया और उन्होंने उस छप्पयको भी सम्मिलित कर दिया । या तो उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए या अथवा उन्हें वहाँ पाद-टिप्पणी दे देनी चाहिए थी। किन्तु मैं पाठकों को यह आश्वासन दे देना उचित समझता हूँ कि चतुर्थ छप्पय एवं अन्य कतिपय छन्द शिष्य की प्रति में नहीं हैं। फिर भी शंकाकार ने इस ओर इशारा कर अच्छा ही किया। हमने उचित समझा कि खोरों की सामग्री को मूल रूप में जनता के समक्ष रख दें और इसी दृष्टि से 'तुलसी-चर्चा' नामक पुस्तक में मई १६४१ तक की प्राप्त सभी आवश्यक सामग्री यथा-सम्भव ज्यों की त्यों उपस्थित कर दी, और प्रस्तुत ग्रन्थ में वह सब एवं तत्पश्चात् प्राप्त खोरों की अन्य सामग्री दी जा रही है।

मुरलीधर चतुर्वेदी की रचना-शैली के विषय में भी शंका इस प्रकार उठाई गई है—"जब हम मुरलीधर चतुर्वेदी-कृत 'रत्नावली' की जाँच करते हैं तो हमें एक बात उसमें भी खटकती है। वह है उसकी शैली और शब्द-विन्यास का अपेक्षाकृत आधुनिक होना। नीचे लिखी पंक्तियों में यह बात ध्यान देने योग्य है—

"सीम प्रेम तुम करी पार, नाथ प्रेम के तुम अधार
मम सुप्रेम निज हिये धार, उतरे पिय सुरसरित पार।
जग अधार पद प्रेम अधार, जात मनुज भव उदधि पार
प्रेम हीन जीवन असार, नाथ प्रेम महिमा अपार ॥"

शंकाकार ने यह निर्देश नहीं किया है कि उक्त पंक्ति में आधुनिकता किन कारणों से है। उन्होंने यह नहीं दिखलाया कि अमुक शब्द छन्द या भाव उन दिनों प्रयुक्त नहीं होता था जिन दिनों की यह कृति है। देहली विश्व विद्यालय के संस्कृत हिन्दी विभाग के अध्यक्ष महामहोपाध्याय डा० लक्ष्मीधर शास्त्री एम. ए., एम. ओ. एल पी. एच-डी. इस कृति को तत्कालीन समझते हैं।

नरसिंह-पाठशाला और हनुमन्मन्दिर

यहीं सोरों में तुलसीदास और नन्ददास के गुरु नरसिंहजी पढ़ाया करते थे।

चित्रकाल : संवत् १९९२ वि०

दे० पृ० २३६

नरसिंह-पाठशाला और हनुमन्मन्दिर

(कुछ नवीन जीर्णोद्धार के पश्चात्)

यहाँ सोरों में तुलसीदास और नन्ददास गुरु नरसिंहजी से पढ़ा करते थे। चित्रकाल संवत् २००५वि.

दे० पृ० २३८

(५) रत्नावली लघु दोहा संग्रह। इसकी दो प्रतियाँ हैं एक तो प० रामचन्द्र बदरियावाले के हाथ की सं० १८७४ में लिखी हुई, और दूसरी ईश्वनाथ पण्डित के हाथकी सम्वत् १८७५ की लिखी हुई। शङ्काकार दोनों प्रतियों को इतनी पुरानी मानते हैं कि वे १६वीं शताब्दी की ही कही जा सकें। वे यह भी लिखते हैं कि "रत्नावली लघु दोहा संग्रह के सम्बन्ध में अवश्य हमें कोई सन्देहजनक बात ज्ञात नहीं होती"।

फिर भी शङ्काकार की विवेचना पक्षपात से रञ्जित होकर इन शब्दों में प्रस्फुटित होती है—"पर सोरों में मिली हुई प्रत्येक अन्य सामग्री के सन्देहास्पद न होने के कारण इस लघु दोहा संग्रह के सम्बन्ध में भी यदि किसी को पर्याप्त विश्वास न हो तो कुछ आश्चर्य नहीं"। इस आक्षेप के उत्तर में केवल यही निवेदन है कि अकारण सन्देह और दुराग्रह का कोई समाधान नहीं। स्वयं शङ्काकार को 'रत्नावली लघु दोहा संग्रह' के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं, यह सोरों का सौभाग्य है।

(६) दोहा रत्नावली। शङ्काकार लिखते हैं कि "दोहा रत्नावली की प्रति यदि कोई प्राचीन प्रति है तो हमें देखने को नहीं मिली, इसलिए उसके सम्बन्धमें हम कुछ भी कहने में असमर्थ हैं"। वे अन्यत्र कहते हैं कि कि प० प्रभुदयालु वाले संस्करण का "आधार कोई हस्त लिखित प्राचीन प्रति है या नहीं यह कहना कठिन है।"

किन्तु क्या यदि कोई वस्तु शङ्काकार को देखने को न मिली तो मानो वह संसार में ही नहीं थी। लखनऊ विश्व विद्यालय के डा० दीनदयालु गुप्त एम० ए०, डी-लिट्, शङ्काकार से पहले ही सोरों हो गए थे। तत्पश्चात् उन्होंने 'गुसाईं तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावलि, नामका लेख लिखा जो जनवरी १६४० की 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका में छपा। उस के द्वितीय पृष्ठ पर वह लिखते हैं "रत्नावलि के दोहा संग्रहों में से ५१

में १११ दोहे हैं, और दूसरे मे २०१ दोहे है। इन्होंने महात्मा तुलसी के जीवन पर भी एक नया प्रकाश डाला है। इन ग्रथों की प्रामाणिकता की मैंने सोरों जाकर जाँच की है और मुझे इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर सन्देह करने का विशेष कारण नहीं ज्ञात होता है। हिन्दी के विद्वानों से निवेदन है कि वे इस सामग्री की निष्पक्ष रूप से जाँच करें"। ऐसा प्रतीत होता है कि डा० दीनदयालु गुप्त के मन म किन्हीं लोगों ने कुछ सन्देह उत्पन्न किए, क्योंकि वह शङ्काकार के एक वर्ष पश्चात् दोबारा फिर सोरों सामग्री की परीक्षा करने आए। किन्तु फिर भी उन्होंने सोरों-सामग्री को प्रामाणिक ही पाया। जनवरी १९४१ कि 'हिन्दुस्तानी' म उन्होंने 'महाकवि नन्ददास का जीवन चरित्र' लिखा। उसके २६६ पृष्ठ पर उन्होंने लिखा कि "मैंने दोबारा सोरों जाकर इन ग्रन्थों का अवलोकन किया है। मुझे ग्रन्थ प्रामाणिक जान पड़े हैं।"

'दोहा रत्नावली' की एक और प्रति बदायूँ से प्राप्त हुई, जिसको गोपालदास नामक व्यक्ति ने गङ्गाधर से भी पहले १८२४ वि० में नकल किया था। इन दोनों की और लघु दोहा संग्रहों की प्रतिलिपियाँ पाठान्तर सहित 'तुलसी चर्चा' में और प्रस्तुत पुस्तक में सङ्कलित हैं। शङ्काकार का जो भी विचार हो उनके गुरु डॉ० श्री धीरेन्द्र वर्मा एम. ए., डी-लिट्. अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्व विद्यालय तो रत्नावली के दोहों की भावुकता पर प्रभावित अवश्य हुए हैं और वह कृति को पुरानी समझते हैं।

(७) गोस्वामी तुलसीदास का घर। "मुहल्ला जोग मारग (योग मार्ग) में बुद्धू गद्दी नामक एक मुसल्मान ग्वाले (?) का कच्चा मकान है। कहा जाता है कि उसी मकान के स्थान पर पहले गोस्वामी जी का मकान था। शङ्काकार इसपर यों विचार करते हैं कि यह मकान किसी पुराने मकान के

अवशेष पर बनाया हुआ जान पड़ता है। चहार दीवारी का फाटक स्पष्ट ही किसी पुराने फाटक के भग्नावशेष पर बनाया हुआ है......मुसलमानों की एक बस्ती है जिसमें कसाई भी हैं"। "कवि के घर के सम्बन्ध में सोरों मे एक जनश्रुति है. 'तुलसी घर मरघट में गल कटियन के पास। अपनी करनी आप सग तू क्यों होय उदास ॥' ऊपर हमने जिस मकान की स्थिति देखी है उसके सम्बन्ध में यह जनश्रुति लागू हो सकती है, इसमें सन्देह नहीं। इस मकान के साथ एक और परम्परा लगी चली आती है। सोरों के लोगों का यह विश्वास है कि इस मकान की मिट्टी कनवर (कर्णमूल प्रदाह) नामक रोग मे गुणकारी होती है, और इसीलिये वे अब भी इसे ले जाते हैं और उपर्युक्त रोग में इसका प्रयोग करते हैं"। इस विषय मे शङ्काकार की शङ्का है कि "इस परम्परा से यह बात सिद्ध नहीं होती कि वह मकान, जिसकी मिट्टी लोग इस प्रकार ले जाते हैं तुलसीदास का था"। किन्तु इस विषय में यह ध्यान देने योग्य है कि उक्त तथ्य निरी परम्परा ही नहीं, इसका उल्लेख मुरलीधर चतुर्वेदी ने १८२६ में, अर्थात् आज से १७६ वर्ष पहले, "रत्नावली चरित" में इस प्रकार किया है—'चरन सदन रज जासु कोइ, धरत देह रुज रहित होइ'।

मकान के बारे में शङ्काकार ने एक विचित्र खोज की है जिसका कदाचित् उन्हें गर्व है। वह लिखते हैं "इस मकान के सम्बन्ध में एक और बात है जिससे सोरों को तुलसीदास की जन्मभूमि माननेवाले लोग प्रकाश में नहीं लाते। मुझे स्थानीय जॉच से यह ज्ञात हुआ है कि उपर्युक्त मकान, उससे मिले-जुले कुछ मकान भी पहले राजोरियों के थे (शुक्लों के नहीं) और वे राजेरिया घराने भी धीरे धीरे नष्ट हो गए यह बात लेखक को कुछ कठिनाई के बाद ज्ञात हुई, क्योंकि सोरों का अधिकांश जन-समाज यह चाहता है कि सोरों तुलसीदासजी की जन्म भूमि मानी जाय, और यह बात कदाचित् उसके मार्ग मे बाधक होती। फलतः अबतक इस बात का कोई

विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिल जाता कि वह घर शुक्लों का था प्रस्तुत लेख उसे राजोरियों का ही मानेगा।"

समाधान रूप से निवेदन है कि जब तुलसीदास सोरों के थे ही वे सोरों का अधिकांश जन-समाज क्यों न चाहे कि सोरों गोस्वामी तुलसीदा की जन्मभूमि समझी जाय। यह इच्छा तो स्वाभाविक और उचित थी। योग-मार्ग के वे सभी मकान राजोरियों के थे शुक्लों के नहीं यह तथ्य नहीं। उस मोहल्ले में तो और भी आस्पदवाले ब्राह्मणों के घर थे और हैं। यदि स्पष्ट और प्रभूत प्रमाणों के विरुद्ध भी शङ्काकार गोस्वामीजी को सोरों का नहीं मानना चाहते तो उन्हें अधिकार है चाहे जो मानें। वह कुछ दिन तक भाषा-विज्ञान के सहारे 'राजोरिया' शब्द को 'राजापुरिया' का विकृत रूप समझते थे। ठीक ही हुआ कि उन्होंने अपनी धारणा पीछे से बदल डाली, नहीं तो सोरों के राजोरियों को बाँदा जिले के राजापुर से आए हुए सिद्ध कर डालते शङ्काकार ने स्वयं बताया है कि राजोरा आगरे जिले में आगरा शहर से पचीस मील की दूरी पर है। अतएव यदि राजोरियों का निकास राजोरा से मानें तो इसमें सिद्धांत की क्या हानि हुई! दिल्ली अथवा लखनऊ का रहनेवाला कलकत्ता में भी बैठकर अपने को दहलवी अथवा लखनवी कहता है। आगरे के रहनेवाले हमारे परिचित एक सुनार और एक खत्री अपने नाम के आगे राजोरा लगाते हैं। मथुरा का मूल-निवासी मथुरिया कहा जाता है, तो राजोरा का मूल-निवासी भी राजोरिया कहा जा सकता है। पर क्या यह नितान्त आवश्यक है कि राजोरिया शुक्ल नहीं हो सकता। क्या यह आवश्यक है कि राजोरिया ब्राह्मण ही हों और क्या असम्भव कि राजोरियों के मकान में शुक्ल नहीं रह सकते अथवा शुक्लों के घर में राजोरिया नहीं रह सकते? समय के बीतने पर राजोरियों का मकान शुक्लों का कहलाने लगता है, अथवा शुक्लों का मकान राजोरियों का। ये तो रहीं कल्पना की बातें। अविनाशरायकृत 'तुलसी-प्रकाश' से तो

स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास के पिता प० आत्माराम शुक्ल थे, किंतु वह रामपुर से आकर राजोरिया वंशीय ननसाल के सूने घर में सोरों आवसे थे।

(८) गोस्वामी तुलसीदास के चचेरे भाई महाकवि नन्ददास का घराना। इस विषय में शङ्काकार इस प्रकार लिखते हैं—"वहाँ पर सनाढ्य शुक्लों का एक घराना है, जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह नन्ददास की वंश परम्परा में है। इस समय इस कुल में एक पण्डित बाबूराम हैं और उनका एक भतीजा है जो उनके भाई उन स्वर्गीय मुरारी लाल का पुत्र है जिनसे 'मानस' की उपर्युक्त प्रतियों की प्राप्ति बताई जाती है।" शङ्का इस प्रकार है—"इस बात का यथेष्ट प्रमाण कोई नहीं है कि बाबूराम शुक्ल और उनके घरवाले नन्ददास के वंशज हैं। स्वर्गीय मुरारीलाल का कथन-मात्र इस सम्बन्ध में प्रमाण नहीं हो सकता। सोरों यात्रा में मैंने बाबूरामजी से मिलना चाहा, पर वे बाहर चले गये थे। इसलिए मिलना न हो सका। पर जो कुछ मैंने उनके सम्बन्ध में वहाँ सुना उससे मुझे सन्देह हुआ कि वे भी अपने को नंददास का वंशज कहते हैं या नहीं।"

शङ्काकार ने यह नहीं लिखा कि बाबूराम जी के विषय में उन्होंने क्या सुना, लिख देना उचित था। न जाने उनका 'यथेष्ट प्रमाण' से क्या तात्पर्य है। राजा महाराजाओं एवं कुछ समृद्ध वंशों को छोड़कर बहुत कम कुल ऐसे हैं जो अपने पुरखों की बीस-तीस पीढ़ियों का विवरण दे सकें। जनश्रुति में तो कुछ न कुछ विश्वास करना ही पड़ता है। गोस्वामीजी का जन्म-स्थान सोरों था इसमें केवल जन श्रुति ही तो प्रमाण नहीं है, स्वयं गोस्वामी जी की कृतियाँ एवं अन्य सामग्री भी तो है। अतएव अनुकूल जनश्रुति तो प्रमाण ही समझी जायगी। हम कल्पना नहीं कर सकते कि बाबूरामजी के भाई स्व० मुरारीलाल जी का कथन क्यों प्रमाण नहीं हो सकता। और

यदि बाबूरामजी उस समय जब कि शङ्काकार सोरों आये थे कहीं बाहर गए हुए थे, तो शङ्काकार, सत्यशोध के लिए और कुछ समय सोरों में ठहर जाते। पण्डित बाबूराम तो अपने को नन्ददासजी का वंशधर बताते हैं और सोरों के बहुत से लोग इस कथन में विश्वास करते हैं—यह क्या कम बात है?

(६) सोरों का नरसिंह मंदिर। इसके विषय में शङ्काकार लिखते हैं—"सोरों में चौधरियों के मुहल्ले में पक्के मकान का एक खड्हर है। यह नरसिंहजी के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें प्राचीन अंश पूर्व और पश्चिम का है, दक्षिण का अंश अपेक्षाकृत नवीन है, और उत्तर की ओर कोई बनावट नहीं रह गई है। इसमें अब केवल हनुमानजी की एक मूर्ति है और कुछ नहीं है।" शङ्काकार को यहाँ दिशा-भ्रम हुआ है।

शङ्का आगे चलती है—"नरसिंहजी के मन्दिर के सम्बन्ध में जाँच करते हुए मैं उस स्थान के पटवारी मुंशी गिरिजाशंकर से मिला, और उनसे मैंने उक्त मंदिर की खतौनी जमाबन्दी प्राप्त की। उस खतौनी में लिखा है 'मन्दिर नरसिंहजी महाराज'। प्रश्न यह है कि क्या यह शब्दावली इस बात की सूचना देती है कि उक्त मन्दिर किन्हीं नरसिंह चौधरी का था? कम से कम प्रस्तुत लेखक तो इस शब्दावली का आशय यह लेगा कि यह मन्दिर नृसिंह भगवान् का, न कि किन्हीं नरसिंह चौधरी का। 'जी' और 'महाराज' शब्द तो कम से कम इसी ओर संकेत करते हैं।"

शङ्काकार ने यह बहुत अच्छा किया कि उन्होंने पटवारी से यह सूचना प्राप्त की कि वह स्थान 'मन्दिर नरसिंह जी महाराज के नाम से दर्ज है। नहीं तो यह सन्देह बना रहता कि कदाचित् वह मन्दिर ईश्वर चतुर्थावतार नृसिंह भगवान् का ही हो। 'जी' का प्रयोग तो मनुष्य प्रायः दूसरे के लिए करते हैं। मैंने अनेक बार डा० माताप्रसाद गुप्त को केवल

जी लिखा है, और स्वयं डाक्टर साहब ने उन पोस्टकार्डों पर जो मेरे सामने पड़े हैं इस प्रकार नाम लिखे हैं :—श्री पण्डित बालजी द्विवेदी, श्री पण्डित भद्रदत्तजी शर्मा। मेरे कहने का तात्पर्य है कि 'जी' शब्द आदरसूचक है; और क्या मनुष्य क्या देवता सभी के लिए प्रयुक्त होता है कदाचित् मनुष्यों के लिए अधिक; क्योंकि 'विष्णुजी' की अपेक्षा 'विष्णु भगवान्' ऐसा कहना अधिक आदर-पूर्ण प्रतीत होता है। और महाराज शब्द तो राजाओं के लिए प्रयुक्त होता है, यथा महाराज हर्षवर्धन, महाराज कश्मीर। 'महाराज' शब्द ब्राह्मणों के लिए भी प्रयोग में आने लगा और इतना अधिक कि अब-तो वह शब्द रसोइया अथवा पानी पिलानेवाले ब्राह्मण का भी द्योतक है। 'जी' और 'महाराज' दोनों शब्द मिलकर इस बात के साक्षी हैं कि गो० तुलसीदास के गुरु नरसिंह (अथवा नृसिंह) जी एक आदरणीय ब्राह्मण व्यक्ति थे, जो अपने समाज में चौधरी समझे जाते थे।

एक बात और है। यदि यह मन्दिर नृसिंह भगवान् का होता तो इसमें नृसिंह भगवान् की मूर्ति भी होती। यह कैसे हो सकता है कि हनुमान्जी की मूर्ति तो बनी रहती और नृसिंह भगवान् की प्रधान मूर्ति जिनके नाम पर वह मन्दिर प्रख्यात होता वहाँ से हट जाती। अतः शंका-कार को इस विषय में फिर से विचार करना चाहिए।

(१०) सोरों में नरसिंहजी चौधरी के उत्तराधिकारी। शंकाकार-इस विषय मे इस प्रकार लिखते हैं. "इसी मुहल्ले में चौधरियों के कुछ-घर हैं जो हमारे कवि के गुरु नरसिंहजी चौधरी के वंशधर बताए जाते है। पंडित रङ्गनाथ आजकल इनके मुखिया हैं"। "अपनी सोरों यात्रा में मैं पंडित रङ्गनाथ चौधरी से मिला था। उनसे प्रश्न करने पर ज्ञात-हुआ कि उन्हें केवल अपने आठ पूर्व-पुरुषों के नाम ज्ञात हैं, और इनमें से नरसिंह चौधरी नहीं हैं। उपर्युक्त मन्दिर अवश्य उनके घराने के

मे चला आ रहा है। किन्तु केवल इतनी बात से यह सिद्ध नहीं होता कि उनके कोई पूर्व-पुरुष नरसिंह चौधरी नाम के थे जो तुलसीदासजी के सम-कालीन थे, या इतना भी कि मन्दिर का नाम 'नरसिंहजी महाराज का मन्दिर' उनके किन्हीं पूर्व-पुरुष के नाम से सम्बन्धित होने के कारण पड़ा। एक बात अवश्य है जिससे यह ज्ञात होता है कि पंडित रङ्गनाथ और पंडित बाबूराम के घरानों में कुछ पूर्व काल से सम्बन्ध चला आ रहा है। भागीरथी की गुफा में, जो मौजा होडलपुर में है, दोनों घरानों का हिस्सा है। पंडित बाबूराम उसके चढ़े हुए द्रव्य का तीन-चौथाई और पंडित रङ्गनाथ एक-चौथाई लिया करते हैं। यह बात प्रस्तुत लेखक को उस ग्राम के पटवारी मुंशी महावीर शंकर से भी ज्ञात हुई थी।"

उक्त शंकाओं के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि यह क्या कम है कि पंडित रंगनाथजी ने अपने आठ पूर्व-पुरुषों के नाम बता दिए। संसार में कितने व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें अपने से चार पूर्व-पुरुषों के नाम स्मरण हैं। सोचने की बात है कि गुरु नरसिंहजी का नाम रंगनाथजी की आठ पूर्व-पीढ़ियों में कैसे हो सकता था, जिन्हें आज साढ़े-तीन सौ वर्ष से अधिक हो चुके हैं? अतएव रङ्गनाथजी ने अपने से आठ पूर्व-पीढ़ियों में नरसिंह जी का उल्लेख नहीं किया तो उन्होंने सत्य का ही पालन किया। तिस पर क्या रङ्गनाथजी अपने को नरसिंहजी का वंशधर नहीं मानते? यदि वह अपने को नरसिंहजी का वंशधर न मानते होते तो शंका की बात भी थी। किसी वंश मे यदि कोई अत्यन्त प्रसिद्ध व्यक्ति हो जाता है तो उसमे उसकी चिरस्मृति 'प्रवर' रूप से बनी रहती है और यह आवश्यक नहीं कि उसके आगे-पीछे के सभी पुरुषों के नाम स्मरण रहें। प्रकृत बात तो ऐसी ही है। शंकाकार बताते हैं कि पंडित रङ्गनाथ और बाबूरामजी के घरानों में सम्बन्ध भी चला आ रहा है। नरसिंहजी और नन्ददासजी का सम्बन्ध तो गुरु शिष्य का था ही, अतः तब से अब तक वह सम्बन्ध रूपान्तर

से बना हुआ है। इसमें न तो कोई आश्चर्य की और न किसी विशेष महत्व की बात है। महत्वपूर्ण बात तो यही है कि स्वयं पंडित रङ्गनाथ जी अपने को गुरु नरसिंहजी का वंशधर मानते और कहते हैं और सोरों के अन्य व्यक्ति भी उन्हें उस गुरु का वंशज मानते हैं। इस बात में अवि-श्वास करने का कारण भी क्या, जब अन्य प्रमाणों से भी नरसिंहजी का सोरों में होना सिद्ध होता है?

शंकाकार की इतनी ही शंकाएँ थीं।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधान मन्त्रीके पत्र पर विचार—

[पत्र]

पत्र संख्या २६७४ — हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
मिति सौर १३, १, संवत् २००
ता० २६, ४, १९४८

प्रेयवर भारद्वाजजी,

सस्नेह नमस्कार!

आपका १८-४-४८ का कृपापत्र मिला। धन्यवाद। सोरों सामग्री की विस्तृत जाँच प्रयाग विश्वविद्यालय के लेक्चरर तथा मेरे सहयोगी डा० माताप्रसाद गुप्त ने की है। अन्त में गुप्तजी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यह सामग्री जाली है। इसी सम्बन्ध में पं० चन्द्रबली पाण्डेय एम. ए. के जो कई लेख हिन्दुस्तानी एकेडेमी से प्रकाशित होनेवाली 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका में प्रकाशित हो चुके हैं, उन अकाट्य तर्कों को आप अपनी लेखनी से अन्यथा सिद्ध नहीं कर पाये हैं। ऐसी अवस्था में सोरों की सामग्री को जाली के अतिरिक्त क्या कहा जाय? मैं भाषा शास्त्र का

एक साधारण विद्यार्थी हूँ। मेरे अध्ययन का विषय भोजपुरी तथा अवधी है। रामायण की भाषा की परीक्षा के पश्चात् यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इसके लेखक की मातृभाषा अवधी के अतिरिक्त दूसरी नहीं थी। सोरों तो स्पष्ट ब्रजक्षेत्र में है। इस सम्बन्ध में पण्डित रामचन्द्रजी शुक्ल ने अपने इतिहास के नवीन संस्करण में जो प्रमाण दिए हैं, वे एक प्रकार से अकाट्य हैं।

परम्परा से गोस्वामीजी की जन्मभूमि राजापुर ही बतलायी जाती है। हिन्दी साहित्य के प्रथम इतिहास लेखक गार्सां द तासी भी गोस्वामीजी की जन्मभूमि बाँदा जिले ही में मानते हैं। यह पुस्तक उन्नीसवीं शताब्दि के आरम्भिक भाग में पैरिस में फ्रेंच भाषा में छपी थी। जबतक आप इन सब बातों को अन्यथा सिद्ध न कर दें तबतक गोस्वामीजी की जन्मभूमि आप सोरों सिद्ध नहीं कर सकते।

गोस्वामीजी इस देश के महान् व्यक्तियों में से थे। गाँधीजी की भाँति यदि प्रत्येक नगरमें भी उनका स्मारक बनाया जाय तो वह थोड़ा ही होगा। ऐसी स्थिति में आप उनके स्मारक के लिए जो उद्योग कर रहे हैं उसके लिए आपको अनेक बधाइयाँ।

आशा है आप प्रसन्न हैं।

भवदीय,
उदयनारायण तिवारी,
एम. एम., डी. लिट्,
प्रधान मन्त्री

अंग्रेज विद्वान् भी मानते हैं; किन्तु कालान्तर में उनकी भाषा-मात्र के आधार पर उन्हें इंगलैंड-जात सिद्ध करने की चेष्टा जितनी उपहास्यास्पद होगी।

(घ) यदि स्व० रामचन्द्र शुक्ल ने राजापुर के पक्ष में कल्पनाएँ की हैं, तो साथ ही पं० गोविन्दवल्लभ भट्ट और पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने सोरों के पक्ष में अनेक शब्द और युक्तियाँ उपस्थित की हैं।

(च) स्व० पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने रामायण के 'सूकर खेत' को सरयू-घाघरा सङ्गम पर सिद्ध करने की जो खींचा-तानी की है वह बड़ी असफल रही है। उस विषय में उन्हें जितनी सूचना प्राप्त थी उससे अधिक का उल्लेख तो पूर्व पक्ष रूप से मैंने 'सूकर खेत' नामक अध्याय में कर दिया है। जिस सूकरखेत का उल्लेख रामचरित-मानस में है उससे केवल सोरों का तात्पर्य है, क्योंकि इस विषय में अनेक प्रमाण हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त के कुछ लेखों से, डा० श्यामसुन्दरदास के प्राचीन लेखों से सूकरखेत सोरों है यह बात स्पष्ट है। १९४४ की 'सरस्वती' में हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के प्रधान महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन ने रामायण के सूकरखेत से सोरों का ही अर्थ ग्रहण किया है। पं० भद्रदत्त शर्मा ने 'तुलसी-चर्चा' में सूकरखेत का विशद और निर्भ्रान्त विवेचन किया है, और मुझे भी प्रस्तुत पुस्तक में और अधिक प्रकाश डालने का अवसर प्राप्त हुआ है। डा० श्री धीरेन्द्र वर्मा लिखते हैं कि "शूकर-क्षेत्र वर्तमान सोरों ही है, इस सम्बन्ध में मतभेद के लिए गुंजाइश नहीं।"

[४] डा० उदयनारायण तिवारी ने गार्सां द तासी (१८३९ ई०) का उल्लेख किया है; सम्भवतः वह विलसन (१८३१ ई०) का उल्लेख करना भूल गए हैं; किन्तु उक्त दोनों लेखकों की कृतियाँ तो गोस्वामी का जन्मस्थान हाजीपुर बताती हैं, राजापुर नहीं। उन्हें स्वयं उक्त कृतियों में आस्था नहीं; यदि होती तो वह गोस्वामीजी के

सूकर-खेत का परिचय

(सोरों, जिला एटा)

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सु सूकर खेत ।

—गो० तुलसीदास

सूकरक्षेत्र प्राचीन ही नहीं, किन्तु इतिहास की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण स्थान है; इसे शौकरव, वराह क्षेत्र, वराह तीर्थ और सोरों भी कहते हैं। वराह+

\+ पृथिव्यां यानि तीर्थानि आसमुद्र सरांसि च ।

कुब्जाम्रक प्रशंसन्ति सदा मद्भाव भाविता. ।

तस्मात्कोटि गुणा पुण्य सौकरं तीर्थ मुत्तमम् ।

—वाराह पुराण, १७६-२६

यत्र भागीरथी गङ्गा मम सौकरवे स्थिता

तत्र सत्या च मे देवि द्रुद्धृताऽसि रसातलात्

Ibid 137-7

एकाह मार्गशीर्षाञ्च द्वादश्यां सित वैष्णवम्

गङ्गा सागरिक नाम पुराणेषु च पठ्यते ।

Ibid 179-27

ज्येष्ठ शुक्लस्य नवम्यां स्नात्वा गङ्गोदके नरः

शूकरे तु विशनश्च मानवो दीपद· सकृत् ।

दत्त्वा दान यथा शक्त्या सर्व पापै प्रमुच्यते ।

Ibid 176-47

वराह पुराण सूकरक्षेत्र के छः पवित्र स्थलों का उल्लेख करता है, ये आज भी सोरों में विद्यमान हैं:—चक्रतीर्थ, योगमार्ग, वैवस्वत, सोमतीर्थ, गृध्रवट और शाकोटतीर्थ, जिनमे से कुछ का उल्लेख पृथ्वीराज रासो मे भी मिलता है।

उक्त पत्र पर विचार

[१] (क) डा० माताप्रसाद गुप्त के लेख सोरों सामग्री की परीक्षा पर सम्मेलन-पत्रिका के कुछ अङ्कों (संवत् १६६७ वि०) में, तदुपरान्त 'तुलसीदास' नामक उनकी कृति में प्रकाशित हुए थे। गुप्तजी ने सोरों-सामग्री पर कुछ सन्देह तो उपस्थित किए हैं, किन्तु उन्हें जाली नहीं बताया है; प्रत्युत उसके कुछ अंश तो उन्हें ठीक भी लगे हैं।

मैंने डा० गुप्त के लेखों की प्रत्यालोचना सम्मेलन-पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेजी थी और उसमें मैंने उनके सभी संदेहों का सविस्तर समाधान किया था, और यह भी बताया था कि गुप्तजी ने वे लेख किन परिस्थितियों में लिखे थे। किन्तु हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने मेरी वह प्रत्यालोचना नहीं छापी। इसकी भी एक कहानी है। नागरी-प्रचारिणी-सभा ने भी वह लेख, बिना कोई कारण दिए, लौटा दिया था। आलोचन और प्रत्यालोचन एक ही पत्र में छपने चाहिए थे। जब नहीं छपा, तो मैंने वह लेख 'नवीन भारत' में प्रकाशित करा दिया; उसका कुछ अंश १९४१ ई० में और कुछ १९४६ ई० में छपा था। वह लेख कुछ विद्वानों को बहुत पसंद आया। प्रस्तुत पुस्तक में उसका केवल वह अंश है जिसका साहित्य से (व्यक्तिगत आक्षेप और धाँधली से नहीं) सम्बन्ध है। मेरी समझ में गुप्तजी का ऐसा कोई सन्देह शेष नहीं जिसका समुचित उत्तर, तर्क और प्रमाण के आधार पर न दिया गया हो।

(ख) श्री चन्द्रबली पाण्डे एम. ए. ने 'सोरों की टकसाली-सामग्री' का अवलोकन कभी नहीं किया। उनकी आलोचना का मुख्य आधार डा० माताप्रसाद गुप्त के ही विचार हैं। इस आधार के अतिरिक्त जो शब्द उन्होंने लिखे हैं, उन्हें केवल 'अनर्गल उद्गार' कहा जा सकता है।[1]

[1] प्रयाग विश्व-विद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष डा० —

एम. ए., डी. लिट्. रत्नावली के दोहों की भावुकता से प्रभावित हुए हैं और उनकी सम्मति में कृति पुरानी हो सकती है। लखनऊ विश्व-विद्यालय के डा० श्री दीनदयालु गुप्त एम. ए., डी. लिट्, रत्नावली के दोहों में वियोग-वेदना की स्वाभाविक व्यञ्जना, सरलता और शिष्टता का अनुभव करते हैं और लिखते हैं कि "रत्नावलि के काव्य की तुलना केवल मीरा के काव्य से ही की जा सकती है अन्य कवयित्रियों का जैसे दयाबाई, सहजोबाई, ताज आदि के काव्य उसके काव्य की तुलना में बहुत साधारण दर्जे के हैं।" किन्तु श्री पाण्डेजी की राय में रत्नावली के दोहे कृत्रिम, नीरस और शुष्क हैं। "जाकी रही भावना जैसी—।"

सोरों-सामग्री के विषय में पाण्डेजी का अध्ययन और मनन अपर्याप्त है। उनके शब्दों से यह स्पष्ट है कि वह रत्नावली के एवं अन्य सामग्री के भाव-गाम्भीर्य तक नहीं पहुँच पाये हैं। उन्हें 'सूकर क्षेत्र माहात्म्य' के विषय में स्मरण रखना चाहिए कि वह १६७० विक्रम संवत् में कृष्णदास द्वारा लिखा गया, और १८७० ईसवी में, अर्थात् आज से लगभग ८० वर्ष पहले छप भी गया था। वह 'माहात्म्य' एकेला ही गोस्वामी तुलसीदास, नन्ददास, सूकर-क्षेत्र (सोरों), गुरु नरसिंह, रत्नावली, रामपुर-श्यामपुर आदि के विषय में साक्ष्य रूप से, पर्याप्त है। पाण्डेजी को यह भी स्मरण रखना चाहिए कि १८७४ ई० का छपा बाँदा गजटियर भी स्पष्ट रूप से बताता है कि *गोस्वामी तुलसीदास सोरों* (जिला एटा) के थे और उन्होंने राजापुर (जिला बाँदा) की नींव डाली थी; राजापुर के बड़े-बूढ़े भी ऐसा ही कह चुके हैं, अतः कोरी कल्पनाओं और निराधार आक्षेपों से अब काम नहीं चलेगा। लफ़्फ़ाजियों की अपेक्षा इतिहास विज्ञान का दृष्टिकोण ही अधिक उपयुक्त होगा।

(ग) कदाचित् यह कहना अनुचित न होगा कि लखनऊ विश्व-

विद्यालय के डा० दीनदयालु गुप्त सोरों सामग्री की परीक्षा करने दो बार; एक बार डा० माताप्रसाद गुप्त से कुछ पहले और दूसरी बार उनसे एक वर्ष पश्चात्, पधारे थे और दोनों बार उन्होंने उस सामग्री को प्रामाणिक समझा। सामग्री का जो भाग माताप्रसादजी को देखने को न मिल सका उसे दीनदयालु पहले देख चुके थे। अतः इस विषय में आक्षेप के लिए कोई अवसर नहीं है।

[२] "गोस्वामी तुलसीदास" नामक पुस्तिका का जो उल्लेख हुआ है, उसके विषय में केवल यह निवेदन है कि वह पुस्तिका तुलसी-स्मारक समिति कासगञ्ज ने प्रकाशित कराई थी। उसमें तुलसीदासजी का, सोरों सिद्धांत के अनुकूल, सरल परिचय-मात्र था और टिप्पणी रूप से उक्त सामग्री के कुछ प्रधान उद्धरण भी थे। वह पुस्तिका तो खण्डन-मण्डन से नितान्त दूर है। हाँ, 'तुलसी चर्चा' नामक पुस्तक में, जिसकी प्रति हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग के पुस्तकालय में विद्यमान है; खण्डन-मण्डन अवश्य है; और विस्तृत खण्डन-मण्डन एवं अद्यतन अनुसन्धान का समावेश प्रस्तुत पुस्तक में भी है।

[३] (क) डा० उदयनारायण तीवारी भाषाशास्त्र के विशेषतः भोजपुरी और अवधी के पण्डित हैं, यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई क्योंकि मुझे भी भाषा-विज्ञान में कुछ रुचि है और मैंने अपने 'सत्ता-सूनम्' का दार्शनिक आधार भी भाषा विज्ञान ही रक्खा है।

सोरों की सामग्री इतनी प्रचुर मात्रा में विद्यमान है कि मैं गोस्वामी-जी के जन्म-स्थान निर्णय के विषय में कोरी कल्पनाओं को महत्व नहीं देता। मेरी नवीन सम्मति में रामचरित-मानस की भाषा की वास्तविक परीक्षा के लिए पहले उसका एक ऐसा सस्करण तैय्यार होना चाहिए जिसमें सभी प्रसिद्ध हस्त लिखित प्रतियों के पाठान्तर और वर्तनाएँ मिल सकें। मैंने जब सोरों

के 'अरण्य-काण्ड' की स्वयं नकल की और तत्पश्चात् उसका काशीराज की प्रति से मिलान किया तो मुझमें उपर्युक्त इच्छा का उदय हुआ। श्री शंभुनारायण चौबे ने कुछ अच्छा काम किया है, किन्तु इस दिशा में अभी बहुत शेष है। यदि रामचरित-मानस का ऐसा संस्करण तैय्यार हो जाय, तो तत्कालीन वर्णनाओं और पाठान्तरों का ही नहीं अपितु गोस्वामीजी के मानसिक विकास का क्रमिक परिचय भी प्राप्त हो सकेगा, ऐसी मेरी प्रबल धारणा है। इस सम्बन्ध में मैं अपने कुछ विचार "रामचरित-मानस : भाषा और पाठांतर" नामक अध्याय में कर रहा हूँ, जो सन् १९४२ ई० के "नवीन भारत" के 'भारत साहित्य' नामक अंक में लेख रूप से प्रकाशित हुआ था।

(ग) एक बात और है। मान भी लिया जाय कि रामचरितमानस की भाषा अवधी ही है, तो इससे यह निर्णय नहीं हो जाता कि गोस्वामीजी का जन्मस्थान सोरों नहीं था। सब लोग जानते हैं कि विश्वविद्यालय के छात्र कुछ वर्षों में ही भाषाओं में कितने पटु हो जाते हैं। तुलसीदासजी ने संवत् १६०४ वि० में सोरों छोड़ा था और तब से वह अयोध्या, राजापुर, काशी आदि पूर्व के ही प्रदेशों में रहते रहे, और उन्होंने १६३१ वि० में रामचरित-मानस को प्रारम्भ किया, अर्थात् सोरों छोड़ने के २७ वर्ष पश्चात्। इतने समय में उन्हें यदि अवधी भाषा पर भी अधिकार हो गया तो इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। गोस्वामीजी की सर्व-श्रेष्ठ रचना 'विनय-पत्रिका' समझी जाती है, जो शुद्ध और उत्कृष्ट ब्रजभाषा में है; उनके लोक-प्रिय रामचरित-मानस की भाषा मजावधी है, जो सोरों की भी है; और उनके पार्वतीमङ्गल और जानकीमङ्गल शुद्ध अवधी में है। गोस्वामीजी को तो तीनों भाषा-बोलियों पर अधिकार था। अतः मैं तो तुलसी-जन्मस्थान के लिए रामायणकी भाषा का आधार तनिक भी आवश्यक नहीं समझता। श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन् और स्व० रवीन्द्रनाथ ठाकुर को अंग्रेजी भाषा पर जो अधिकार है या था, उसकी धाक सारे

श्री वराह मन्दिर-घाट

वि कृष्णदासकृत **सूकर क्षेत्र माहात्म्य** संवत् १७० ?०

ऩ ़ाय की प्रति । कृष्णदास और नन्ददास

तपस्या द्वारा भगवान् विष्णु को प्रसन्न किया; उन्हें वर मिला कि यह स्थान रुचुकिया नाम से प्रसिद्ध हो और वह पवित्र कौतुक नगर हो। ऐसी भी जन श्रुति प्रचलित है कि चक्रवर्ती राजा वेन ने गंगा और काली नदी के किनारे सोरों और अतरंजी में दो दुर्ग बनवाए थे। इस द्वितीय जनश्रुति का उल्लेख एटा गजेटियर में भी मिलता है। श्री ईश्वर बहादुर शर्मा ने २३ सितम्बर के 'नवीन-भारत' में भीमदेव बघेला-कृत कुछ पंक्तियाँ जनता के सम्मुख उपस्थित की थीं जो इतिहास के बड़े काम की हैं*। भीमदेव

बघेला आमेर के राजा मानसिंह के सेनाध्यक्ष थे और अपने स्वामी की मृत
के पश्चात् अतरजी के निकट अपने जन्म स्थान मे आ बसे। उन्हें कवित

चुलुक पान करि तप कर्यो तासों तू चौलुक भयो
तपोभूमि चुलुका भई इमि वर दे निज थल गयो
भूपति चौलुक पुन पौत्र हू सब मे ज्ञानी
तिनहूँ को जे रही रम्य सोरम रजधानी
तेहू सन्तति सहित सबहि चौलुक्य कहाए
तेहि स तति बहु देस जीति तह वास बनाए
सोरम तीरथ सा चली बहु देसन में बसि गई
सोरम की इमि ख्याति जग चौलुक नृप सतति भई

× × ×

इक सोरम को गाम बघेला वास बनायो
पीढ़ी तासु अनेक तहहि निज काल बितायो
बाढी बहु सतान और देसनु तब धाई
बसि विदेस मह सोई बघेला साखि कहाई
ताहि साखि हम हू भये भीमदेव हरदेव सुत
काली सरि तट हम बसत अलिखीपुर बधुजुत
मान नृपति मतिमान मान हम कहँ दीनौ
टेरि राजि आमेर हमहि सेनापति कीनौ
रहे बरस दस एक मान नृपति सुरग सिधाए
आए हम घर लौटि चित्त गुरु चरननु लाए
सुगुरु कृपा सों छन्द को भयो जथामति ज्ञान है
कच्छवाह कुल लिखि लिख्यो चालुक वश महान है
चौलुक देव सुआल पूत बेन प्रतापी

से कुछ प्रेम था, अतः उन्होंने 'कच्छवाहकुल-प्रदीप' और 'चालुक वंश-प्रदीप' नामकी दो पुस्तकें लिखीं। पिछली रचना से पता चलता है कि सोरकी चालुक्यों की एक शाखा है। हमारा अनुमान है कि सोरकी शब्द सोरों शब्द का स्त्रीलिंग सम्बन्धकारक रूप है। राजपूताने के यात्री आज भी सोरों को सोरमजी कहते हैं। सोरकियों की भी अनेक शाखाएँ हुईं। उक्त पिछली पुस्तक से जो अब आयुर्वेदाचार्य श्री देवव्रत शर्मा के उद्योग से प्रकाशित हो चुकी है, यह भी पता चलता है कि बघेलों का निकास सोरों के निकटवर्ती बघेला नामक ग्राम से हुआ था, और भगवान् विष्णुके भक्त आदि-चौलुक के पुत्र वेन ने उन स्थलों पर दुर्ग बनवाए जो आज सोरों और अतरंजी खेड़ा नाम से विख्यात हैं। अतरंजी तो भीमदेव बघेला के समय में भी इसी प्रकार उजड़ा खेड़ा पड़ा था जैसा आजकल है। इतिहास साक्षी है कि चालुक्यों ने अपने राज्य का विस्तार सुदूर दक्षिण तक किया, और उनके मन्दिरों में भगवान वराह, गंगा, यमुना आदि के चिह्न हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि दक्षिण भारत के चालुक्यों की मुद्राओं (सिक्कों) पर भी भगवान वाराह का चिन्ह अंकित है। कदाचित् यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि भारतीय पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष राव बहादुर श्री काशीनाथ दीक्षित एम० ए०, एफ० आर० ए० एस० बी० फरवरी १९४३ में सोरों पधारे थे और उन्हें सोरों की अर से डेढ़-हजार

अतिरजीपुर दुग्ग नींव तिन हित करि थापी
तिनहीं सोरम तीर्थ्य दुग्ग दिढ़ दिव्य बनायौ
चहुँ दिसि देसनु जीति राज चौलुक्य बढ़ायौ
रहि वराह पद भगति रत परजा सुख करि जस लह्यौ
काल चक्र बस दुग्ग तिहि आज रूप खेरा लह्यौ ॥

—'चालुक-वंश प्रदीप' भीमदेव बघेलाकृत

वर्ष पुरानी कला की मृण्मयी और प्रस्तरमयी मूर्तियाँ मिलीं, और अतरंजी खेड़े में कनिष्क के सिक्कों के साँचे भी। वास्तव में सोरों महत्व पूर्ण तीर्थ ही नहीं किन्तु ऐतिहासिक स्थान भी है; पृथ्वीराज की रणस्थली ही नहीं किन्तु चालुक्य साम्राज्य की राजधानी भी रही है।

सूकर-क्षेत्र (सोरों) में मार्गशीर्ष एकादशी से पूर्णिमा तक प्रति वर्ष लाखों मेला लगता है और राजपूताने तक के यात्री सोमवती अमावास्या आदि पर्वों पर वर्ष में आते रहते हैं। उसे-सूकर क्षेत्र न मानना प्रयत्न को अप्रयत्न कहना है। यदि वराह क्षेत्र अन्य भी हों, जैसा कि एक नाम के कई कई स्थान मिलते हैं, तो सूकर-क्षेत्र (सोरों) का महत्व नहीं घट जाता।

सरयू-घाघरा के संगम पर वाराह तीर्थ है और वहाँ पूस में स्नान के निमित्त मेला भी लगता है। गोंडा के गजटियर में इसका उल्लेख नहीं है, जिससे अनुमान होता है कि यह कोई विशेष प्रसिद्ध स्थान नहीं है। हाँ, 'अयोध्या महात्म्य' में इसका उल्लेख है। यह पुस्तक संस्कृत में है, जिसका अंग्रेजी अनुवाद बरेली कालिज के रामनारायणजी ने किया जो 'इंडियन एंटिक्वेरी' में सन् १८७५ ई० में छपा था। श्री एफ० एस ग्राउस ने अपने रामायणानुवाद का कुछ नमूना 'जरनल ऑफ दि एशियाटिक सुसायटी ऑव बंगाल' में सन् १८७६ में छपवाया। उसमें उन्हों प्रचलित मत के अनुसार सूकर-खेत का अर्थ सोरों (एटा) किया और उसकी व्युत्पत्ति भी की। किन्तु लाला सीताराम इससे असहमत रहे और उन्होंने १६०२ ई० में और पीछे भी लिखा कि रामायणवाला सूकर खेत संगम पर है। विनायकरावजी ने भी १६१५ ई० में अपनी रामायण की टीका में लालाजी का अनुसरण किया। ११७ पृष्ठ पर वे लिखते हैं—"सूकरखेत (सूकर=वाराह+खेत=क्षेत्र) वाराह क्षेत्र जो अयोध्यापुरी से १२ कोस पश्चिम की ओर सरयू नदी के किनारे है।"

-और ब्रह्मपुराणों+ में सौकरव की स्थिति गंगा पर बताई गई है। गंगाजी का प्राचीन भंडार आज भी बुढ़गंगा के नाम से विख्यात है। बुढ़गंगा का अर्थ है बूढ़ी गंगा, यद्यपि आईन ए अकबरी के फ्रान्सिस ग्लैडविन् कृत अँग्रेजी अनुवाद के संपादक श्री जगदीश मुख्योपाध्याय ने इसको वराह गंगा का अपभ्रंश माना है*। कहा जाता है कि वराहावतार से पूर्व इस पुण्यस्थली का नाम उकलक्षेत्र था×। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों सौकरव शब्द, कदाचित् भाषा-नियमों के अनुसार, सोरों शब्द में शनैः शनैः परिवर्तित हो गया¶। सोरों नाम भी कुछ नया नहीं; इसका उल्लेख

+ पयस्तस्माद्विनिःसृत्य गङ्गाम्बवगामभ्यगात्।
मत्तालयच्च स्वाङ्गानि ह्यसृग्लिप्तानि नारद ॥
गङ्गाम्भसा तत्र कुण्डं वाराहमभवत्ततः।
वाराह रूपमभव देवं वै कारणान्तरात् ॥
तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं वाराह सर्व कामदम्।
तत्र स्नानञ्च दानञ्च सर्वक्रतु फलप्रदम् ॥
तत्र स्थितो हि यः कश्चित्पित्न्स्मरति पुण्यकृत्।
विमुक्ता सर्व पापेभ्यः पितरः स्वर्गमाप्नुयुः ॥

—ब्रह्मपुराण

* Ayeen Akbarı translated by Francis Gladwin 18?8 Ed. Page 768.

× (क) The Gazetteers. (ख) Archaeological Survey I. p. 266 (ग) जगदुत्पत्तिस्थान

¶ Sukara-Gram = Suar ganw
= Suaranw = Soron
F. S. Growse: Prologue to the Ramayana by Tulsi Das; Specimen Translation (Journal

चन्द-कृत पृथ्वीराज रासो में कई स्थलों पर×, और अबुलफज़्ल अल्लामी-कृत आईन अकबरी मे मिलता है॰ । गोस्वामी तुलसीदास की धर्म-पत्नी रत्नावली ने अपने दोहों में शूकर-क्षेत्र का उल्लेख किया है+ । १८२६ विक्रमी में श्री मुरलीधर चतुर्वेदी ने|| इसका कुछ विशेष वर्णन किया, यद्यपि महाकवि नन्ददास के पुत्र कवि कृष्णदास संवत् १६७० विक्रमी में इसका माहात्म्य लिख चुके थे¶ । चतुर्वेदीजी ने अपने 'रत्नावली-

of Asiatic Society of Bengal Vol. XLV, 1876 Footnote)

(ख) सौकरव = सोरों; क ग च ज त द प य वां प्रायोलुक्—

चण्डव्याकरण

× जुरि जोग मग्ग सोरों समर चवत चुद्ध चंदह कहिय

२४०१

दोहा —पुर सोरों गंगह उदक जोग मग्ग तिय चित्त
अद्भुत रस अविवर भयो वंजन वरन कवित्त

२४०२

शृंगार विभ्भ सलपइ सुकथ लषन पहारति पंचचय
इत्तेन सुर सथं जुम्भ म्भ वद सोरोंपुर पृथिराज भय ।

—पृथ्वीराजरासो

* Ayeen Akbari, Translated by Francis Gladwin 1898 Ed. Page 768.

+ दोहा रत्नावली, दोहे संख्या २१-२२ ।

|| मुरलीधर चतुर्वेदिकृत रत्नावलि चरित, छंद १-४१, ६०-६५ ।

¶ कवि कृष्णदास-कृत सूकर-खेत माहात्म्य एवं अन्य कतिपय रचनाएँ

चरित' मे लिखा है कि सोरों में कभी सोरंकी राजा राज करता था जिसका किला उक्त चरित कार के समय में तो विद्यमान न था, किन्तु उसके भग्नावशेष उन दिनों कुछ ध्यान देनेसे दृष्टिगोचर होते थे। सूकर-खेत के अन्य उल्लेख भी मिलते हैं×।

× कुछ अन्य प्रमाण—

(क) पांचाली की टेर सुनि आय बढ़ायौ चीर
हौं हू तो पांचाल हरि क्यों न हरत मो पीर
समुहें सूकर खेत सुचि पाछें सींगी धाम
मध्य लसै कम्पिल पुरी जनमभूमि अभिराम।
—तोपनिधि (कम्पिल निवासी) कृत 'दीन-व्यंग श

(ख) श्री नैमिष तत्र पुनर्विलोक्यन्सगोमतीं रामनदीं च जाह्नवीम्
उत्तीर्य गत्वा च मनोः पुरी परां ददर्श मार्गे किल कान्यकुब्जम्।
स कम्पिला तत्र पुनर्विलोक्य तीर्थं वराहस्य ततो जगाम
स्नात्वा च गङ्गा स ततो द्विजेभ्य. दत्त्वा सुवर्ण प्रययौ मधो पुरीम्।
सङ्कर्षण वीक्ष्य वृद्ददनं च श्री गोकुलाख्ये नगरे गत· स
गोस्वामिना वल्लभनन्दनेन सुपूजितस्तत्र निवासितश्च
—श्री विष्णुस्वामिचरितामृत (MS) उल्लास ३०

(ग) तत्र राजा महाभाग स्वधर्म कृत निश्चय:
ब्रह्मदत्तेति विख्यात: पुर काम्पिल्यमास्थित:
तस्य पुत्रो महाभाग: सर्वं धर्मेषु निष्ठित:
सोमदत्तेति विख्यात: कुमार: शुभलक्षण:
पित्रर्थे मृगयां यातो मृगलिप्सु र्वने तथा
एव हि भ्रमतस्तस्य शृगाली दक्षिणे तथा
अग्र मध्ये तु विद्यासा स्फुरन्ती सर्वमङ्गला

सोरों में ऐसी जनश्रुति है कि प्राचीन-काल म एक क्षत्रिय ने इस भूमि पर गंगाजी के किनारे दस मास तक चुलुक अर्थात् चुल्लू जल पी पीकर घोर

तथा सा वाला-सन्तप्ता ऽथ याच परिप्लुता
पीत्वा सा सलिलं तत्र वृत्ता शाकोटकं गता
आतपेन परिक्लिष्टा वाला निद्राऽऽतुरा भृशम्
अकामा मुञ्चती प्राणान् स्तीर्थे सोमात्मके प्रति
एतस्मिन्नन्तरे भद्रे राजपुत्र क्षुधाऽर्दित
प्राप्तो गृध्रवट तीर्थं विश्राम तत्र चाकरोत् ।

—वाराह पुराण, १३७-६४-७०

पाञ्चाल विषये देवि काम्पिल्य च पुरोत्तमम्

—वा० पु० १४२, ४३

जनपद मण्डले पाञ्चालक्षेत्रे द्विजातिभिरध्युषिते
काम्पिल्य राजधान्यां भगवान्पुनर्वसु
रात्रेयोऽन्तेवासि गण परिवृत पश्चिमे घर्ममासे
गङ्गातीरे वनविचारमनुविचरन् शिष्यमग्निवेशमब्रवीत् ।

——चरक सहिता, विमानस्थान अध्याय ३

(घ) चन्द्र ग्रहे तु काश्यां वै फाल्गुणे नैमिषे तथा ।
एकादश्यां शूकरे च कार्तिक्यां गढ़मुक्तिके । ३२ ।
जन्माष्टम्यां मधोपुर्यां खाण्डवे द्वादशीदिने ।
कार्त्तिक्यां पूर्णिमायां तु वटेश्वर महावटे । ३३ ।

× × ×

तत्तुल्य पुण्यमाप्नोति गिरौ गोवर्धने परे । ३७ ।

—गर्ग सहिता, श्री गिरिराज खण्ड, अध्याय १० ।

स्व० पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने अपने भ्रम का प्रतिपादन इन जोरदार शब्दों में किया है—"मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत" को लेकर कुछ लोग गोस्वामीजी का स्थान ढूँढ़ने एटा जिले के सोरों नामक स्थान तक सीधे पश्चिम दौड़े हैं। पहिले पहल इस ओर इशारा लाला सीताराम ने अयोध्याकाण्ड के स्वसम्पादित संस्करण की भूमिका में दिया था। उसके बहुत दिनों पीछे उसी इशारे पर दौड़ लगी और अनेक प्रकार के कल्पित प्रमाण सोरों को जन्म-स्थान सिद्ध करने के लिए तैयार किए गए। सोरों उपद्रव की जड़ है 'सूकरखेत', जो भ्रम से सोरों समझ लिया गया। 'सूकरक्षेत्र' गोंडे जिले में सरयू के किनारे एक पवित्र तीर्थ है यहाँ आस-पास के कई जिलों के लोग स्नान करने जाते हैं और मेला लगता है।" स्व० डा० श्यामसुन्दरदास ने भी शुक्लजी की हाँ में हाँ मिलाई।

सम्भ्रान्त इतने भ्रान्त! स्व० लाला सीताराम ने सोरों की ओर इशारा नहीं किया बल्कि इशारा किया सरयू घाघरा-संगम की ओर। लालाजी से पहले सूकरखेत का अर्थ सोरों ही लिया जाता था जैसा कि ग्राउस आदि के लेखों से स्पष्ट है। अपनी कल्पनाओं का तथ्य पर आरोप कर देना तो शुक्लजी सा योग्य व्यक्ति ही कर सकता है।

संगमवाले वराह तीर्थ के लिए जनश्रुति के अतिरिक्त केवल अयोध्या माहात्म्य प्रमाण स्वरूप मिलता है। सूकर क्षेत्र (सोरों) के लिए तो जन श्रुति के अतिरिक्त वराह पुराण, ब्रह्म पुराण, गर्ग संहिता, विष्णु स्वामि-चरित, रत्नावली के दोहे, रत्नावली चरित, पृथ्वीराज रासो, चालुक्य वंश प्रदीप, अनेक गजेटियर आदि प्रमाण बाहुल्य हैं। विश्वकोश आदि सामान्य कोशों और परिचय ग्रन्थों में सूकरक्षेत्र से तात्पर्य सोरों (एटा) से है। डा० श्यामसुन्दरदास भी पहले सूकरक्षेत्र को सोरों ही मानते थे।

सरयू-घाघरा के संगम पर पसका ग्राम स्थित है। इस 'पसका' शब्द की व्युत्पत्तियाँ विचित्र ढंग से की जाती हैं। एक इस प्रकार है:—

पसका=पसु+का=पशु (बराह) का=वराह का क्षेत्र×। किन्तु व्युत्पत्ति इस प्रकार भी हो सकती है:—पसका=पास का, अर्थात् गोंडावालों के लिए निकटवाला वराह तीर्थ; गोंडा से सूकरक्षेत्र (सोरों) दूर पड़ता है। अयोध्या माहात्म्य में एक श्लोक है, जिसमें 'अत्र' और 'तत्र' इन शब्दों का प्रयोग है। 'अत्र' तो स्पष्टतः संगमवाले वराह तीर्थ का द्योतक है किन्तु 'तत्र' का अभिप्राय न श्लोक से न प्रकरण से लगता है। मेरा अनुमान है कि उसके लेखक के मन में दूरवाला सूकरक्षेत्र (सोरों) था 'तत्र' उसीका द्योतक है+।

मैं समयाभाव से अयोध्या माहात्म्य की आलोचना नहीं करना चाहता। उक्त रामनारायणजी ने अपने अनुवाद की भूमिका में अयोध्या-माहात्म्य के आधार के विषय में जो शब्द लिखे हैं, वे कुछ सन्देहात्मक हैं:—

"The Ayodhya Mahatmya, according to Maharaj Man Singh, professes to be the work of Ikshvaku of the solar race.........But, according to Umadat Pandit, the Ayodhya Mahatmya is a mere transcript from the Skanda and Padma Purana, and is not the composition of a raja of Oudh."

× सूकर खेत (भगवतीप्रसाद सिंह, सरस्वती जून १६४३)

\+ पुरा कृतयुगे देवि पृथिव्युद्धरणं कृतम्।
तत्र निर्व्यादितं तीर्थं वराहेण महात्मना। ५६।
हत्वा दुष्टं हिरण्याक्षं पृथिवी-स्थापनं कृतम्।
अत्र देवाः सगन्धर्वा हर्ष-निर्भर-मानसाः। ५७।
समागम्य स्तुतिं चक्रुर्नर-वराह तुष्टये। ५८।

'अयोध्यामाहात्म्य' पद्म और स्कन्द पुराणों में मिलता भी है कि नहीं, इसका निश्चय मैं पूर्ण रूप से नहीं कर सका हूँ।

मैं यह कहना नहीं चाहता कि सरयू-घाघरा के संगम पर जो वराह क्षेत्र बताया जाता है वह वास्तव में वराहक्षेत्र नहीं अथवा वह कल्पित वराह क्षेत्र है। 'वराह' का नाम प्रतीक धारण करनेवाले अनेक राजा हुए हैं, चालुक्यों का साम्राज्य तो प्रायः समस्त भारत में सुदूर दक्षिण तक फैला, जैसा कि इतिहास साक्षी है। किन्तु 'सूकरखेत' जिसका उल्लेख स्वयं तुलसीदासजी ने किया है, प्रभूत प्रमाणों के आधार, निर्विवाद और निश्चित रूप से, एटा जिले का सोरों ही है।

रामचरित-मानस

भाषा और पाठान्तर,—

कुछ साहित्यिकों की ऐसी धारणा हो चली है कि राम-चरित मानस में क्षेपकों का बाहुल्य है। हो सकता है सच हो। काशी के श्री शम्भुनारायण चौबेने नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका में इस ग्रन्थ के विषय में समय समय पर स्वर्गीय रामदास गौड़जी की प्रेरणा अथवा सहयोग से विचार प्रकट किये हैं। आपने उक्त पत्रिका के पौष १९९८ वि० अङ्क में मानस के उन अंशों का निर्देश किया है जिन्हें आपने प्रक्षिप्त समझा है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि चौबेजी ने जिस अध्यवसाय से इस ओर काम किया है वह हमारे लिए गर्व की बात है। मुझे यह जानकर परम हर्ष हुआ कि वह रामचरित-मानस का ऐसा संस्करण तय्यार करना चाहते हैं जिसमें सभी प्रामाणिक प्रतियों के अनुसार पाठान्तर हों। यद्यपि मैं क्षेपकों के विषय में आदरणीय चौबेजी के निष्कर्ष से पूर्ण सहमत नहीं हूँ, तथापि मैं समझता हूँ कि उनका परिश्रम कितना सराहनीय और उद्देश्य कितना प्रशस्त है।

मैंने सोचा कि चौबेजी-जैसे सत्य शोधकों की जानकारी के निमित्त रामचरित-मानस के उन खण्डित बाल और आरण्य काँडों को ज्यों का त्यों प्रकाशित कर दूँ, जो सोरों मे प० गोविन्दवल्लभ भट्ट शास्त्री के संग्रह में हैं। ये खंड रामचरित मानस की उस प्रति के हैं जिसे गोस्वामी तुलसीदास ने अपने चचेरे भाई महाकवि नन्ददास के पुत्र कवि कृष्णदास के लिये अपने शिष्यों से काशी में १६४३ वि० मे नक़ल करा सोरों भेजा था। मैं भविष्य में इसे १६४३ की प्रति कहूँगा। इन खण्डित काण्डों का ध्यान पूर्वक पारायण करने एवं उनके पाठ को अन्य प्रतियों द्वय एवं तथा

कथित शुद्ध संस्करणों से मिलाने के पश्चात् मेरी धारणाएँ संक्षेप में इस प्रकार हैं—

(१) यों तो पाठान्तर सभी कांडों में दृष्टिगोचर होता है, किन्तु आरण्य कांड में सबसे अधिक। यह अत्यंत प्रसन्नता की बात है कि गोस्वामीजी का भेजा आरण्य कांड विचारार्थ मेरे सम्मुख विद्यमान है और खंडित होता हुआ भी बहुत कुछ नवीन प्रकाश डालता है। मैं चाहता था कि पाठान्तर के स्थलों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करूँ; किन्तु इसमें बहुत समय और स्थान की अपेक्षा है। मैं १६४३ की आरण्य कांड की खंडित प्रति ज्यों की त्यों इस लेख के साथ दे रहा हूँ, साथ ही बाल कांड की भी।

(२) मुझे उर्दू में रामचरित मानस की सम्पूर्ण प्रति पं० भद्रदत्तजी शास्त्री से उपलब्ध हुई है जो १२११ हिजरी में लिखी गई है। मैं अभी तक इस पर पर्याप्त विचार नहीं कर सका हूँ।

(३) सोरों की १६४३ की और काशिराज की १७०४ की प्रतियों के आरण्य और बाल कांडों में भी यद्यपि पाठान्तर विद्यमान हैं, तथापि अन्य प्रतियों की अपेक्षा सामञ्जस्य कहीं अधिक है।

(४) काशिराज की १७०४ की प्रति का पाठ अधिक प्रशस्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी ने स्वयं अथवा विद्वानों की प्रेरणा से कभी कभी और कहीं कहीं थोड़ी बहुत पाठ वृद्धि की है और काट-छाँट की। यह बड़ी स्वाभाविक बात थी। गोस्वामीजी को क्या पता था कि बीसवीं शताब्दी के कुछ लोग उनकी ही रचना में क्षेपकों की गंध का कल्पित अनुभव करने लगेंगे! प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी ने कई बार अपनी कृति का संशोधन किया और भक्तजन समय समय पर अपने लिये उसकी नकल करते रहे। अत. पाठान्तरों का भी प्रचार होता रहा। विद्वान् लेखकों को पता होगा कि उनकी निजी कृतियों में प्राय. कितना परिवर्तन होता रहता है; कभी कभी तो कृति मूलरूप से कई गुनी हो जाती है।

(५) रामचरित मानस के मूल संस्करण मे ठेठ ब्रजभाषा और ब्रजावधी भाषा के रूपों का प्रचुर बाहुल्य था। उदाहरणतः १६४३ की प्रति मे 'गयो' 'बदो' 'करो' आदि वर्णना मिलती है, कुछ छपे संस्करणों में मे 'गयउँ' 'बदउँ' 'करउँ'। अन्य प्रामाणिक प्रतियों में वास्तव में शब्दों के क्या रूप हैं मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता। हाँ, १६६१ की अयोध्या की बालकाण्ड की प्रति में भी ब्रजभाषा के उक्त रूपों की ही प्रधानता है। इस विषय मे श्री विजयानन्दजी त्रिपाठी आदि के पाठान्तरों से ठीक-ठीक पता नहीं चलता क्योंकि उन्होंने स्वयं भी वर्णना (Spelling) म परिवर्तन किया। क्या अच्छा हो कि सभी उपलब्ध महत्वपूर्ण प्रतियों का पाठ ज्यों का त्यों सर्व साधारण को उपलब्ध हो जाय। मेरा अनुमान है, निश्चय नहीं, कि रामचरित मानस में ब्रजभाषा का स्थान अवधी थोड़ा-थोड़ा करके छीनती रही है। या तो गोस्वामीजी का प्रेम अवधी की ओर बढ़ता गया, अथवा उनको अवधी का अभ्यास बढ़ता गया, अथवा अन्य विद्वानों की प्रेरणा से गोस्वामीजी ने अवधी रूप को अपनाया, अथवा उनके पश्चात् लोगों ने अपनी प्रतियों में अवधी रूप दे दिया हो। वास्तविकता क्या है इसका कुछ न कुछ आभास मिल तो सकता है किन्तु तब जब सभी विद्यमान प्राचीन प्रतियों के ऐसे छपे संस्करण उपलब्ध हों जिनके पाठ और वर्णना में बाल बाल अन्तर न हो। यद्यपि मैं पैरिस के डाक्टर ब्लाख से सहमत हूँ कि अवधी और ब्रजभाषा के रूपों का पार्थक्य*

* It must be added that these specialized languages are nowhere really pure; there is so to say a reflexion of all in each of them

There are indeed many points of contact between Awadhi and the neighbouring languages and specially Western ones. As a metter of fact, as we have pointed out, the name Eastern as opposed to Western Hindi is a creation of Sir George Grierson (Professor Dr. Jules Block, College de France, Paris)

—Introduction to the Index Verborum to Tulasi Dasa's Ramayana by Dr. SuryaKant, Page IV, 1937.

अर्वाचीन काल में सर जौर्ज ग्रीयर्सन की कारस्तानी है तथापि पार्थक्य में विश्वास कर लेने की दशा में यह निश्चय है कि रामचरितमानस के प्रारम्भिक संस्करणों में ब्रजभाषा और ब्रजावधी भाषा के रूप थे।

(६) गोस्वामी तुलसीदास का हस्तलेख। गोस्वामीजी ने रामचरित-मानस की जो प्रति १६४३ में अपने शिष्यों के द्वारा अपने भतीजे कृष्णदास के लिये नक्ल कराई थी उसे उन्होंने स्वयं शोधा है, फिर भी कतिपय (किन्तु बहुत कम स्थलों पर कुछ) अक्षर कभी कभी शिष्यों के लिखने और गोस्वामीजी के शोधने से रह गये हैं। ग्रन्थकार की दृष्टि से ऐसी छूट आशान्वित अवधान (Exepectant attention) के कारण बहुत सम्भव है; यदि कोई दूसरा यह कार्य करे तो भूल चूक की सम्भावना अपेक्षाकृत कम (अथवा नहीं) होती है। आरण्य-कांड में एक स्थल पर अर्द्धाली लिखने से रह गई थी जिसे गोस्वामीजी ने स्वयं लिख दिया है। लिखावट की शैली पचनामे की शैली से बहुत मिलती है। दोष-दर्शियों के लिये तो पचनामे की लिपि में भी संदेहात्मक सामग्री मिल सकती है क्योंकि उसके अक्षरों में भी वैषम्य है, उदाहरणात रकार दो प्रकार से लिखा गया है और पंचनामे का जकार प्रस्तुत लिपि से भिन्न सा है। इस विषय में पाठक स्वयं किसी निश्चय पर पहुँच सकते हैं। मैं केवल उस अर्द्धाली का चित्र दे रहा हूँ जिसे मैं गोस्वामीजी के हाथ की लिखी समझ रहा हूँ। चाहता तो यह था कि उन सब अक्षरों का भी चित्र उपस्थित कर देता जो १६४३ की प्रति के खंडित बाल और आरण्य कांडों के हाशियों पर कभी-कभी देखने में आते हैं।

खण्डित बालकांड और आरण्यकांड—

ये खण्डित काण्ड उस सम्पूर्ण रामचरितमानस के अवशिष्ट भाग

है जिसे गोस्वामी तुलसीदास ने अपने चचेरे भाई सोरों निवासी महाकवि नन्ददास के पुत्र अर्थात् अपने भतीजे कवि कृष्णदास को, काशी में अपने शिष्यों से सम्वत् १६४३ वि० में नक़ल कराके, भेंट-स्वरूप प्रदान किया था। ये दोनों कायड उक्त गोस्वामीजी के वंशज श्री (अब स्वर्गीय) पण्डित मुरारीलाल शुक्ल से कार्तिक शुक्ला ६ शनिवार सम्वत् १९९२ वि० अर्थात् २ नवम्बर १९३४ ई० को प्राप्त हुए थे। इन काण्डों की प्रतिलिपि मत्तिकास्थ ने मत्तिकास्थ में उपस्थित की जा रही है, क्योंकि ये इतिहास, भाषा विज्ञान और साहित्य खोज की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण हैं।

बाल काण्ड

× × ×

× × ×

……………प्रभुता सोई, तदपि कहे बिनु रहा न कोई।
महादेव अस कारण राखा, भगति प्र………भाषा।
ऐक अनीह अरूप अजमाना, अस सच्चिदानन्द परधामा।
व्यापक विश्व………ना, तेहि धरि देह चरित कृत नाना।
सो केवल भगतन्ह हित लागी, परम कृपाल प्रनत……।
जेहि जन पर ममता अरु छोह, जेहि करुनाकर कीन्ह न कोह।
गाई बहोरि गरीब निवा(जू), सरल सबल साहिब रघुराजू।
बुध बरनहि हरिजस अस जानी, करत पुनीत हेत निज बानी।

(ते)हि बल मे रघुपति गुणगाथा, कहि हौं नाइ रामपद माथा।
मुनिन प्रथम हरि कीरति गाई, तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई।

॥दोहा॥ अति अपार जे सरितवर जे नृप सेतु कराहि।
चढ़ि पिपीलका परम (?) बिनु श्रम पारहि जाहि ॥२३॥

एहि प्रकार बल मनहि दिखाई, कहिहौं रघुपति कथा सुहाई।
व्यास आदि कवि पुंगव नाना, जिन्ह सादर हरिचरित बखाना।
चरण कमल बदौं तिन्ह केरे, पुरवहु सकल मनोरथ मोरे।
कलिके कविन्ह करौं परिनामा, जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा।
जे प्राकृत कवि परम सयाने, भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने।
भए जे हैं होईहि जे आगे, प्रनवौं सबहि कपटु सब त्यागे।
होहु प्रसन्न देहु वरदानू, साधु समाजु भनिति सनमानू।
जे प्रबंध बुध नहि आदरही, सो श्रमवादि बाल कवि करही।
कीरति भनिति भूति भलि सोई, सुरसरि सम सब कह हित होई।
राम सुकीरति भनिति भदेसा, असमंजस अस मोहि अदेसा।
तुम्हरी कृपा सुलभ सोउ मोरे, सयनि सुहावनि टाट पटोरे।
करहु अनुग्रह अस जिय जानी, बिमल जसहि अनुहरै सुबानी।

दोहा॥ सरित कवित कीरति बिमल सो आदरहि सुजान॥
सहज बैर बिसराइ रिपु जो सुनि करहि बखान॥२४॥
सोन होइ बिनु बिमल मति मोहि मतिबल (अति) थोर॥
करहु कृपा हरि जस कहौं पुनि पुनि करौं निहोर॥२५॥
कवि कोविद रघुपति चरित मानस मंजु मराल॥
बाल बिनय सुनि सुरुचि लखि मोपर होहु दयाल॥२६॥
बंदौं मुनि पद कंज रामायण जिन्ह निरमयो॥
सखर सकोमल मंजु दोष रहित (दूषण) सहित॥२७॥

बंदौ चारिउ वेद भव बारिधि बोहित सरिस ॥
जिन्हहि न सपनेहु (द)···रघुपति बिसद जस ॥२८॥

॥ सोरठा ॥ बदौ विधि पद रेगु भव सागर जेहि कीन्ह जह ॥
··········सि धेनु प्रकटे पल विष वारुणी ॥२६॥

॥दोहा॥ विवुध विप्रवुध गहि चरन वदि कहौ········॥
··········प्रसन्न पुरवहु सकल मजु मनोरथ मोरि ॥३०॥
पुनि बदौ सादर सुर सरिता, सु············चरिता !

मज्जन पान पाप हर ऐका, कहत सुनत एक हरअविवेका।
················सयानी, प्रनवौ दीनबधु दिन दानी।
सेवक स्वामि सपा सीय पीके, हित नि···व विधि तुलसी के।
कलि बिलोकि जग हित हर गिरिजा, साबर मंत्र पाल जि···।
अन मिल आपर अर्थ न जापू, प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू।
सो महेस मोप·······कूला, करिहि कथा मुद मंगल मूला।
सुमिरि सिवा सिव पाई पसाऊ, बरनौ रामचरित चित चाऊ।
भनिति मोर सिव कृपा बिभाती, ससि समाज मिलि मनहु सुराती।
जो यह कथा सनेह समे सुनिहहि ना।
होइहै रामचरण अनुरा रहित ।

दसरथ राउ सहित सब रानी, सुकृति सुमंगल मूरति मानी ।
करउ प्रणाम कर्म मन बानी, करहु कृपा सुत सेवक जानी ।
जिन्हहि बिरचि बड भयउ विधाता, महिमा अवधि रामपितु माता ।

॥दोहा॥ (?) बंदौ अवधि भुआल सत्य प्रेम जिहि राम पद ॥
बिछुरत दीन दयाल प्रिय तनु त्रण इव परिहरेउ । ३२॥

प्रनवौ पुरजन सहित बिदेहू, जाहि राम पद गूढ सनेहू ।
योग भोग महि राखेउ गोई, राम बिलोकत प्रगटेउ सोई ।
प्रनवौ प्रथम भरत के चरना, जासु नेमव्रत जाइ न बरना ।
राम चरन पकज मन जासु, लुब्ध मधुप इव तजै न पासु ;
बंदौ लछिमन पद जल जाता, सीतल सुभग भक्त सुख दाता ।
रघुपति कीरति बिमल पताका, दड समान भएउ जसु जाका ।
सेस सहस्र सीस जग कारन, सो अवतरेउ भूमि भय टारन ।
सदा सुसान कूल रहु सोपर, कृ••• धु सौमित्र गुनाकर ।
रिपु सूदन पद कमल नाममी, सूर सुसील भरत अनुगामी ।
म••••••नवौ हनुमाना, राम जासु जस आपु बखाना ।

॥दोहा॥ प्रनवौ पवन कुमार पलवन पावक••• ।
जासु हृदय आगार बसहि राम सर चाप धर ॥३३।

कपि पति ऋक्ष निसाचर•••, •••दिजै कीस समाजा ।
बंदौ सब के चरण सुहाए, अधम सरीर राम जिहि पाए ।
•••••••••सक जेते, खग मृग सुर नर असुर समेते ।
बंदौ पद सरोज सब केरे, जे बिनु काम राम के••• ।
•••दि भक्त मुनि नारद, जे मुनिवर विज्ञान विसारद ।
प्रनवौ सबहि धरणिधरि सीसा, कर•••नु जानि मुनीसा ॥

जन(क)सुता जग जननि जानकी, अतिशय प्रिय करुणा निधानकी।

ताके••• गल मनाऊ, जासु कृपा निर्मल मति पाऊ।

पुनि मन वचन कर्म रघुनायक, चरण कमल बंदौ •••यक।

राजिव नैन धरे धनु सायक, भगत विपति भंजन सुखदायक।

॥दोहा॥ गिरा अर्थ जल•••चि सम कहियत भिन्न अभिन्न।

बंदौ सीता राम पद जिनहिं परम प्रिय खिन्न॥३४॥

बंदौ राम नाम रघुवर के, हेतु कृशानु भानु हिमकर के।

विधि हरिहर मय वेद प्राण से, अगुण अनूपम गुन निधान से।

महा मंत्र जोई जपत महेशू, काशी मुक्ति हेतु उपदेशू।

महिमा जासु जान गनराऊ, प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ।

जानि आदिकवि नाम प्रतापू, भयउ सिद्ध करि उलटा जापू।

सहस नाम सम सुनि शिववानी, जपि जे पिय के संग भवानी।

हरषे हेतु हेरि हर हिय को, किय भूषण तिय भूषण तियको।

नाम प्रभाव जानि शिव नीको, कालकूट फल दीन्ह अमी को।

॥दोहा॥ वर्षा ऋतु रघुपति भगति तुलसी शालि सुदास।

राम नाम वर वरण युग शुभ श्रावण भादौ मास॥३५॥

आखर अर्थ मनोहर दोऊ, वरण विलोचन जन जिय जोऊ।

सुमिरत सुखद सुलभ सब काहू, लोक लाहु परलोक निबाहू।

कहत सुनत सुमिरत सुठि नीको, राम लखन सम प्रिय तुलसी को।

वरणत वरन प्रीति बिलगाती, ब्रह्म जीव सम सहज संघाती।

नर नारायण सरिस सुभ्राता, जग पालक विशेषि जन त्राता।

भगति सुतिय कल करण विभूषण, जगहित हेतु विमल विधु पूषन।

स्वाद तोष सम सुगति सुधा के, कमठ शेष सम धर वसुधा के।

जन मन मंजु कंज मधुकर से, जीह जसोमति हरि हलधर से॥

इसे गो० तुलसी दास ने सोरों निवासी अपने भतीजे श्री कृष्ण दास को स्वाध्या-
[illegible] दिया था। अब केवल बालकाण्ड और अरण्य काण्ड
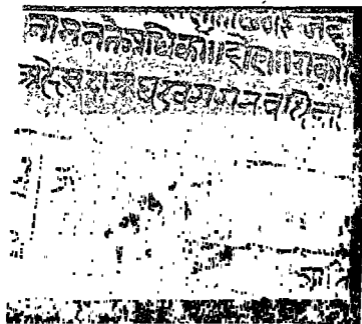
गो. तुलसीदास का हस्त-लेख

तुलसीदास का गृह स्थान

मोहल्ला योगमार्ग, सोरों

इस स्थानपर एवं आ
पास मुसलमान रहे
है। पास ही श्मशान
भूमि है। तुलसी घ
मरघट्ट में गलकटिर
के पास—गो. तुलसीद

||दोहा|| एक छत्र एक मुकुट मनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नामके बरण बिराजत दोउ ||३६||

समुझत सरिस नाम अरु नामी, प्रीत परस्पर प्रभु अनुगामी।
नाम रूप दुइ ईश उपाधी, अकथ अनादि सुसमुझि•••धी।
को बड छोट कहत अपराधू; सुनिगुन दोष समुझहि साधू।
देखिय रूप नाम अधीना, रूप•••हि नाम बिहीना॥
रूप बिसेषि नाम बिनु जाने, करतल गत न परत पहिचाने।
सुमिरिय ना••••••देखे, आवत हृदय सनेह बिसेष।
नाम रूप गति अकथ कहानी, समुझत सुखद न जात ब•••।
•••सगुन बिच नाम सुसाखी, उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी।

||दोहा|| राम नाम मनि दीप••••••••••••द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरहु जो चाहसि उजियार ||३७||

नाम जीह जपि जागहि योगी, •••••••••••••••••••

× × × ×
× × × ×
× × × ×
× × × ×
× × × ×

•••••••••••••••समेता, पुनि पुनि पुलकत कृपा निकेता।

सती दसा सभु की देखी, उर उपजा सदेह•••रेषी॥
सङ्कर जगत बन्द्य जगदीसा, सुर नर मुनि सब नावहि सीसा।
तिह नृप सुतन्ह कीन्ह परनामा, कहि सच्चिदानन्द परधामा।
भए मगन छवि तासु बिलोकी, अजहु प्रीति उर रहत न रोकी

||दोहा|| ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद ।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानहि वेद ||७४||

बिष्णु जु सुर हित नर तनु धारी, सोऊ सर्वज्ञ यथा त्रिपुरारी ।
खोजै सो कि अज्ञ इव नारी, ज्ञान धाम श्रीपति असुरारी ।
शंभु गिरा पुनि मृषा न होई, शिव सर्वज्ञ जान सबु कोई ।
अस संशय मन भयउ अपारा, होइ न हृदय प्रबोध प्रचारा ।
जदपि प्रगट न कहेउ भवानी, हर अंतरजामी सब जानी ।
सुनहु सती तव नारि सुभाऊ, संशय अस न धरिय उर काऊ ।
जासु कथा कुंभज ऋषि गाई, भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई ।
सो मम इष्ट देव रघुबीरा, सेवहि जाहि सदा मुनि धीरा ।

||छंद|| मुनि धीर योगी सिद्ध संतत बिमल मन जिहि ध्यावहीं ।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहिं ।
सोईराम व्यापक ब्रह्म भुवन निकायपतिमायाधनी ।
अवतरेउ अपने भगत हितनिज तन नित रघुकुलमनी ।

× × ×
× × ×
× × ×
× × ×

|| सोरठा || लाग न उर उपदेश जदपि कही शिव बार बहु ।
बोले बिहसि महेश हरि माया बल जानि जिय || ७५ ||

जो तुम्हरे मन अति संदेहू, तौ किन जाइ परीक्षा लेहू ।
तब लगि बैठ अहौं बट छाहीं, जब लगि तुम्ह ऐहौ मोहि पाहीं ।
जैसे जाय मोह भ्रम भारी, करिहु सो यतन बिवेक बिचारी ।

चली सती शिव श्रायसु पाई, करै विचार करौं का भाई।
इहाँ शंभु अस मन अनुमाना, दक्ष सुता कहु नहिं कल्याना।
मोरे कहे न संसय जाहीं, विधि विपरीत भलाई नाहीं।
होइए सो जो राम रचि राखा, को करि तर्क बढ़ावै शाखा।
अस कहि लगे जपन हरि नामा, गई सती जहँ प्रभु सुख धामा।
॥ दोहा ॥ पुनि पुनि हृदय विचार करि धरि सीता कर रूप।
आगे ले चलिय पंथ तेहि जेहि आवत नर भूप ॥७६॥
लछिमन दीख उमा कृत वेषा, चकित भए भ्रम हृदय विशेषा।
कहि न सकहु अति गंभीरा, प्रभु प्रभाव जानत मति धीरा।
सती कपट जान्यो सुर स्वामी, समदरसी सब अंतर जामी।
सुमिरत जाहि मिटै अज्ञाना, सोई सर्वज्ञ राम भगवाना।
सती कीन्ह चहै तहउ दुराऊ, देखहु नारि प्रभाव सुभाऊ।
निज माया बल हृदय बखानी, बोले····सि राम मृदु बानी।
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रणामू, पिता समेत लीन्ह निज नामू।
कहेउ ब····हा वृषकेतू, विपिनि अकेलि फिरहु किह केतू।
॥ दोहा ॥ राम वचन मृदु गूढ़ सुनि . उपजा अति सं····।
सती सभीत महेश पह चली हृदय बड़ सोच ॥७७॥
मैं शंकर कर कहा न माना, निज अज्ञान राम पह आना।
जाइ उतरु अब देहौं काहा, उर उपजा अति दारुन दाहा।
जाना राम सती दुख पावा, निज प्रभाव कछु प्रगट जनावा।
सती दीख कौतुक मग जाता, आगे राम सहित श्री भ्राता।
फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा, सहित बंधु सिय सुन्दर वेषा।
जह चितवइ तह प्रभु आसीना, सेवहि सिद्ध मुनीश प्रवीना।
देखे शिव विधि विष्णु अनेका, अमित प्रभाव एक ते एका।
बंदत चरन करत प्रभु सेवा, विविध वेष देखे सब देवा।

॥ दोहा ॥ सती विधात्री इंदिरा देवी अमित अनूप ।
जिहि जिहि वेष अजादि सुर तिहि तिहि तन अनरूप ॥७८॥

देखे रघुपति जह तह जेते, शक्तिन सहित सकल सुर तेते ।
जीव चराचर जे संसारा, देखे सकल अनेक प्रकारा ।
पूजहि प्रभुहि देव बहु वेषा, राम रूप नहिं दूसर देखा ।
अवलोके रघुपति बहुतेरे, सीता सहित न वेष घनेरे ।
सोई लछिमन सोई रघुवर सीता, देखि सती अति भई सभीता ।
हृदय कंप तनु सुधि कछु नाहीं, नयन मूदि बैठीं मग माहीं ।
बहुरि विलोकेउ नैन उघारी, कछु नहिं दीखत दक्ष कुमारी ।
पुनि पुनि नाइ राम पद सीसा, चली सती जह रहे गिरीशा ।

॥ दोहा ॥ गई सभीत महेश पर हँसि पूछी कुशलात ।
लीन्हि परीक्षा कवन विधि कहहु सत्य सब बात ॥७९॥

सती समुझि रघुवीर प्रभाऊ, भयवश शिव सन कीन्ह दुराऊ ।
कछु न परिक्षा लीनि गुसाईं, कीन्ह प्रनाम तुम्हारिय नाईं ।
जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई, मोरे मन प्रतीति अति सोई ।
तब शंकर देखेउ धरि ध्याना, सती जो कीन्ह चरित सब जाना ।
बहुरि मायहि सिर नावा, प्रेरि सतिहि जिहि झूठ कहावा ।
हरि इच्छा भावी बलवाना, हृदय विचारत शंभु सुजाना ।
सती कीन्ह सीता कर वेषा, शिव उर भएउ विषाद विशेषा ।
जो अब करौ सती सन प्रीति, मिटे भगति पथ होइ अनीति ।

॥ दोहा ॥ परम प्रीति न जाइ तजि किए प्रेम बड़ पाप ।
प्रगट न कहत महेश कछु हृदय अधिक संताप ॥८०॥

तब शंकर प्रभु पद शिर नावा, सुमिरत राम हृदय अस आवा ।
इहि तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं, शिव संकल्प कीन्ह मन माहीं ।

अस विचारि सकर मतिधीरा, चले भवन सुमरति रघुवीरा ।
चलत गगन भै गिरा सुहाई, जय महेश भलि भगति दृढाई ।
अस पन तुम्ह विनु करै को आना, राम भगत समरथ भगवाना ।
सुनि नभ गिरा सती उर सोचा, पूछा शिवहि समेत सकोचा ।
कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला, सत्य धाम प्रभु दीनदयाला ।
जदपि सती पूछा बहु भाती, तदपि न कहेउ तिपुर आराती ।

॥ दोहा ॥ ····हृदय अनुमान किय सब जान्यो सरवज्ञ ।
कीन्ह कपट मै शभु सन नारि सहजड अज्ञ ॥ ८१ ॥

···ठा ॥ जल पय सरिस विकाहि देखहु प्रीति कि रीति भलि ।
विलग होत रसु जाइ कपट खटाई·········ही ॥ ८२ ॥

हृदय सोचु समुझि निज करनी, चिंता अमित जात नहि वरणी ।
कृपासिंधु शिव पर(म)अगाधा, प्रगट न कहेउ मोर अपराधा ।
शकर रुख अवलोक भवानी, प्रभु मोहि तजेउ हृदय अकुलानी ।
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई, तपै अवा इव उर अधिकाई ।
सतिहि ससोच जानि वृष केतु, कही कथा सुन्दर सुख हेतु ।
वरनेउ पंथ विविधि इतिहासा, विस्वनाथ पहुचे कैलासा ।
पुनि तह शंभु समुझि पन आपन, वैठे वट तर करि कमलासन ।
शकर सहज सरूप सभारा, लागि समाधि अखड अपारा ।

॥ दोहा ॥ सती वसहि कैलास तव अधिक सोच मन माहि ।
मरम न कोऊ जानि कछु युग सम दिवस सिराइ ॥८३॥

नित नव सोचु सती उर भारा, कब जैहे दुख सागर पारा ।
मै जु कीन्ह रघुपति अपमाना, पुनि पति वचन मृषा करि जाना ।
सो फलु मोहि विधाता दीन्हा, जो कछु उचित रहा सो कीन्हा ।

अब विधि अस न बूझियहि तोही, शंकर विमुख जिआवसि मोही।
कहि न जाइ कछु हृदय गलानी, मनमहु रामहि सुमिरि भवानी।
जौ प्रभु दीनदयाल कहावा, आरत बेद हरन जसु गावा।
तौ मैं विनय करौं कर जोरी, छूटै बेगि देह यह मोरी।
जौ मोरे शिव चरन सनेहू, मन क्रम बचन सत्यव्रत एहू।

॥ दोहा ॥ तौ समदरसी सुनिय प्रभु करहु सो बेगि उपाइ।
होइ मरन जिहि बिनहि श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ ॥८४॥

इह विधि दुखित प्रजेशकुमारी, अकथनीय दारुन दुख भारी।
बीते संवत सहस सतासी, तजी समाधि शंभु अविनाशी।
राम नाम शिव सुमिरन लागे, जानेउ सती जगत पति जागे।
जाई शंभु पद बंदन कीन्हा, सनमुख शंकर आसन दीन्हा।
लगे कहन हरि कथा रसाला, दक्ष प्रजेश भए तिहि काला।
देखा विधि विचारि सब लायक, दक्षहि कीन्ह प्रजापति नायक।
बड़ अधिकार दक्ष जब पावा, अति अभिमान हृदय तब आवा।
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं, प्रभुता पाई जाहि मद नाहीं।

॥ दोहा ॥ दक्ष लिए मुनि बोलि सब करन लागे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग ॥८५॥

किंनर नाग सिद्ध गंधर्बा, बधुन्ह समेत चले सुर सर्बा।
विष्णु विरंचि महेश विहाई, चले सकल सुर जान बनाई।
सती विलोके व्योम विमाना, जात चले सुन्दर विधि नाना।
सुर सुन्दरी करहिं कल गाना, सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना।
सती पूछ शिव कहा बखानी, पिता जग्य सुनि कछु हरषानी।
जौं महेश मोहि आयसु देहीं, कछु दिन जाइ रहौं मिस एहीं।
पति परित्याग हृदय दुख भारी, कहै न निज अपराध विचारी।

बोली सती मनोहर बानी, भय संकोच प्रेम रस सानी ।

॥ दोहा ॥ पिता भवन उत्सव परम जौं प्रभु आयसु होइ ।
तौ मैं जा···पा यतन सादर देखन सोइ ॥८६॥

कहेहु नीक मोरेहु मन भावा, यह अनुचित नहि नेवत पठावा ।
···कल निज सुता बुलाई, हमरे बैर तुम्हें बिसराई ।
ब्रह्म सभा हम सन दुख माना, तिहि ते अजहु करै···ना ।
जो बिनु बोले जाहु भवानी, रहै न सील सनेह सो कानी ।
जदपि मित्र पितु प्रभु गुर गेहा, जाई··· बिनु बोले न संदेहा ।
तदपि बिरोध मान जह कोई, तहा गए कल्यान न होई ।
भांति अनेक शंभु समुझावा, भावीबस न ज्ञान उर आवा ।
कह प्रभु जाहु जौं बिनहि बुलाए, नहि भलि बात हमारे भाए ।

॥ दोहा ॥ कहि देखा हर जतन बहु रहे न दच्छ कुमारि ।
दिए मुख्य गन संग तब बिदा कीन्ह त्रिपुरारि ॥८७॥

पिता भवन जब गई भवानी, दच्छ त्रास काहु न सनमानी ।
सादर भलेहि मिली एक माता, भगिनी मिलीं बहुत मुसुकाता ।
दच्छ न कछु पूछि कुसलाता, सतिहि बिलोकि जरे सब गाता ।
सती जाइ देखेउ तब जागा, कतहु न दीख शंभु कर भागा ।
तब चित चढ़ेउ जो शंकर कहेउ, पति अपमान समुझि उर दहेउ ।
पछिला दुख न हृदय अस ब्यापा, जस यह भयउ महा परितापा ।
जदपि जग दारुन दुख नाना, सबतें कठिन जाति अपमाना ।
समुझि सो सतिहि भयो अति क्रोधा, बहु बिधि जननीं कीन्ह प्रबोधा ।

दोहा ॥ सिव अपमान न जाइ सहि हृदय न होइ प्रबोध ।
सकल सभहि हठि हटकि तब बोलीं बचन सक्रोध ।

सुनहु सभासद सकल मुनींदा, कही सुनी जिन्ह शंकर निंदा।
सो फलु तुरत लह सब काहू, भलीभाति पछिताव पिताहू।
संत शंभु श्रीपति अपवादा, सुनिय जहा[तह असि मरजादा।
काटिय तासु जीभ जो बसाई, श्रवन मूद नतु चलिय पराई।
जगदात्मा महेस तिपुरारी, जगत जनक सब के हितकारी।
पिता मन्दमति निंदत तेही, दक्ष शुक्र सभव यह देही।
तजि हौ तुरत देह तिहि हेतू, उर धरि चन्द्रमौलि वृषकेतू।
अस कहि योगा नल तनु जारा, भएउ सकल मख हाहाकारा।

॥ दोहा ॥ सती मरन सुनि शंभुगन लगे करन मख धीस।
जज्ञ विध्वस विलोकि भ्रगु रक्षा कीन्ह मुनीश ॥८

समाचार जब शंकर पाए, वीरभद्र करि कोप पठाए।
जज्ञ विध्वंस जाय तिन्ह कीन्हा, सकल सुरन्ह विधिवत फलु दीन्हा।
भै जग विदिति दक्ष गति सोई, जस कछु शंभु विमुख कह होई।
यह इतिहास सकल जग जाना, ताते मै संक्षेप बखाना।
सती मरत हरि सन बर मागा, जन्म जन्म शिव पद अनुरागा।
तिहि कारण हिमगिरि ग्रह जाई, जन्मी पारवती तनु पाई।
जबते उमा सैल ग्रह जाई, सकल सिद्धि संपति तह छाई।
जह तह मुनिन सुआसन कीन्हे, उचित वासहिम भूधर दीन्हे।

॥ दोहा ॥ सदा सुमन फल सहित द्रुम सब नव नाना भाति।
प्रगटी सुन्दर सैल पर मनि आकर बहु भाति ॥९०

सरिता सब पुनीत जल बहही, खग मृग मधुप सुखी सब रहही।
सहज बैर सब जी···त्यागा, गिरि पर सकल करहि अनुरागा।
सोहे सैल गिरजा ग्रह···आए, जिमि जन राम भगति···।

नित नूतन मगल गृह तासू, नह्मादिक गावहिं जसु तासू।
नारद समाचार सब पाए, कौतु…गिरि गेह सिधाए।
सैल राजवड आदर कीन्हा, पद पखारि वड आस(न) दीन्हा।
नारि सहित मुनि पद सिर…वा, चरन सलिल सब भवन सिचावा।
निज सौभाग्य बहुत विधि वरना, तना बोलि मेलि मुनि चरना।

॥ दोहा ॥ त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तुम गति सर्वत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोप गुन मुनि वर हृदय विचारि ॥६१॥

कह मुनि विहसि गूढ मृदुवानी, सुता तुम्हारि सकल गुन खानी।
सुन्दर सहज सुसील सयानी, नाम उमा अंबिका भवानी।
सव लक्षन सपन्न कुमारी, होइह सतति पियहि पियारी।
सदा अचल इहि कर अहिवाता, इहि तै सुजसु चहैं पितु माता।
होइह पूज्य सकल जगमाहीं, इहि सेवत कुछ दुर्लभ नाहीं।
इहि कर नाम सुमिरि ससारा, तिय चढिहइ पतिव्रत असिधारा।
शैल सुलक्षन सुता तुम्हारी, सुन जे अवगुन दुइ चारी।
अगुन अमान मात पितु हीना, उदासीन सब ससय छीना।

॥ दोहा ॥ योगी जटिल अकाम मन नगन अमगल वेप।
अस स्वामी इहिका मिलिहि परी हस्त (?) रेप ॥६२॥

सुनि मुनि गिरा सत्य जिय जानी, दुप दपतिहि उमा हरपानी।
नारदहू यह भेदु जाना, दशा एक समुझत विलगाना।
सकल सखी गिरिजा गिरि मैना, पुलक सरीर भरे जल नैना।
होइ न मृषा देव ऋषि भाषा, उमा सो वचन हृदय धरि राषा।
उपजेउ शिव पद कमल सनेहू, मिलन कठिन मन भा सदेहू॥
जानि कुअवसर प्रीति दुराई, सखी उछग बैठि पुनि जाई।

झूठ न होइ देव ऋषि बानी, सोचहि दम्पति सखी सयानी।
उर धरि धीर कहै गिरि राऊ, कहहु नाथ का करिय उपाऊ।

॥ दोहा ॥ कह मुनीस हिमवत सुनु जो विधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मग कोउ न मेटनहार ॥६३॥

तदपि एक मैं कहउ उपाई, होइ करै जो देव सहाई।
जस वर मैं वरनेउ तुम्ह पाईं, मिलिहि उमहि कछु सशय नाहीं।
जे जे वर के दोप बखाने, ते सब शिव पह मैं अनुमाने।
जौ विवाह शकर सन होई, दोषो गुण सम कह सबु कोई।
जौ अहि सेज सयन हरि करही, बुध तिन्ह कह कछु दोप न धरही।
भानु कृसानु सर्वं रस खाही, तिनको मद कहत कोउ नाही।
सुभ अरु असुभ सलिल सब वहहीं,सुरसरि कोउ अपुनीत न कहहीं।
समरथ कह नहि दोस गुसाईं, रवि पावक सुर सरि की नाईं।

॥ दोहा ॥ जो असही सिप करहि नर जड़ विवेक अभिमान ॥
परहि कल्प भरि नर्क महुँ जीवकि ईस समान ॥६४॥

सुरसरि जल कृत वारुनि जाना, कबहु न सत करहि तेहि पाना।
सुरसरि मिले•••पावन जैसे,•••••••••••••• •••,।
समु सहज समरथ भगवाना, ऐहि विवाह सब विधि कल्याना।
॥• ••••राध्य पै अहहि महेस, आशु तोष पुनि किये कलेस।
जो तपु करै कुमारि तुम्हारी, •••विउ मेटि सकैं तिपुरारी।
जदपि वर अनेक जगमाही, इहि कह शिव तजि दूसर नाही।
वर दायक मन तारत भंजन, कृपा सिंधु सेवक मनरजन।
ईछित फल विनु शिव अवराधे, लहिएन कोटि जोग जप साधे।

॥ दोहा ॥ अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरजहि दीन्ह असीस।
होइहि यह कल्यान अब ससय तजहु गिरीस ॥६५॥

अस कहि ब्रह्म भवन तब गएऊ, आगिल चरित सुनहु जस भएऊ।
पतिहि एकांत पाइ कह मैना, नाथ न मैं बूझे मुनि बयना।
जो घर बर कुल होइ अनूपा, करिय बिवाहु सुता अनुरूपा।
नतु कन्या बरु रहउ कुमारी, कांत उमा मम प्रान पियारी।
जौं न मिलहि बर गिरजहि योगा, गिरिजड सहज कहहि सब लोगा।
सोइ बिचारि पति करेहु बिवाहू, जिहि न होइ पाछे पछिताहू।
अस कहि परी चरन धरि सीसा, बोले सहित सनेह गिरीसा।
बरु पावक प्रगटै ससिमाहीं, नारद बचन अमिथ्या नाहीं।

॥ दोहा ॥ प्रिया सोचु परिहरउ सब सुमिरहु श्री भगवान।
पारबती निमएउ जिहि सोई करै कल्यान ॥६६॥

अब जौ तुम्हहि सुता पर नेहू, तौ असि जाइ सिखावन देहू।
करै सो तप जिहि मिलै महेसू, आन उपाय न मिटहि कलेसू।
नारद बचन सगर्भ सहेतू, सुन्दर सब गुन निधि वृष केतू।
अस बिचारि तुम्ह तजहु असंका, सबहि भाँति शंकर अकलंका।
सुनि पति बचन हरषि मनमाहीं, गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं।
उमहि बिलोकि नयन भरि बारी, सहित सनेह गोद बैठारी।
बारहि बार लेइ उर लाई, गदगद कंठ न कछु कहि जाई।
जगत मातु सर्वज्ञ भवानी, मातु सुखद बोली मृदु बानी।

॥ दोहा ॥ सुनहु मातु मैं दीख अस सपन सुनावो तोहि ॥
सुन्दर गौर सु बिप्र बर अस उपदेसहु मोहि ॥६७॥

करहु जाइ तप सैल कुमारी, नारद कहा सो सत्य बिचारी।
मात पितहि पुनि यह मत भावा, तप सुखप्रद दुख दोष नसावा।
तप बल रचै प्रपंच बिधाता, तप बल बिष्णु सकल जगत्राता।
तप बल संभु करहि संहारा, तप बल सेष धरे महि भारा।

तप अधार सब श्र····थानी, करहि जाइ तप अस जिय जानी।
सुनत वचन वि···त महतारी, सपना सुनाइहि गिरिहि हकारी।
मात पितहि बहु विधि समुझाई, चली उमा तप हित हरषाई।
प्रिय परिवारु पिता अरु माता, भएउ विकल मुख आवे न बाता।

॥ दोहा ॥ वेद गिरा मुनि आइ तब सबहि कहा समुझाइ ॥
पारवती महिमा सुनत रहे प्रबोधे पाइ ॥६८॥

उर धरि उमा प्रान पति चरना, जाइ विपनि लागी तपु करना।
अति सुकुमारि न तन तप जोगू, पति पद सुमिरि तजेउ सब भोगू।
नित नव चरन उपज अनुरागा, बिसरी देह तपहि मनु लागा।
सवत सहस मूल फल खाए, साग खाइ सत वर्ष गमाए।
कछु दिन भोजन बारि बतासा, किए कठिन कछु दिन उपवासा।
वेल पाति महि परै सुखाई, तीनि सहस संवत सो खाई।
पुनि परहरेउ सुखाने परना, उमहि नाम तब भएउ अपर्ना।
देखि उमाहि तप खिन्न सरीरा, ब्रह्म गिरा भई गगन गंभीरा।

॥ दोहा ॥ भएउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराज कुमारि ॥
परिहरु दुःसह कलेश सब अब मिलहि त्रिपुरारि ॥६६॥

अस तप काहु न कीन्ह भवानी, भए अनेक धीर मुनि ज्ञानी।
अब उर धरहु ब्रह्म वर बानी, सत्य सुगम निगमादि बखानी।
आवें पिता बुलावन्ह जबही, हठ परिहरि घर जाएहु तबही।
मिलहि तुम्हहि जब सप्त ऋषीसा, तब जानेहु प्रमान बागीसा।
सुनत गिरा विधि गगन बखानी, पुलक गात गिरिजा हरषानी।
उमा चरित सुन्दर मैं गावा, सुनहु उमा के चरित सुहावा।
जब ते सती जाइ तनु त्यागा, तब ते शिव मन भएउ विरागा।
जपहि सदा रघुनायक नामा, जह तह सुनहि राम गुन ग्रामा।

॥ दोहा ॥ चितानन्द सुपधाम शिव विगत मोह मद मान ॥
विचरहिं महि धरि हृदय हरि सकल लोक अभिराम ॥१००॥

कतहु मुनिन उपदेसहिं ज्ञाना, कतहुँ रामगुन करहिं बखाना ।
जदपि अकाम तदपि भगवाना, भगति विरह दुख दुखित सुजाना ।
इहि विधि गए काल कछु बीती, नित नइ होइ राम पद प्रीति ।
नेम प्रेम संकर कर देखा, अविचल हृदय भक्ति कै रेखा ।
प्रगटे राम कृतज्ञ कृपाला, रूप सील विधि तेज विसाला ।
बहु प्रकार संकरहिं स•••हा, तुम्ह बिनु अस पन को निवाहा ।
बहु विधि राम शिवहिं समुझावा, पारवती कर जन्म•••वा ।
अति पुनीत गिरि की करनी, विस्तार सहित कृपानिधि बरनी ।

॥ दोहा ॥ अब विनती•••नहु शिव जौ मोपर निज नेहु ॥
जाहि विवाहउ सैलजहि यह मोहि मागे देहु ॥ १ ॥

कह शिव जदपि उचितअस नाही, नाथ वचन पुनि मेटि न जाही ।
शिर धरि आयसु करिय तुम्हारा, परम धरम यह नाथ हमारा ।
मात पिता गुरु प्रभु की बानी, विनहिं विचार करिय भल नाही ।
तुम सब भाति परम हितकारी, आज्ञा सिर पर नाथ तुम्हारी ।
प्रभु तोषेउ सुनि शंकर वचना, भगति विवेक धर्म युत रचना ।
कह प्रभुहर तुम्हार पन रहेउ, अब उर राखहु हम जो कहेउ ।
अंतरध्यान भए अस भाखी, शंकर सोइ मुरति उर राखी ।
तबहि सप्त ऋषि शिव पहं आए, बोले प्रभु अति वचन सुहाए ।

॥ दोहा ॥ पारवती पह जाइ तुम्ह प्रेम परिछा लेहु ।
गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन दूरि करेहु संदेह ॥ २ ॥

शिव के वचन मुनिन मुनि काना,चले तहा कानन गिरि नाना ।
ऋषि गौरि देखी तह कैसी, मूरतिवंत तपस्या जैसी ।

बोले मुनि सुनि शैलकुमारी, करहु कवन कारन त्रिपुरारी।
किहि अवराधहु का तुम्ह चहहू, हम सत्य वचन सब कहहू।
सुनित ऋषिन्ह के वचन भवानी, बोली गूढ मनोहर बानी।
कहत मरमन अति सकुचाई, हसिहहु सुनि हमारि जड़ताई।
मन हठ परा न सुनै सिखावा, चहत बारि पर भीति उठावा।
नारद कहा सत्य सोई जानी, बिनु पपन हम चहत उडानी।
देकहु मुनि अविवेक हमारा, चाहिय सिव ही सदा भरतार।

॥ दोहा ॥ सुनत वचन बिहसे ऋषय गिरि सभव तव देह।
नारद कर उपदेश सुनि कहहु वसहु किस गेह ॥ ३ ॥

दक्ष सुतन्ह उपदेसेन्हि जाई, तिन्ह पुनि भवन न देखा आई।
चित्र केतु कर धर उन्ह घाला, कनक कस्यपर पुनि अवहाला।
नारद सिष जे सुनहिन नारी, अवसि होइ तजि भवन भिखारी।
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा, आपु सरिस सबही चह कीन्हा।
तिहि के वचन मानि विस्वासा, तुम चाहहु पति सहज उदासा।
निर्गुन निलज्ज कुवेष कपाली, अगुन अगेह दिगवर व्याली।
कहहु कवन सुख अस बँह पाए, मली भूलि ठग के बौराए।
पच कहें शिव सती विवाही, पुनि अवडेरि मरा इहि ताही।

॥ दोहा ॥ अव सुख सोवहि सोच नहि भय मागि भव खाइ।
सहज एकाकिन्ह के भवन कहहु कि नारि पटाइ ॥ ४ ॥

अजहू मानहु कहा हमारा, हम तुम्ह कहु वरु नीक विचारा।
अति सुन्दर सुचि सुखद सुशीला, गावहि वेद जासु जस लीला।
दूषन रहित सकल गुनरा···, श्रीपति पुर वकुठ निवासी।
असवर तुम्हें मिलाउब आनी, सुनत विहसि कहु बचन भ···।
सत्य कहेउ मुनि भव तनुएहा, हठ न छूटे छूटे वरु देहा।

कनकौ पुनि पषान ते होई, जरेउ•••जन परिहर सोई ।
नारद वचन मैं न परिहरऊ, वसौ भवन उजरौ नहि डरऊ ।
गुरु के वचन प्रीत तिन जेही, सपनेउ सुलभ न सुभ गति तेही ।

॥ दोहा ॥ महादेव अवगुन भवन विष्णु सकल गुन धाम ।
जाकर मन रम जाहि सन ताहि ताही सो काम ॥ ५ ॥

जौ तुम मिलतेउ प्रथम मुनीसा, सुनतेउ सिख तुम्हारि धरि सीसा ।
अब मैं जनम शम्भुसन हारा, को गुन दूषन करै विचारा ।
जौ तुम्हरे हठ हृदय विसेषी, रहि न जाइ विनु किए बरेषी ।
तौ कौतुकपह आलस नाही, वर कन्या अनेक जगमाही ।
जन्म कोटि लगि रगर हमारी, वरौ शम्भु न तु रहउ कुमारी ।
तजौ न नारद कर उपदेसू, आपु कह सतवार महेसू ।
मैं पाँउ परौ कहै जगदवा, तुम गृह गवनहु भई विलवा ।
देखि प्रेम बोले मुनि ज्ञानी, जय जय जय जगदम्बिके भवानी ।

॥ दोहा ॥ तुम माया भगवान शिव सकल जगत पितुमात ।
नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषित गात ॥ ६ ॥

जाइ मुनिन हिमवतु पठाए, करि विनती गिरजा गृह लाए ।
वहुरि सप्त ऋषि शिव पह जाई, कथा उमा कै सकल सुनाई ।
भए मगन शिव सुनत सनेहा, हरषि सप्त ऋषि गवने गेहा ।
मन करि थिर त•••शम्भु सुजाना, लगे करन रघुनायक ध्याना ।
तारक असुर भएउ तिहि काला, भुज प्रताप बल तेज विसाला ।
तिहि सब लोक लोक मति जीते, भए देव सुख सपति रीते ।
अजर अमर सो जीति न जाई, हारे सुर करि विविध लराई ।
तब विरंचि सन जाइ पुकारे, देखे विधि सब देव दुखारे ।

॥ दोहा ॥ सब सन कहा बुझाइ बिधि दनुज निधन तब होई।
शंभु सुक्र संभूत सुत इहि सो जीतै रन सोइ ॥ ७ ॥

मोर कहा सुनि करहु उपाई, होइहि ईश्वर करहि सहाई।
सती जो तजी दच्छ मख देहा, जनम जाइ हिमाचल गेहा।
तिहि तपु कीन्ह शंभुपति लागी, शिव समाधि बैठे सबु त्यागी।
जदपि अहै असमञ्जस भारी, तदपि बात एक सुनहु हमारी।
पठवहु काम जाइ शिव पाहीं, करै छोभ शंकर मन माहीं।
तब हम जाइ शिवहि शिर नाई, करवाउब बिवाहु बरि आई।
इहि विधि भलेहि देव हित होई, मत अति नीक कहै सबु कोई।
अस्तुति सुरन कीन्हि अतहेतू, प्रगटेउ विषमबान भुष केतू।

॥ दोहा ॥ सुरन कही निज विपति सब सुनि मन कीन्ह विचार।
शंभु विरोध न कुशल मोहि विहसि कहेउ अस मार ॥ ८ ॥

तदपि करब मैं काज तुमारा, श्रुति···परम धर्म उपकारा।
परहित लागि तजहि जो देही, सतत संत प्रसंसत ते ही।
अस कहि × × × ×
× × × × आई।

॥ दोहा ॥ जो नृप त···किमि नारि नारि विरह मति भोरि।
देखि चरित म···मा सुनतत भ्रमति बुधि अति मोरि ॥ १३३

जो·······पक विभुकोउ, कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोउ।
अस जानि रिस जनि उर धरहू, जेहि विधि मोह मिटै सोई करहू।
मैं बन दीख राम प्रभुताई, अतिशय विकल न तुम्है सुनाई।
तदपि मलिन मन बोध न आवा, सो फलु भली भांति हम पावा।
अजहू कछु संसय मन मोरे, करहु कृपा बिनोव कर जोरे।

प्रभु मोहि तब बहुभाति प्रबोधा, जाय सो समुझि करहु जनि क्रोधा।
तब कर अस बिमोह मोहि नाही, रामकथा पर रुचि मन माही।
कहहु पुनीत राम गुण गाथा, भुजग राज भूषन सुर नाथा।

॥ दोहा ॥ बंदौ पद धरि धरनि सिर बि···करौ कर जोरि।
बरनौ रघुपति बिसद जम श्रुति सिद्धांत निचोरि ॥१३४॥

जदपि योषिता अन अधिकारी, (दा)सी मन क्रम वचन तुम्हारी।
गूढौ तत्व न साधु दुरावहि, आरत अधिकारी जह पावहि।
अति आरति पूछौ सुर राया, रघुबर कथा कहहु करि दाया।
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी, निर्गुन ब्रह्म सगुन बपुधारी।
पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा, बाल चरित पुनि कहहु उदारा।
कहहु जथा जानुकी बिवाही, राजु तजा सो दू···काही।
बन बसि कीन्ह चरित्र अपारा, कहहु नाथ जिमि रावन मारा।
सीला बिजै कहौ सुप केतु, ···सारंद्र मुनि होहु सचेतु।
राज बैठि कीन्ही बहु लीला, सकल कहौ शंकर सुप सीला।

॥ दोहा ॥ बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा सहित रघुबंश मनि किमि गवने निज धाम ॥१३५॥

पुनि प्रभु कहहु सो तत्व बखानी, जेहि बिज्ञान मगन मुनि ज्ञानी।
भगति ज्ञान बिज्ञान बिरागा, पुनि सब बरनहु सहित बिभागा।
औरौ राम रहस्य अनेका, कहहु नाथ अति बिमल बिबेका।
जो प्रभु मै पूछा नहि होई, सोउ दयाल राषेउ जनि गोई।
तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना, आन जीव पावर कह जाना।
प्रश्न उमा कै सहज सुहाई, छल बिहीन सुनि शिव मन भाई।
हर हिय राम चरित सब आऐ, प्रेम पुलकि लोचन जल छाऐ।
श्री रघुनाथ रूप उर आवा, परमानंद अमित सुप पावा।

॥ दोहा ॥ रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह ।
मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह ॥१३६।

भूलेहु सत्य होइ बिनु जाने, जिमि भुजग बिनु रजु पहिचाने ।
जेहि जाने जग जाई हेराई, जागे यथा सपन भ्रम जाई ।
बंदौ बाल रूप सोई रामू, सिद्ध सुलभ जप तप जिसु नामू ।
मंगल भवन अमंगल हारी, द्रवौ सो दसरथ अजिर बिहारी ।
करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी, हरषि सुधा सम गिरा उचारी ।
धन्य धन्य गिरिराज कुमारी, तुम्ह समान नहि···उपकारी ।
पूछेहु रघुपति कथा प्रसंगा, स···लोक जग पावनि गंगा ।
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी, कीन्हेहु प्रस्न जगत हित लागी ।

॥ दोहा ॥ राम कृपा ते गिरिजे सपनेहु तव मन माहि ।
सोक मोह संदेह भ्रम मम विचा(र) कछु नाहि ॥१३७।

तदपि असंका कीन्हेउ सोई, कहत सुनत सब कर हित होई ।
जिन्ह हरि कथा सुनी नहि काना, श्रवन रंध्र अहि भवन समाना ।
नयननि संत द(र)स नहि देखा, लोचन मोर पख कर लेखा ।
ते सिर कटु तूमरि सम तूला, जे न नवत हरि गुरु पद मूला ।
जिन्ह हरि भगति हृदय नहि आनी, जीवत सव समान ते प्रानी ।
जो नहि करहि राम गुन गाना, जीह सो दादुर जीह समाना ।
कुलिस कठोर निठुर सोई छाती, सुनि हरि चरित न जो हरषाती ।
गिरिजा सुनहु राम की लीला, सुर हित दनुज बिमोहन सीला ।

॥ दोहा ॥ राम कथा सुर धेनु सम सेवत सब सुखदानि ।
संत सभा सुरलोक सम कोन सुनै अस जानि ॥१३८॥

राम कथा सुन्दर कर(ता)री, संसय विहग उड़ावन हारी ।
राम कथा कलि विटप कुठारी, सादर सुनु गिरिराज कुमारी ।

रामनाम गुन चरित सुहाए, जन्म कर्म अगनित श्रुति गाए।
यथा अनंत राम भगवाना, तथा कथा कीरति गुन नाना।
तदपि यथा श्रुति जसि मति मोरी, कहिहौं देखि प्रीति अति तोरी।
उमा प्रश्न तव सहज सुहाई, सुखद संत संमत मोहि भाई।
ऐक बात नहि मोहि सुहानी, जदपि मोहबस कहेउ भवानी।
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना, जेहि श्रुति गाव धरहि मुनि ध्याना।

॥ दोहा ॥ कहहि सुनहि अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरि पद विमुख जानहि झूठ न साच ॥१३९॥

अज्ञ अकोविद अंध अभागी, काई मुकुर मुकुर मन लागी।
लंपट कपटी कुटिल विशेषी, सपनेहु संत सभा नहि देखी।
कहहि वेद असंमत बानी, जिन्हहि न सूझ लाभ नहि हानी।
मुकुर मलिन अरु नैन विहीना, रामरूप देखहि किमि दीना।
जिन्हके अगुन न सगुन विवेका, जल्पहि कल्पहि वचन अनेका।
हरि माया वश(ज)गत भ्रमाही, तिन्हहि कहत कछु अघटित नाही।
वातुल भूत विवश मतवारे, ते नहि बोलहि वचन विचारे।
जिन्ह किय महा मोह मद पाना, तिन्ह कर कहा करिय नहि काना।

॥ दोहा(१) अस निज हृदय विचारि तजु संशय भजु राम पद।
सुनु गिरिराज कुमारि भ्रम तम रविकर वचन मम ॥१४०॥

सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा, गावहि श्रुति पुरान बुध वेदा।
अगुन अरूप अलख गति जोई, भगत प्रेम वश सगुन सो होई।
कुमय हरहि भव संभव खेदा, जानत सब संशय कर छेदा।
जो गुनरहित सगुन सो कैसे, जल हिम उपल विलग नहि जैसे।
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा, तेहि किमि कहिय विमोह प्रसंगा।
राम सच्चिदानंद दिनेशा, नहि तह मोह निशा लवलेशा।

सहज प्रकासरूप भगवाना, नहि तह पुनि बिज्ञान बिहावा ।
हरप विषाद ज्ञान अज्ञाना, जीव धर्म अहमित्त अभिमाना ।
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना, •••मानद परेसु पुराना ।

॥ दोहा ॥ पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट पराय सनाथ ।
रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ कहि शिव नाएउ माथ ॥१४१॥

निज भ्रम नहि समुझहि अज्ञानी, प्रभु पर मोह धरहि जड प्रानी ।
यथा गगन घन पटल निहारी, झापेउ भानु कहहि कुविचारी ।
चितवत लोचन अंगुलि लाऐ, प्रगट युगुल ससि तेन्ह के भाऐ ।
उमा राम बिपईक अस मोहा, नभ तम धूरि धूम जिमि सोहा ।
विषय करत सुर जीव समेता, सकल एक ते एक सचेता ।
सब कर परम प्रकासक जोई, राम अनादि अवधपति सोई ।
जगत प्रकास प्रकासिक रामू, मायाधीस ज्ञान गुन धामू ।
जासु सत्य ताते जड माया, भास सत्य ईव मोह सहाया ।

॥ दोहा ॥ रजत सीप मह भास जिमि यथा भानुकर बारि ।
जदपि मृपा-विहु काल सोई भ्रम न सकै कोउ (टा)रि ॥१४२॥

ऐहि विधि हरि जग आश्रित रहही,जदपि असत्य देत दुष अहही ।
जो सपने सिर काटै कोई, विनु जागे न दूरि दुप होई।
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई, गिरिजा सो कृपाल रघुराई ।
आदि अंत कोउ जासु न पावा,मति अनुमानि निगम अस गावा ।
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना,कर बिनु कर्म करै विधि नाना ।
आनन रहित सकल रस भोगी, बुनि बानी कविता वड योगी ।
तन बिनु परस नयन बिनु देपा, ग्रहै घ्रान बिनु बास अलेपा ।
असि सब भांति अलौकिक करनी, महिमा जासु जा•••बरनी ।

॥ सोरठा ॥ सो संवाद उदार जेहि विधि भा आगे कहब ॥
सुनहु राम अवतार चरित परम सुन्दर अनघ ॥
॥ सोरठा ॥ हरि गुन अगम अपार कथा रूप अगनित अमित ॥
मैं निज मति अनुसार कहौं उमा सादर सुनहु ॥१४८॥

सुनु गिरिजा हरि चरित सुहाए, विपुल विसद निगमागम गाए।
हरि अवतार हेतु जेहि होई, मिथ्या मुमति कहि जाई न सोई।
राम अतर्क बुद्धि मन बानी, मत हमार अस सुनहि सयानी।
तदपि संत मुनि वेद पुराना, जस कछु कहहि स्वमति अनुमाना।
तस मैं सुमुखि सुनावौं तोही, समुझि परै जस कारन मोही।
जब जब होइ धर्म की हानी, बाढहि असुर अधम अभिमानी।
करहि अनीति जाई नहि बरनी, सादहि विप्र धेनु सु धरनी।
तब तब प्रभु धरि विविधि सरीरा, हरहि कृपा निधि सज्जन पीरा।
॥ दोहा ॥ असुर मारि थापहि सुरन्ह राखहि निज श्रुति सेतु ॥
जग विस्तारहि विसद जस राम जन्म कर हेतु ॥१४६॥

सोइ जस गाई भगत भव तरही, कृपासिंधु जनहित तनु धरही।
राम जन्म के हेतु अनेका, परम विचित्र ऐक ते ऐका।
जन्म ऐक दुई कहउ बखानी, सावधान सुमुखि सयानी।
द्वारपाल हरिके प्रिय दोउ, जय अरु विजय जान सब कोउ।
विप्र श्राप ते दूनों भाई, तामस असुर देह तिन्ह पाई।
कनक कश्यप अरु हाटक लोचन, जगत विदित सुरपति पद मोचन।
विजई समर वीर विख्याता, धरि बराह वपु एक निपाता।
होई नरहरि दूसर पुनि मारा, जन प्रह्लाद सुजसु विस्तारा।
॥ दोहा ॥ भेए निसाचर जाइ तेई महावीर बलवान।
कुंभकरन रावन सुभट सुर विजय जग जान ॥१५०॥

मुकुत न भऐ हते भगवाना, तीनि. जन्म द्विज वचन प्रमाना।

एक बार तिन्हके हित लागी, धरेउ सरीर भगत अनुरागी।
कस्यप अदिति तहा पितु माता, दसरथ कौशिल्या बिख्याता।
ऐक कलप ऐहि अवतारा, चरित पवित्र किऐ संसारा।
एक कल्प सुर देखि दुखारे, समर जलधर सन सब हारे।
संभु कीन्ह संग्राम अपारा, दनुज महा बल मरै न मरा।
परम सती असुराधिप नारी, तेहिबल ताहि न जितहि पुरारी।

॥ दोहा ॥ •••छल करि टा•••ता व्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहि जानेउ परम तब श्राप कोपि करि दीन्ह ॥१५१॥

•••सु श्राप हरि•••प्रमाना, कौतुक निधि कृपाल भगवाना।
तहा जलंधर रावन भऐउ, (?)।
ऐक जन्म कर कारन ऐहा, जेहि लगि राम धरी नर देहा।
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी, सुनि मुनि बरन्ह कबिन घनेरी।
नारद श्राप दीन्ह ऐक बारा, ऐक कलप तेहि लगि अवतारा।
गिरिजा चकित भई सुनि बानी, नारद बिस्नु भगत मुनि ज्ञानी।
कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा, का अपराध रमापति कीन्हा।
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी, मुनि मन मोहि आचरजु भारी।

॥ दोहा ॥ बोले बिहसि महेस तब (ज्ञानी) मूढ न कोई।
जेहि जस रघुपति करहि सो तस तेहि छन होई॥

॥ सोरठा॥ कहौ राम गुन गाथ भरद्वाज सादर सुन•••॥
भव भजन रघुनाथ भजु तुलसी तजु मान मद ॥१५२॥

हिमगिरि गुहा ऐक अति पावनि, बह समीप सुरसरी सुहावनि।
देखी देव ऋषि मन अति भावा, श्राप हेत तपहि मनु लावा।
निरखि मै•••त सरां नरनि बिभागा, भऐउ रमापति पद अनुरागा।
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी, सहज•••मिल मन•••समाधी।

मुनिगति देखि सुरेस डराना, कामहि बोलि कीन्ह सनमाना ।
सहित सहाय जा···—हेतू, चलेउ हरषि हिय जलचर केतू ।
सुनासीर मनमहु अति त्रासा, चहत देवऋषि···वासा ।
जे कामी लोलप जग माहीं, कुटिल काग ईव सबहि डेराहीं ।
॥ दोहा ॥ सुर हाड लै भाग...स्वान निरखि मृगराज ।
छीनि लेई जनि जानहु तिमि सुरपतिहि न लाज ॥१५४॥
तेहि आश्रमहि मदन जब गएउ, निज माया बसत निर्मएउ ।
कुसुमित निविध विटप बहुरगा, कूजहि कोकिल गुजहि भृगा ।
चली सुहावनि त्रिविधि बयारी, काम कृसानु बढावनि हारी ।
रमादिक सुर नारि नवीना, सकल असम सर कला प्रवीना ।
करहि गान बहु तान त...गा, बहु विधि क्रीडहि पानि पतगा ।
देव सहाय मदन हरषाना, कीन्हेसि पुनि प्रपच विधि नाना ।
काम कला कछु मुनिहि न व्यापी, निज भएउ डरेउ मनो भवपापी ।
शिव कि चापि सकै काउ तासू, बड रखवार रमापति जासु ।
॥ दोहा ॥ सहित सहाय सभीत अति मानि हारि मन मैन ।
गह सिजाई मुनिचरन तब कहि सठि आरत बैन ॥१५५॥
भएउ न नारद मन कछु रोषा, कहि प्रिय वचन काम परितोषा ।
नाइ चरन सिर आएसु पाई, चलेउ मदन तब सहित सहाई ।
मुनि सुसीलता आपनि करनी, सुरपति सभा जाई सब बरनी ।
मुनि सबके मन विस्मय आवा, मुनिहि प्रसं···हरिहि सिर नावा ।
तब नारद गवने सिव पाहीं, जीत काम अहमित मन माही ।
सेवहि···सकल ताही, बरै सीलनिधि कन्या जाही ।
लच्छन सब विचारि उर राखे, कछुक बनाइ भूप सन भाखे ।
सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं, नारद चले सोच मन माहीं ।
करौं जाइ सोई जतनु विचारी, जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी ।

तह बैठे शभुगन दोउ, विप्र वेष गति लखै न कोउ।
कहि कुशल नारदहि सुनाई, नीकि दीन्हि हरि सुन्दरताई।
रीझिहि राजकुअरि छवि देखी, इन्हहि वरिहि हरि जानि विसेषी।
मुनिहि मोह मन हाथ पराऐ, हसहि शभुगन अति सचु पाऐ।
जदपि सुनहि मुनि अटपटि बानी, समुझि न परै बुद्धि भ्रमसानी।
केहु न लखा सो चरित विसेषी, सो सरूप नृप कन्या देखी।
मर्कट बदन भयकर देही, देखत हृदय क्रोध नहि तेही।

॥ दोहा ॥ सखी सग लै कुअरि तब•••जनु राज मराल।
देखत फिरै महीप सब कर सरोज जयमाल ॥१६३॥

जेहि दिसि बैठे••••••, सो दिसि तेहि न बिलोकी भूली।
पुनि पुनि मुनि उकसहि अकुलाही, देखि दसा हरगन मुसिकाही।
धरि नृप तनु तह गए कृपाला, कुअरि हरषि मेली जयमाला।
दुलहिनि लै गे लछिनिवासा, नृप समाज सब भयेउ निरासा।
मुनि अति विकल मोहमति नाठी, मनि गिरि गई छूटि जनुगाठी।
तब हरगन बोले मुसकाई, निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई।
अस कहि दोउ भागे भय भारी, बदन दीख मुनि वारि निहारी।
वेष बिलोकि क्रोध अति बाढा, तिन्हहि श्राप दीन्हेउ अति गाढा।

॥ दोहा ॥ होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ।
हसेहु हमहि सो लेहु फल बहुरि हसेउ मुनि कोउ ॥१६४॥

पुनि जल दीख रूप निज पावा, तदपि हृदय सतोष न आवा।
फरकत अधर कोप मन माही, सपदि चले कमलापति पाही।
देहौ श्राप कि मरि हौ जाई, जगत मोरि उपहास कराई।
बीचहि पथ मिले दनुजारी, सग रमा सोई राजकुमारी।
बोले मधुर बचन सुर साई, मुनि कह चलउ विकल की नाई।

सुनत वचन उपजा अति क्रोधा, मायावश न रहा मन बोधा।
पर सम्पदा सकहु नहिं देखी, तुम्हरे इरषा कपट विसेखी।
मथत सिंधु रुद्रहि बौराएहु, सुरन्ह प्रेरि विष पान कराएहु।

॥ दोहा ॥ असुर सुरा विष संकरहि, आपु रमा मनि चारु।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट व्यवहारु ॥१६६॥

परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई, भावै मन करौ तुम्ह सोई।
भलेहु मन्द मन्देहु भल करहू, बिसमय हरष न हिय कछु धरहू।
डहकि डहकि परचेहु सब काहू। अति असंक मन सदा उछाहू।
कर्म सुभासुभ तुम्हहि न बाधा, अबलगि तुम्है न काहू साधा।
भले भवन अब बाईन्ह दीन्हा, पावहुगे फल आपन कीन्हा।
व्याकुल कियो मोहि यह देही, सो तनु धरहु श्राप मम येही।
कपि आकृत तुम्ह कीन्ह हमारी, करिहहिं कीस सहाई तुम्हारी।
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी, नारि विरह तुम्ह होव दुखारी।

॥ दोहा ॥ श्रापु सीसधरि हरषि हिय प्रभु बहु विनती कीन्हि।
निज माया की प्रबलता हरषि कृपा निधि लीन्हि ॥१६७॥

जब हरि माया दूरि निवारी, नहिं तह रमा न राजकुमारी।
मोह विगत मुनि ससि भयहरना, कह्यो पाहि प्रन तारत चरना।
मृषा (१) होहु मम साप कृपाला, मम इच्छा कह दीन्हदयाला।
मैं दुरवचन कहे बहुतेरे, कह मुनि पाप मिटहि किमि मेरे।
जपहु जाई संकर सतनामा, हुवहै हृदे तुरत विश्रामा।
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरे, ऋषि परतीति तजहु जनि मोरे।
जिहि पर कृपा न करहि पुरारी, सो न पाव मुनि भगति हमारी।
अस उर धरि महि विचरहु जाई, अब न तुम्है माया नियराई।

॥ दोहा ॥ बहु बिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु •इव भए अन्तरध्यान।
सत्यलोक नारद चले करत रामगुन गान ॥१६८॥

हरगन मुनिहि जात पथ देषी, बिगत मोह मन हर्ष बिसेषी।
अति सभीति नारद पह आये, गहि पद आरत बचन सुहाये।
हरगन हम न विप्र मुनि राया, बड अपराध कीन्ह फल पाया।
श्राप अनुग्रह करहु कृपाला, बोले नारद दीनदयाला।
निसिचर जाइ होउ तुम्ह दोउ, वैभव विपुल तेज वल होउ।
भुज बल विस्व जिते तुम्ह ज•••आ, धरिहहि विस्नु मनुज तनु तजा।
समर मरण हरि हाथ तुम्हारा, होई हो मुकुति न पुनि संसारा।
चले युगुल मुनि पद सिर नाई, भए निशाचर कुल मह जाई।

॥ दोहा ॥ ऐक कलप ऐहि हेत प्रभु लीन्ह मनुज अवतार।
सुर रंजन सज्जन सुषद हरि भजन भगवान ॥१६९॥

ऐहि विधि जन्म कर्म हरि केरे, सुन्दर सुषद सयाने घनेरे।
कलप कलप प्रति प्रभु•••तरही, चारु चरित नाम जमु लीही।
तब तब कथा मुनीसन्ह गाई, परम पुनीत संकरहि सुनाई।
विविधि प्रसंग अनूप बषाने, करहि न सुनि अस राम निहाने।
हरिहि अनत हरि कथा अनंता, कहहि सुनहि बहु गावहि संता।
रामचन्द्र के चरित सुहाऐ, कल्प कोटि लगि जाइ न गाऐ।
यह प्रसग••••••भवानी, हरि माया मोहष मुनि ग्यानी।
प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी, सेवत सुलभ•••कल संसारी।

॥ सोरठा ॥ सुर नर मुनि कोउ नाहि जेहि न मोह माया प्रबल।
अस बिचारि मन माहि भजिय महा मायापतिहि ॥१७०॥

अमर हेत सुनु सैलकुमारी, कही विचित्र मय कथा विचारी।
जेहि कारन प्रभु अगुन अरूपा, ब्रह्म भए कोसल पुर भूपा।

जो प्रभु विपिन फिरत तुम्ह देखा, बंधु सहित सिय सुन्दर भेषा।
जासु चरित अवलोकि भवानी सती सरीर रहिउ बौरानी।
अजहुँ न छाया मिटत तुम्हारी, तासु चरित सुनु भ्रम रुज हारी।
लीला कीन्हि जो तेहि अवतारा, सो सब कहिहौं मति अनुसारा।
भरद्वाज सुनु संकर बानी, सकुचित सप्रेम उमा मुसुकानी।
लगे बहुरि बरनै वृषकेतू, सो······भयेउ जेहि हेतू।

॥ दोहा ॥ सो मैं तुम्ह सन कहहु सब सुनु मुनीस मनु लाई।
राम कथा कलि मल हरण मंगल करनि सुहाई ॥१७१॥

स्वयं भूप अरु मनु सतरूपा, जिन्ह तें भ नर ···ष्टि अनूपा।
दंपति धर्म आचरन नीका, अजहूँ गावे श्रुति जिन्हके लीका।
नृप उत्तान पाद सुत तासू, ध्रुव हरि भगत भये सुत जासू।
लघु सुत नाम प्रियाव्रत जाही, वेद पुरान प्रसंसत ताही।
देवहुती पुनि तासु कुमारी, जो मुनि कर्द कै प्रिय नारी।
आदि देव प्रभु दीनदयाला, प्रगटे कपि × × ×।

× × × ×

······त हम पर नेहू, तौ प्रसन्न हुए यह बर देहू।
जो सरूप बस शिव मन माही, जेहि कारन मुनि जतनु कराही।
जो भुसुंडि मन मानस हंसा, अगुन सगुन जेहि निगम प्रसंसा।
देखहि हम सो रूप भरि लोचन, कृपा करहु प्रन तारत मोचन।
दंपति वचन परम प्रिय लागे, मृदुल विनीत प्रेम रस पागे।
भगत वत्सल प्रभु कृपा निधाना, निस्वबास प्रगट भगवाना।

॥ दोहा ॥ नील सरोरुह नील मनि नील नीर घरस्याम।
लाजहि तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम ॥१७६॥

सरद मयंक बदन छवि सींवा, चारु कपोल चिबुक कर ग्रीवा।

अधर अरुन रद सुन्दरि नासा, विधि कर निकर विनिंत हासा।
नव अंबुज अंबक छवि नीकी, चितवनि ललित भावती जीकी।
भृकुटि मनोज चाप छविहारी, तिलक लिलाट पटल दुतिकारी
कुंडल मुकुट मकर सिर भ्राजा, कुटिल केस जनु मधुप समाजा।
पीत बसन रुचिर बनमाला, पदिक हार भूषन मनि जाला।
केहरि कंध चारु उ अगा मानो नील गिरी सुर गंगा।
करि सावक सुंडइ भुजदंडा, कटि निषंग कर सर को दंडा।
बाह बिभूषन सुन्दरि तेउ, जिनहि बिलोकि मैन भैय भेउ।

॥ दोहा ॥ तडित विनिंदक पीत पट उदर रेष वर तीनि ॥
नाभि मनोहर लेत•••मुन भवर छवि छीनि ॥१७७॥

पद राजीव बरनि नहि जाही, मुनिमन मधुप बसहि जिन्ह•••।
बाम भाग सोहत अनुकूला, आदि सक्ति छवि निधि जग मूला।
जासु अंस उपजै गुनखानी, अगनित लछि उमा ब्रह्मायनी।
भृकुटि बिलास जासु जग होई, रामबाम दिशि सीता सोई।
छवि समुद्र हरि रूप बिलोकी, एक टक रहे नयन पट रोकी।
चितवहि सादर रूप अनूपा, त्रपित न मानहि मन सत रूपा।
हर्ष बिबस तनदसा भुलानी, परेउ दंड इव गहि पद पानी।
सिर परसे प्रभु निज पद कंजा, तुरत उठाए करुना पुंजा।

॥ दोहा ॥ बोले कृपा निधान तब अति प्रसन्न मोहि जानि।
मानहु वर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि ॥१७८॥

सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी, धरि धीरजु बोले मृदु बानी।
नाथ देखि पद कमल तुम्हारे, अब पूजे सब काम हमारे।
एक लालसा बडि उर माही, सुगम अगम कहि जात सो नाही।
तुम्हहि देत अति सुगम गुसाई, अगम लागि आपन कदराई।

यथा दरिद्र विबुध तरु पाई बहु सम्पति मागति सकुचाई
तासु प्रभाव न जानत सोई, यथा हृदय मम ससय होई।
सो तुम्ह जानहु अतरजामी, पुरवहु नाथ मनोरथ स्वामी।
सकुच विहाई मागु नृप मोही, मोरे नहि अदेत कछु तोही।

॥दोहा॥ दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कही सति भाउ।
चाहौ तुम्हहि समान सुत प्रभुसन कवन दुराउ ॥१७६॥

देखि प्रीति× × × × ×

आगम देखि नृपति पछिताई, फिरेव महावन परेउ भुलाई।

॥दोहा॥ पेद चीन छुधित त्रषित राजा वाजि समेत।
खोजत व्याकुल सरित सर जल विन भयो अचेत ॥१८७॥

फिरत विपन एक आश्रम देखा, तह वस नृपति कपट मुनि वेखा।
जासु देस नृप लीन्ह छुडाई, समर सैन तजि गएउ पराई।
समय प्रताप भान कै जानी, आपन अति असमय अनुमानी।
गएउ नग्रह-मन वहुत गिलानी, मिला न राजहि वटु अभिमानी।
रिस उर मारि रंक जिमि राजा, विपनि वसै तापस के साजा।
तासु समीप गवन नृप कीन्हा, यह प्रताप रवि तेहि तब चीन्हा।
राउ त्रसित नहि सो पहिचाना, देखि सुवेष महा मुनि जाना।
उतरि तुरग ते कीन्ह प्रनामा, परम चतुर निज कहेउ न नामा।

॥दोहा॥ भूपति त्रसित विलोकि तेहि सरवर दीन्ह दिखाई।
मज्जन पान समेतहय कीन्ह नृपति हरषाई ॥१८८॥

गए श्रम सकल सुखी नृप भएउ, निज आश्रम तापस लै गएउ।
आसन दीन्हि अस्त रविजानी, पुनि तापस बोलेउ मृदु वानी।
को तुम्ह कस वन फिरहु अकेले, सुन्दर जुवा जीव पर हेले।

चक्रवर्ति के लच्छन तोरे, देखत दया ला
नाम प्रताप भानु अवनीसा, तासु सचिव
फिरत अहेरेउ (?) भुलाई, बड़े भा
हमकहु दुर्लभ दरसु तुम्हारा, जानतहू फ
कह मुनि तात भयेउ अँधियारा, जोजन

॥ दोहा ॥ निसा घोर गंभीर बन पथ
बसहु आजु अस जानि जिय
तुलसी जसि भवतव्यता तैसी
आपु न आवै ताहि पह कि

भलेहि नाथ आयेसु धरि सीसा, बांधि
नर बहु भाति प्रसंसेउ ताही, चरननि
पुनि बोलेउ नृप गिरा सुहाई, जानि
मुहि मुनीस सुत सेवक जानी, नाथ
तेहि न जाना नृपहि सो जाना, भूप
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा, छल बल
समुझि राज सुख दुखित अराती,
सरल बचन नृपके सुनि काना, बयर

॥ दोहा ॥ कपट बोरि बानी मृदुल
नाम हमार भिखारि अब

कह नृप जइ बिज्ञान निधाना, तुम्ह
सदा रहै अपन पौ दुराए, सब बिधि
तेहिते कहहि संत श्रुति टेरे, परम
तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा, होत
जोसि सोसि तव चरन नमामी, मोपर कृपा

सहज प्रीति भूपति कै देखी, आपु विषै विस्वास विसेषी।
सब प्रकार राजहि अपनाई, बोलेउ अधिक सनेह जनाई।
सुनु सतभाव कहौं महिपाला, इहां बसत बीते बहु काला।
॥ दोहा ॥ अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ मैं न जनावा काहु।
लोकमान्यता अनल सम कर तपु कानन दाहु ॥१६२॥
॥ सोरठा ॥ तुलसी देखि सुवेष भूलहि मूढ़ न चतुर नर।
सुन्दरि केकहि पेखु वचन सुधा सम असन अहि ॥१६३॥
तातें गुप्त रहौं जगमाहीं, हरि तजि आन प्रयोजन नाहीं।
प्रभु जानत सबु बिन जनाऐं, कहहु कवन विधि लोक रिझाऐं।
तुम सुचि सुमति परमप्रिय मोरे, प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरे।
अब जौं तात दुरावौं तोही, दारुन दोष घटै अति मोही।
जिमि जिमि तापस कहै उदासा, तिमि २ नृपहि उपजि बिस्वासा
देखा सुवश कर्म मन बानी, तब तापस बोले बग ध्यानी।
नाम हमार ऐक तन भाई, सुनि नृप बोलेउ गिरा सुहाई।
कहहु नाम कर अर्थ बखानी, मोहि सेवक अति आपन जानी।
॥ दोहा ॥ आदि सृष्टि उपजी जबहि तब उत्तपति भै मोरि।
नाम ऐक तन हेत ते देहु न धरेउ बहोरि ॥१६४॥
जनि आचर्य करई मन माहीं, सुत तप ते कछु दुर्लभ नाहीं।
तप बल ते जग सृजै बिधाता, तप बल बिष्णु भऐ परित्राता।
तप बल संभु करहि संघारा, तपते अगम न कछु संसारा।
भऐउ नृपति सुनि अति अनुरागा, कथा पुरातन कहै सो लागा।
धर्म कर्म इतिहास अनेका, करै निरूपन भगति बिवेका।
उद्भव पालय प्रलय कहानी, कहैसि अमित आचर्य बखानी।
सुनी महीस तापस बस भएउ, आपन नाम कहन तब लएउ।
कह तापस नृप जानौ तोही, कीन्हेहु कपट लाग भल मोही।

चक्रवति के लच्छन तोरे, देखत दया लागि अति मोरे।
नाम प्रताप भान अवनीसा, तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा।
फिरत अहेरेउ (!) भुलाई, वड़े भाग पद देखे आई।
हमकहु दुर्लभ दरसु तुम्हारा, जानतहू कछु भल होनिहारा।
कह मुनि तात भएउ अँधियारा, जोजन सत्तरि नगर तुम्हारा।
॥ दोहा ॥ निसा घोर गंभीर बन पथ न सुनहु सुजान।
बसहु आजु अस जानि जिय जाएहु होत बिहान ॥१८६
तुलसी जसि भवतव्यता तैसी मिल सहाई।
आपु न आवै ताहि पह कि ताहि तहा लै जाई ॥१६०
भलेहि नाथ आगसुमरि सीसा, बाधि तुरग तरु बैठ महीसा।
नृप बहु भाति प्रसंसेउ ताही, चरनवदि निज भाग सराही।
पुनि बोलेउ नृप गुरा सुहाई, जानि पिता प्रभु करौ ढिठाई।
मुहि मुनीस सुत सेवक जानी, नाथ नाम निज कहहु बखानी।
तेहि न जाना नृपहि सो जाना, भूप हृदय सो कपट सयाना।
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा, छल बल कीन्ह चहै निज काजा।
समुभि राज सुख दुखित अराती, आवानल इव सुलगै सुछाती।
सरल बचन नृपके सुनि काना, बयर सम्हारि हृदय हरषाना।
॥ दोहा ॥ कपट बोरि बानी मृदुल बोलेउ युगुति समेत।
नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत ॥१६
यह नृप कह बिज्ञान निधाना, तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना।
सदा रहै अपन पै दुराए, सब बिधि कुसल कुवेष बनाए।
तेहिते कहहि सत स्रुति टेरे, परम अकिंचन प्रिय हरि केरे।
तुम्ह सम अगम भिखारि अगेहा, होत बिरचि सिवहि सदेहा।
जोसि सोसि तव चरन नमामी, मोपर कृपा करहु अब स्वामी।

सहज प्रीति भूपति कै देखी, आपु विषै विस्वास विसेषी।
सब प्रकार राजहि अपनाई, बोलेउ अधिक सनेहु जनाई।
सुनु सतभाव कहौ महिपाला, इहा वसत बीते बहु काला।
॥ दोहा ॥ अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ मैन जनावा काहु।
लोकमान्यता अनल सम कर तपु कानन दाहु ॥१६२॥
॥ सोरठा ॥ तुलसी देखि सुवेष भूलहि मूढ न चतुर नर।
सुन्दरि केकहि वेषु बचन सुधा सम असन अहि ॥१६३॥
ताते गुप्त रहौ जगमाही, हरि तजि आन प्रयोजन नाही।
प्रभु जानत सबु बिन जनाऐ, कहहु कवन विधि लोक रिझाऐ।
तुम सुचि सुमति परमप्रिय मोरे, प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरे।
अब जो तात दुरावौ तोही, दारुन दोष घटै अति मोही।
जिमि जिमि तापस कहै उदासा, तिमि २ नृपहि उपजि विस्वासा
देखा सुवस कर्म मन बानी, तब तापस बोले बग ध्यानी।
नाम हमार ऐक तन भाई, सुनि नृप बोलेउ गिरा सुहाई।
कहहु नाम कर अर्थ बखानी, मोहि सेवक अति आपन जानी।
॥ दोहा ॥ आदि सृष्टि उपजी जबहि तब उत्तपति भै मोरि।
नाम ऐक तन हेत ते देहु न धरेउ वहोरि ॥१६४॥
जनि आचर्य करई मन माही, सुत तप ते कछु दुर्लभ नाही।
तप बल ते जग सृजै विधाता, तप बल विष्णु भऐ परिनाता।
तप बल संभु करहि संघारा, तपते अगम न कछु संसारा।
भऐउ नृपति सुनि अति अनुरागा, कथा पुरातन कहै सो लागा।
धर्म कर्म इतिहास अनेका, करै निरूपन भगति विवेका।
उद्भव पालय प्रलय कहानी, कहेसि अमित आचर्य बखानी।
सुनी महीस तापस बस भएउ, आपन नाम कहन तब लएउ।
कह तापस नृप जानौ तोही, कीन्हेहु कपट लाग भल मोही।

॥ सोरठा ॥ सुन महीश असि नीति जहँतहँ नामु नि कहहिं नृप।
मोहि तोहि पर प्रीति सोई चतुर विचारि तव ॥१६१

नाम तुम्हार प्रताप दिनेसा, सत्यकेतु तव पिता नरेसा।
गुरु प्रसाद जानिय सब राजा, कहिअ न आपनि जानि अकाजा।
देखि तात तव सहज सुधाई, प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई।
उपजि परी ममिता मन मोरे, कहउ कथा निज पूछे तोरे।
अब प्रसन्न मैं संसय नाहीं, मागु जु भूप भाव मन माहीं।
सुनि सुबचन भूपति हरषाना, गहि पद विनै कीन विधि नाना।
कृपा सिंधु मुनि दरसन तोरे, चारि पदारथ कर तल मोरे।
प्रभु तथापि प्रसन्न बिलोकी, मागि अगम वर होउ बिसोकी।

॥ दोहा ॥ अजर अमर दुख रहित तनु समर जिते नहि कोई।
ऐक छत्र रिपु हीन म[illegible] राजु कल्प सत होई ॥१६१

कह तापस नृप ऐसइ होउ, कारन ऐक कठिन सुनु सोउ।
कालउ तव पद नाईहि सीसा, ऐक विप्रकुल छाडि महीसा।
तप बल विप्र सदा बरिआरा, तिन्ह कर कोप न को रखवारा।
जो विप्रन्ह बस करहु नरेसा, तौ तुव बस विधि विष्णु महेसा।
चलन ब्रह्म कुल सन बरिआई, सत्य कहौ दोउ भुजा उठाई।
विप्र श्राप बिनु सुनु महिपाला, तोर नास नहि कवनिउ काला।
हरषेउ राउ बचन सुनि तासू, नाथ न होइ मोरि अब नासू।
तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना, मोरइ सर्बकाल कल्याना।

॥ दोहा ॥ [illegible] हि कपट मुनि बोला कुटिल बहोरि।
[illegible]लब हमार भुलाव निज कहहु तह मैं न खोरि ॥१६७

ताते मैं तोहि बरजौं राजा, कहे कथा तव परम अकाजा।
छठे श्रवन जइ सुनत कहानी, नाम तुम्हार सत्य मम बानी।

अह प्रगटे अथवा द्विज श्रापा, नास तोर सुन भानप्रतापा ।
आन उपाउ बिप्र तव नाही, जौ हरि हर कोपहि मन माही ।
सत्य नाथ पद गहि नृप भाखा, द्विज गुरु कोप कहहु को राखा ।
राखै गुर जौ कोप बिधाता, गुर बिरोध नहि कोउ जगत्राता ।
जौ न चलब हम कहे तुम्हारे, होउ नास नहि सोच हमारे ।
ऐकहि उर डरपत मन मोरा, प्रभु महिदेव श्राप अ (ति) घोरा ।

॥ दोहा ॥ होहि बिप्रबस कवन बिधि कहहु कृपा करि सोउ ।
तुम्ह तजि दीनदयाल नि (ज) हितु न देखौ कोउ ॥१६८॥

सुनु नृप बिबिधि जतन जग माही, कष्ट साधि पुनि होहि कि नाही ।
अहै ऐक अति सुगम उपाउ, मम आधीन जुगति नृप सोउ ।
तहा परंत ऐक कठिनाई, मोर जान पुनि नागर न भाई ।
आजु लगे अरु जबते भएउ, काहू के ग्रह ग्राम न गएउ ।
जौ न जाउ तब होइ अकाजू, बनी आई असमंजस आजू ।
सुनि महीस बोले मृदु बानी, नाथ निगम असि नीति बखानी ।
बडे सनेह लघुन्ह पर करही, गिरि निज सिरन्ह सदा त्रन धरही ।
जल अगाध मौलि वह फेनू, संतत धरनि धरत सिर रेनू ।

॥ दोहा ॥ अस कहि गहे नरेस पद स्वामी होहु कृपाल ।
मोहि लागि दुख सहिय प्रभु सज्जन दीनदयाल ॥१६९॥

जानि नृपहि आपन आधीना, बोला तापस कपट प्रबीना ।
सत्य कहौ भूपति सुनु तोही, जग नाहि न दुर्लभ कछु मोही ।
अवसि काज करब मै तोरा, मन क्रम बचन भगत तै मोरा ।
योग जुगुति तप मंत्र प्रभाउ, फलौ तबहि जब करिय उपाउ ।
जौ नरेस मै करब रसोई, तुम्ह परसन्हु मोहि जान न कोई ।
अन्न सो जोई भोजनु करई, सोइ सोइ तव आयेसु अनुसरई ।

पुनि तिन्हके कर जेवै कोउ, तन वस होइ भूप सुनु सोउ ।
जाइ उपाइ रचहु नृप ऐहू, सवत भरि सन्त्य करेहू ।

॥ दोहा ॥ नितन्ह तन द्विज सहस दस बरेहु सहित परिवार ।
मै तुइरे सन्त्य लगि दिनहि करव जोनार ॥२००॥

एह विधि भूप कष्ट अति थोरे, होई है सक(ल) विप्र वस तोरे ।
करिहै विप्र होम मष सोवा(?), तेहि प्रसग सहिजहि यम्देवा ।
और एक तोहि कहउ लषाऊ, मै ऐहि वेष न अ(ा)उव काउ ।
तुम्हरे उपरोहित कहु राया, हरि आनव मै करि निज माया ।
तप वल करि तेहि आपु समाना, रचिहे इहा वरप परिमाना ।
मै धरि तास पेप सुनु राजा, सव विधि तोर सम्हारव काजा ।
मै निशि वहुत सयन अव कीजै, मोहि तोहि भेट भूप दिन तीजे ।
मै तव वल तोहि तुरग समेता, पहुचहो सोवत निकेता ।

॥ दोहा ॥ मैं आउव सोई वेप धरि पहिचानहु तव मोहि ।
जव ऐकांत वोलाई सव कथा सुनावौ तोहि ॥२०१॥

सयन कीन नृप आऐसु मानी, आसन जाइ वैठ छल ज्ञानी ।
श्रमति भूप निद्रा अति आई, सो किमि सोव सोच अधिकाई ।
काल केत निसिचर तह आवा, जेहि सुकर हुय नृपहि भुलावा ।
परम मित्र तापस नृप केरा,.........(?).........
तेहि के सत सुत अरु दस भाई, षल अति अजय देव दुपदाई ।
प्रथमहि भूप समर सव मारे, विप्र सत सुर देपि दुपारे ।
तेहि षल पाछिल वैर समा(रा), तापस नृप मिलि मतु विचारा ।
जेहि रिपु छय सोई रचेनि उपाउ, भावी वस न जान कछुराई (?)

॥ दोहा ॥ रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिऐ ताहू ।
अजहु देत दुर (?) रवि ससिहि सिर अव सेषित राहू ॥२०२॥

तापस(ह) नृप तर तबहि निहारी, हरपि मिलेउ उठि भएउ सुखारी।
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई, जातुधान बोला सुख पाई।
अब साधेहु रिपु सुनहु नरेसा, जौ तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा।
परि हरि सोचु रहहु तुम्ह सोई, बिनु औषधी ब्याधिविधि खोई।
कुल समेत रिपु मूल बहाई, चौथे दिवस मिलब मैं आई।
तापस नृपहि बहुत परितोषी, चला महा कपटी अति......।

× × × ×
× × × ×
× × × ×

.... द विनोद न थोरे, (!) ....।
नित नव सुख सुर देखि सिहाहीं, अवध जन्म जाचत विधि... ।
बिस्वामित्र चलन नित चहहीं, राम सुप्रेम बिनयबस रहहीं।
दिन दिन (!)य गुन···प···, देखि सराह महा मुनि राउ।
मागत बिदा राउ अनुरागे, सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे।
नाथ सकल संपदा तुम्हारी, मैं सेवक समेत सुत नारी।
करेहु सदा लरिकन्ह पर छोहू, दरसन देत रहब मुनि मोहू।
अस कहि राउ सहित सुत रानी, परेउ च न उर (आ)वत बानी।
दीन्हि असीस बिप्र माती, चले न प्रीति रीति नहि जाती।
रा···म संग सब भाई, आयसु पाइ फिरे पहुचाई।

दोहा ॥ राम रूप भूपति भगति·······द अनंद।
जात सराहत मन मुदित गाधि सुअन सुख चन्द्र ॥ १ ॥

वाम देव रघुकुल गुर ग्यानी, बहुरि गाधि सुत कथा बखानी।
सुनि सुनि सुजसु मनहि मनराउ, बरनत आपन पुन्य प्रभाउ।
बहुरे लोक रजायसु भयउ, सुतन्ह समेत नृपति गृह ग······।

तुलसी का घर-बार

जह तह राम ब्याह अस गावा, सुजसु पुनीत लोक तिहु छावा।
आए ब्याहि राम घ•••, •••से अनं••• अवध सब तब ने।
प्रभु बिवाह जस भएेउ उछाहू, सकहि न बरनि ••••••।
••••कुल पावन जीवन्ह जानी, राम सीय जस मङ्गलखानी।
•••   ••• (?), करन पुनी••••••बानी।

॥ छंद ॥ निज गिरा पावनि करन कारन राम जस तुलसी कह्यो।
रघुबीर चरित अपार बारिधि पार कवि कौने लह्यौ।
उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहि।
(? ? ? ?)

॥ सोरठा ॥ सीय रघुबीर बिवाह जे सप्रेम गावहि सुनहि।
तिन्ह कह सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु॥

॥ सोरठा ॥ बाल चरित सति भाउ बरने तुलसी दास बुध।
•••ने सत्रु पाव परम पुनीत बिचित्र अति॥

॥ सोरठा ॥ भद्र पुरी सुग्राम अति निर्मल सुप सिव पुरी।
जहां देह बिश्राम सो महिमा बरनिय कहा॥

॥ दोहा ॥ कहै सुनै समुझै जे जन सफल सो प्रभु गुनगान।
सीता पति रघुकुल तिलक सदा करहि कल्यान॥३६•••।

अरण्य कांड *

× × × ×

(पृष्ठ २)

(प्रेरित) मंत्र ब्रह्म सर धावा, चला भागि बाइस भय पावा।
धरि निज रूप गयो पितु पाहीं, राम विमुख राखा तिहि नाहीं।
भा निरास उपजी मन त्रासा, जथा चक्रित भये रिषि दुर्बासा।
ब्रह्म धाम शिव पुर सब लोका, फिरा श्रमित व्याकुल भय सोका।
काहू बैठन कहा न ओही, राखि को सकै राम कर द्रोही।
मातु भ्रात पितु समन समाना, सुधा होइ विष सुनु हरि जाना।
मित्र करै सत रिपु कै करनी, ताकहं विबुध नदी बैतरनी।
सब जग ताहि अनल ते ताता, सो रघुबीर विमुख सुनु भ्राता।

॥ दोहा ॥ जिमि जिमि भाजत सक्र सुत व्याकुल अति दुख दीन।
तिमि तिम धावत राम सर पाछें परमप्रबीन ॥ ४ ॥

॥चौपाई॥ नारद देखेउ बिकल जयंता, लागि दया कोमल चित संता।
दूरिहिते कहि हरि प्रभुताई, धावत ही सब कथा बुझाई।
पठया तुरत राम पद ताहीं, कहेसि पुकारि प्रनत हित पाहीं।
आतुर सभहि सभरि तह जाई, मैं मतिमंद जानि नहि पाई।
निज कृत कर्म जनित फल पायो, अब प्रभु पाहि सरनि तकि आयो।
सुनि कृपाल अति आरत बानी, एक नयन करि तजेउ भवानी।

---

* यह खण्डित पाठ राम चरित-मानस की उस प्रति का है जिसे गोस्वामी तुलसीदास ने अपने कनिष्ठ भ्रात सोरों निवासी महाकवि नन्ददास के पुत्र श्री कृष्णदास के लिए अपने शिष्य से १६४३ में नकल करा और स्वयं शोधा था।

॥ सोरठा ॥ कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित ।
प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम ॥ ५ ॥

॥चौपाई॥ रघुपति चित्रकूट बसि नाना, चरित किये श्रुति सुधा समाना ।
बहुरि राम अस मन अनुमाना, होइहि भीर सबहि मोहि जाना ।
सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई, सीता सहित चले दोउ भाई ।
अत्रि के आश्रम तब प्रभु गयेऊ, सुनत महा मुनि हर्षित भयेऊ ।
पुलकित गात अत्रि उठि धाये, देखि राम आतुर चलि आये ।
करत दंडवत मुनि उर लाये, प्रेम बारि दोउ जन अन्हवाये ।
देखि राम छवि नैन जुड़ाने, सादर निज आश्रम तब आने ।
करि पूजा कहि बचन सुहाये, दिये मूल फल प्रभु मन भाये ।

॥ सोरठा ॥ प्रभु आसन आसन आसीन भरिलोचन सोभा निरखि ।
मुनिवर परम प्रवीन जोरि पानि अस्तुति करत ॥ ६ ॥

॥ छंद ॥ नमामि भक्त वत्सलं कृपाल सील कोमलं
भजामि ते पदांबुजं अकामना सदा मुदं
नमामि स्याम सुंदरं भवंबु नाथ मंदिरं
प्रफुल्ल कंज लोचनं मदादि दुख मोचनं
प्रलंब बाहु विक्रमं प्रभो प्रमेय वैभवं
निषंग चाप सायकं धरं त्रलोक नायकं
दिनेस वंस मंडनं महेस चाँप खंडनं
मुनिंद्र संत रंजनं सुरारि वृंद भंजनं
मनोज वैरि वंदितं अजा × ×
× × × ×

(पृष्ठ ४)

पति वंचक पर पति रति करही, रौरव नर्क कल्प सत परही ।
छन सुख लागि जन्म सत कोटी, दुख न समुझि तेहि सम को खोटी ।

बिन श्रम नारि परम गति लहही, पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहही ।
पति प्रतिकूल धर्म मिटि जाई, विधवा होइ पाइ तरुनाई ।

सोरठा ॥ सहज अपावन नारि पति सेवत सुभ गति लहै ।
जसु गावत श्रति चारि अजहू तुलसी हरिहि प्रय ॥ ९ ॥
सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करें ।
तोहि प्रान सम राम कहेउ कथा संसार हित ॥ १० ॥

चौपाई ॥ सुनि जानकी परम सुख पावा, सादर तासु चरन सिर नावा ।
तब मुनि सन कह कृपा निधाना, आइसु होइ जाउ बन आना ।
संतत इम पर कृपा करेहु, सेवक जानि तजव नहि नेहु ।
धर्म धुरंधर प्रभु कहा जानी, मुनि सप्रेम बोले, मृदु बानी ।
जासु कृपा अज सिव सनकादी, कहत सकल परमारथ वादी ।
ते तुम राम अकाम पियारे, दीनबधु मृदु वचन उचारे ।
अब जानी मैं श्री चतुराई, भजिय तुम्हें सब देव विहाई ।
जेहि समान अतिसै नहि कोई, ताकर सील कसन 'अस होई ।
केहि विधि कहों जाहु बन स्वामी, कहहु नाथ तुम अंतरजामी ।
अस कहि रहे विलोकि मुनि धीरा, लोचन जल बहै पुलक सरीरा ।

छंद ॥ तन पुलक निर्भय प्रेम पूरन नय मुख पंकज दिये ।
मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख का जपतप किये ॥
जप जोग धर्म समूह ते नर भक्ति अनुपम पावही ।
रघुवीर चरित पुनीत निसि दिन दास तुलसी गावही ॥

। दोहा ॥ मुनि रघुपति अति परस्पर पुनि पुनि नावहि सीस ।
विमल भक्ति वर देइ करि बिदा कीन्ह जगदीस ॥ ११ ॥

चौपाई॥ मुनि पद कमल नाइ करि सीसा, चले बनहि सुर नर मुनि ईसा ।
आगें राम लषन पुनि पाछें, सीता मध्य विराजति आछें ।

सरित गिरि वन औघट घाटा, पति पहिचानि देहिं वर बाटा।
जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया, करहिं मेघ नभ तहँ तहँ छाया।
आश्रम एक दीख मग माहीं, देव सदन तहिं पटतरि नाहीं।
दिव्य विटप वर चहु दिसि सोहे, देखत जिनहि सकल मुनि मोहे।
पन्छी तहँ अनेक बहु रंगा, गुंजहिं अलि रव करहिं बिहंगा।

॥ दोहा ॥ निज निज आश्रम बेदिका तेहि तर तुलसी विराज।
अनुज जानकी सहित तह राजत भ रघुराज।
आनि सुआसन मुदितमन पुनि पहुनाई कीन्ह।
कंद मूल फ × × × ×
× × × × × ×

(पृष्ठ ८)

× × × कनक तरहिं जनु मेद तमाला।
राम सुमुख विलोकि मुनि ठाढ़े, मानहु चित्र मध्य लिखि काढ़े।

॥ दोहा ॥ तब मुनीस उर धीर धरि गहि पद बारहिं बार।
निज आश्रम तब आनि प्रभु पूजे विविध प्रकार ॥ २१ ॥

॥चौपाई॥ कह मुनि सुनु प्रभु बिनती मोरी, अस्तुति करों कौन विधि तोरी।
महिमा अमित मोरि मति थोरी, रवि समीप खद्योत की जोरी।
स्याम तामरस दाम सरीरा, जटा मुकुट परधनु मुनि चीरा।
मोह विपिन घन दहन कृसानू, सत सरोरुह कानन भानू।
निसिचर करि वरूथ मृग राऊ, त्रसे सदा भय अहि खग नाहू।
अरुन नयन राजीव सुवेस, सीता नयन चकोर निसेस।
हर हिय मानस राज मराल, नौमि राम उर बाहु विसाल।
संसय सर्प ग्रसन उर गादू, समन सदल भय कल्प विषादू।

भव भञ्जन रंजन जन जूथ, त्राहि सदा मम कृपा वरूथ।
निर्गुन सगुन अनूप स्वरूप, ग्यान गिरा गोतीत अनूप।
अमल अखिल अनवद्य अपार, नौमि राम भञ्जन महि भार।
भक्त कल्प पादप आराम, तर्जन क्रोध लोभ मद काम।
अति नागर सागर श्रुति सेतु, त्रात सदा दिनकर कुल केतु।
अतुलित बल प्रताप छवि धाम, कलिमल विपुल विभंजन राम।
जदपि विरज व्यापक अविनास, सबके हृदय निरंतर वास।
तदपि अनुज श्री सहित खरारी, बसि मानस मम कानन चारी।
जो जानें तेहि जानहु स्वामी, सगुन अगुन उर अन्तर्जामी।
अस कौसिल पति राजिव नयना, करहु सो राम हृदय मम अयना।

॥ सोरठा ॥ माया बस जड़ जीव रहत सदाँ सतत मगन।
· तिमि लागहु मन प्रिय करुना कर सुंदर अनघ॥ २२॥

मन अभिलाष तजे जिनि मोरे, मैं सेवक रघुपति, पति मोरे।
राम भक्ति तजि चह कल्याना, सो नर अधम अकाल समाना।
सुनि मुनि वचन राम मन भाय, बहुरि हरषि मुनिवर हिय लाये।
परम प्रसन्न जानि मुनि मोही, जो वर माँगु देउँ अब तोही।
मुनि कह वर कबहु न मैं जाँचा, समुझि न परै झूठ की साँचा।
तुमहि नीक लागै रघुराई, सो मोहि देहु दास सुखदाई।
अविरल भक्ति विरति विग्याना, होहु सकल गुन ग्यान निधाना।
प्रभु जो दीन्ह सो वर मैं पावा, अब सो देहु जो मो मन भावा।

॥ दोहा ॥ अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धरि राम।
मम उर गगन इन्दु इव बसहु सदाँ [पृष्ठ ६]—निःकाम॥ २३॥

॥चौपई॥ एवमस्तु कहि रमा निवासा, हरषि चले कुम्भज रिषि पासा।
मुनि प्रनाम करि जुग कर जोरि, सुनहु नाथ कछु बिनती मोरी।
बहुत दिवस मुनि दरसन पाये, भय बहुत दिन आश्रम आये।
अब प्रभु संग चलौं गुर पाही, तुम कह नाथ निहोरा नाही।
चले जात मग तरु पद कंजा देखत म विराध मथ गंजा।
देखि कृपा निधि मुनि चतुराई चले संग विहसे दोउ भाई।
पथ कहत निज भगति अनूपा, मुनि आश्रम पहुच सुर भूपा।
आश्रम देखि मंहा अति सुंदर, सत कुटी मुनि आश्रम भूधर।
वनचर जलचर जीव जहीते, बैरु न करहि प्रीति सबहीते।

॥ दोहा ॥ राजत तरुवर विहग मृग बोलत बविधि प्रकार।
सबहि सिद्धि मुनि तप करहि महिमा गुन आगार ॥ २४ ॥

॥चौपई॥ तुरित सुतीछन गुर पह गयेऊ, करि दंडवत कहत अस भयेऊ।
नाथ कौसिलाधीस कुमारा, आये मिलन जगत आधारा।
राम अनुज समेति बैदेही, निसि दिन नाथ जपत जसु तेही।
सुनत अगस्त तुरित उठि धाये,प्रभुहि बिलोकि,नयन जल छाये।
मुनि पद कमल परे दोऊ भाई,लखि अति प्रीति लिये उर लाई।
सादर कुसल पूछि मुनि ग्यानी, आसन वर बैठारेउ आनी।
पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा, मोसम भाग्यवत नहि दूजा।
जह लगि रहे अपर मुनि वृंदा, हरष सब बिलोकि मुख चंदा।

॥ दोहा ॥ मुनि समूह मे बैठि प्रभु सन्मुख सब की ओर।
सरद इदु इव देखियत मानहु निकर चकोर ॥ २५ ॥

॥चौपई॥ पाइ सुथल जिमि हरषित मीना, पारसु पाइ सुखी जिमदीना।
राम निरखि सुख भये इहि भाती, चातक जिमि पायो जल स्वाती।
तव रघुबीर कह्यो मुनि पाहीं, तुम सन प्रभु दुराव कछु नाही।

तुम जानौ जेहि कारण आयो, ताते नाथ न कहि समुझायो।
अब सो मन्त्र देहु मुनि मोही, जेहि प्रकार मारों सुर द्रोही।
द्विज द्रोही न बचै मुनराई, जिमि पंकज वन हिमि रितु आई।
मुनि मुसिकान सुनि प्रभु बानी, पूछहु नाथ मोहि कह जानी।
तुम्हरे भजन प्रभाव पुरारी, जानौं महिमा कछुक तुम्हारी।

॥सोरठा॥ भ्रकुटी निरखत नाथ रहत सदा पद कमल रत।
विविध विधाता साथ जासु वसें निज उदर मह ॥ २६ ॥

॥चौपाई॥ अति कराल सब पर जग जाना, श्रोरो कहीं मुनहु भगवाना।
उमरी तरु विसाल तव माया, फल ब्रह्मांड अनेक निकाया।
जीव चराचर जन्तु [पृष्ठ १०]—समाना, भीतर बसहि न जानहि आना।
ते फल भक्षित कठिन कराला, तव उर डरत रहत सो काला।
ते तुम सकल लोक के साँई, पूछेउ मोहि मनुज की नाईं।
यह वर माँगहु कृपानिकेता, बसहु हृदय श्री अनुज समेता।
अविरल भक्ति विरहि सत संगा, चरण सरोरुह प्रेम अभंगा।
जद्यपि ब्रह्म अखण्ड अनन्ता, अनुभव गम्य भजहि जेहि सन्ता।
अस तव रूप बखानों जानों निर्गुन ब्रह्म सगुन रति मानों।

॥ सोरठा ॥ जो पर दया जाहि रहत तुमहि सनत सदा।
छोड़हु बड़ाई ताहि नाहि कछु घटै गुसाईं तव ॥२७॥

॥चौपाई॥ हे प्रभु परम मनोहर ठाऊँ, पावन पंचवटी तिहि नाऊँ।
गोदावरी नदी तट बहई, चारिहु जुग प्रसिद्ध जग अहई।
दंडक वन पुनीत प्रभु करहू, उग्र श्राप मुनिवर कर हरहू।
वास करहु तह रघुकुल राया, कीजै सकल मुनिन्ह पर दाया।
चले राम मुनि आइसु पाई, तुरितहि पंचवटी नियराई।

दिव्य लताद्रुम प्रभु मन भाये, निशिचर राम नइ भय सुहाये।
लषन राम सिय चरण निहारी, कानन तजि भागे अघमारी।

॥ दोहा ॥ गीधराज सों भेंट भई बहु विधि प्रीति दृढ़ाइ।
गोदावरी समी प्रभु रहे परन गृह छाइ ॥ २८ ॥

॥चौपई॥ जबते राम कीन्ह बन वासू, सुखी भये मुनि निशचर त्रासू।
गिरि बन नदी लता छवि छाये, दिन दिन प्रीतिते होंइ सुहाये।
खग मृग वृन्द अनिंदित रहही मधुर मधुर गुंजन छवि लहही।
सो बन बरनि सक न अहि राजा जहां प्रगट रघुवीर विराजा।
एक बार प्रभु सुख आसीना, लछिमन बचन कहे छल हीना।
सुर मुनि सचराचर स्वामी, सुना चहौं कछु तव अनुगामी।
मोहि समुझाइ कहो सोइ देवा, सब तजि करेउ चरन तव सेवा।
कहो ग्यान बिराग अरु माया, कहहु सो भक्ति करहु जो दाया।

॥ दोहा ॥ ईश्वर-जीवहि भेद प्रभु सकल कहो समुझाइ।
जो सुनि उपजै चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ ॥ २९ ॥

॥चौपई॥ थोर मह प्रभु कह समुझाई, सुनहु तात मन मति चित लाई।
मैं अरु मोर तोर सब माया, जेहि बस कीन्हें जीव निकाया।
गो गोचर जह लगि मनु जाई, सो सब माया जानेहु भाई।
ताकर भेद सुनहु तुम सोऊ, विद्या अपर अविद्या दोऊ।
एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा, परबस जीव परै भव कूपा।
एक रचै जग गुन बस जाके, प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके।
ग्यान मान जेहि एकौ नाही, देख समानि देखि सब माही।
कहिय तात सो परम विरागी, त्रन सम सिद्धि तीन गुन त्यागी।

॥ दोहा ॥ माया ईस्वर आपु कह, ज्ञान कहिय सो जीव।
बन्ध मोक्षि पद सबहि पर माया प्रेरिक सीव ॥ ३० ॥

॥चौपई॥ धर्म ते बिरति जोग ते ग्याना, ग्यान मोच्छ पद वेद बखाना।
जाते वेगि द्रवौं मै भाई, सो मम भक्ति भगत सुखदाई।
सो सुतंत्र अवलम्ब न आना, तेहि आधीन ग्यान बिग्याना।
भक्ति तात अनुपम सुख मूला, मिलै जो संत होइ अनुकूला।
भक्ति की साधन कहौं बखानी, सुगम पंथ पावहि मोहि प्रानी।
प्रथमहि बिप्र चरन अति प्रीती, निज निज धर्म निरत श्रुतिनीती।
एहि कर फल पुनि विषय बिरागा, तव पद उपजै अनुरागा।
श्रवनादिक नव भक्ति दृढाई, मम लीला रत मन वच काइ।
संत चरन पंकज अति प्रेमा, मन क्रम बचन भजन दृढ नेमा।
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा, सब मो कह जानि करै दृढ सेवा।
मम गुन गावत पुलक सरीरा, गद गद गिरा नैन बहै नीरा।
कामादिक दंभ न जाके, तात निरंतर बस मैं ताके।

॥ दोहा ॥ बचन काइ मन मोरि गति, भजन करै निःकाम।
तिनके हृदयें कमल सम सदा करौं विश्राम ॥ ३१ ॥

॥चौपई॥ भक्ति जोग सुन अति सुख पावा, लछिमन राम चरन सिर नावा।
नाथ वचन गत मम सदेहा, भयो ग्यान उपजउ नव नेहा।
असुन वचन मुनि अति सुख पावा, हर्षि राम लछिमन उर लावा।
एहि विधि गये कछुक दिन बीती, कहत बिराग ग्यान श्रुतिनीती।
सूर्पनखा रावन की बहिनी, दुष्ट निर्दय दारुन जिमि अहिनी।
पंचवटी सो गई इक बारा, सूर्पनखा लखि जुगल कुमारा।
भ्राता पिता पुत्र उरगारी, पुरुष मनोहर निरखत नारी।
भई बिकल मन सकै न रोकी, जिमि घृत द्रव अति रविहि बिलोकी।

॥ दोहा ॥ अधम निसाचरि कुटिल अति चली करत उपहास।
सुनु खगेस आयी अमल भा चहै निसिचर नास ॥ ३२ ॥

॥चौपाई॥ रुचिर रूप धरि प्रभु पह आई, बोली मधुर वचन हरषाई ।
तुम सम पुरुष न मो सम नारी, यह संजोग विधि रच्यो विचारी ।
मम अनुरूप पुरुष जग नाहीं, देखेउ खोजि लोक तिहुमाहीं ।
ताते अब लगि रहेउ कुमारी, मनु माना कछु तुमहि निहारी ।
सीतहि चितै कही प्रभु बाता, अहै कुमार मोर लघु भ्राता ।
यह लछिमन रिपु भगनी जानी, प्रभुहि चितै बोले मृदु बानी ।
सुनि सुन्दरि मैं उनकर दासा, पराधीन नहि तोर सुपासा ।
प्रभु समरथ कौसिल पुरराजा, जो कछु करै उन्हें सब छाजा ।
॥ दोहा ॥ केहरि सम नहि करिवाल, वक की बाज समान ।
प्रभु सेवक मोहि जानहू, मानहु वचन प्रमान ॥
॥चौपाई॥ सेवक सुख चहै मान भिखारी, विसिनिहि धनु सुभगति विभिचारी ।
लोभी जसु चहै प्रेम गुमानी, नभि दुहि दूध चहै सो प्रानी ।
पुनि सो राम निकट तब आई, प्रभु लछिमन पह फेरि पठाई ।
लछिमन कहा तोहि सो बरई, नन सम लाज तोरि प × × ।

× × ×

रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं, एक बार कालहु सों लरहीं।
जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक, मुनि पालक खल सालक बालक।
जो न होइ बल तो घर जाहू, समर बिमुख मैं हतौं न काहू।
रन चढ़ि करिय कपट चतुराई, रिपु पर कृपा परम कदराई।
दूतन जाइ तुरित सब कहेऊ, सुनि खर दूषन उर अति दहेऊ।

॥छन्द॥ उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा।
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा।
प्रभु कीन्ह धनुष टकोर प्रथमहिं घोर रव व्याप्यो महा।
भये बधिर ब्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा।

॥ दोहा ॥ सावधान होइ धाएउ जानि सबल आराति।
लागे बर्षन राम पर अस्त्र शस्त्र बहु भाँति ॥ ३८ ॥
तिनके आयुध तिलसम करि काटे रघुबीर।
तानि सरासन श्रवनि लगि पुनि छाड़े निज तीर ॥ ३९ ॥

॥ तोमर छन्द ॥ तब चले बान कराल फुंकरत मानहु ब्याल।
कोपे समर श्रीराम चले बिसिख निसित निकाम।
अवलोकि खरतर तीर मुरि चले निसिचर बीर।
इक एक कोउ न सहार करि तात मात पुकार।
कोउ कहै खर का कीन्ह जो जुद्ध इनसौं लीन्ह।
जाके बान अतिहि कराल अस आइ मानहु काल।
भये क्रोध तीनिहु भाइ जो भाजि रन सों जाइ।
तेहि मारिहौं निज पानि फिरे मरन मन महँ ठानि।

॥ दोहा ॥ उमा येक प्रभु दनुज बहु पुनि तिनके बड़ भाग।
सरा चहत प्रभु सर लगें बिना जोग जप जाग ॥ ४० ॥

॥चौपई॥ रुचिर रूप धरि प्रभु पह आई, बोली मधुर बचन हरखाई।
तुम सम पुरुष न मो सम नारी, यह संजोग विधि रच्यो विचारी।
मम अनुरूप पुरुष जग नाहीं, देखउ खोजि लोक तिहुंमाहीं।
ताते अब लगि रहेउ कुमारी, मनु माना कछु तुमहि निहारी।
सीतहि चितै कही प्रभु बाता, अहै कुमार मोर लघु भ्राता।
वह लछिमन रिपु भगनी जानी, प्रभुहि चितै बोले मृदु बानी।
सुनि सुंदरि म उनकर दासा, पराधीन नहि तोर सुपासा।
प्रभु समरथ कौसिल पुरराजा, जो कछु करैं उन्हैं सब छाजा।
॥ दोहा ॥ केहरि सम नहि करिवरल, वक की बाज समान।
प्रभु सेवक मोहि जानहु, मानहु वचन प्रमान॥ ३३

॥चौपई॥ सेवक सुख चहै मान भिखारी, विसिनिहि धनु सुभगति बिभिचारी।
लोभी जसु चहैं ग्रेम गुमानी, नभि दुहि दूध चहैं सो प्रानी।
पुनि सो र म निकट तब आई, प्रभु लछिमन पह फेरि पठाई।
लछिमन कहा तोहि सो बरई, तन सम लाज तोरि प × ×।
× × ×
(पृष्ठ १३)
× × × × ं, देखि नहीं अति सुंदरता ई।
जद्यपि भगनी कीन्ह कुरूपा, मारन जोग न पुरुष अनूपा।
लेहु तुरित मो नारि छड़ाई, जीवत भवन जाहु दोउ भाई।
मोर कहा तुम ताहि सुनावहु, तासु बचन सुनि आतुर आवहु।
॥ दोहा ॥ भय काल बस मूढ़ सब, जानत नहि रघुबीर।
मसक फूंक की मेरु उडइ सुनहु गरुड़ मतिधीर॥ ३४

॥चौपई॥ दूतन कहा राम सन जाई, सुनत राम बोले मुसकाई।
आजु भयो बड़ काजु हमारा, तुहारे प्रभु कीन्हउ सुबिचारा।
हम छत्री मृगया बन करहीं, तुमस खल मृग खोजत फिरहीं।

रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं, एक बार कालहु सों लरहीं।
जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक, मुनि पालक खल सालक बालक।
जौ न होइ बल तो घर जाहू, समर बिमुख मैं हतौं न काहू।
रन चढ़ि करिय कपट चतुराई, रिपु पर कृपा परम कदराई।
दूतन जाइ तुरित सब कहेऊ, सुनि खर दूषन उर अति दहेऊ।

॥ छन्द ॥ उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए, बिकट भट रजनीचरा।
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परसु भयंकरा।
प्रभु कीन्ह धनुष टकोर प्रथमहि घोर रव ब्याप्यो महा।
भये बधिर ब्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा।

। दोहा ॥ सावधान होइ धाएऊ जानि सबल आराति।
लागे बर्षन राम पहं अस्त्र शस्त्र बहु भाँति ॥ ३८ ॥
तिनके आयुध तिलसम करि काटे रघुबीर।
तानि सरासन श्रवनि लगि पुनि छाड़े निज तीर ॥ ३९ ॥.

॥ तोमर छन्द ॥ तब चले बान कराल फुंकरत मानहु ब्याल।
कोपे समर श्रीराम चले बिशिष निकर निकाम।
अवलोकि परत नहिं तीर भजि चले निसिचर बीर।
इक एक कोउ न सहार करि तात मात पुकार।
कोउ कहै पर का कीन्ह जो जुद्ध इनसों लीन्ह।
जाके बान अतिहि कराल ग्रस आइ मानहु काल।
भये क्रोध तीनिहु भाइ जो भाजि रन सों जाइ।
तेहि मारिहौं निज पानि फिरे मरन मन महं ठानि।

। दोहा ॥ उमा येक प्रभु दनुज बहु पुनि तिनके बड़ भाग।
तरा चहत प्रभु सर लगे बिना जोग जप जाग ॥ ४० ॥

॥ छन्द ॥ करि जुद्ध नेक प्रकार सन्मुखहि करहि प्रहार।
रिपु पर्म कोपे जानि प्रभु धनुष सर सधानि।
छाँडे विपुल नाराच लगे कटन विकट पिसाच।
उर सीस कर भुज चरन जहँ तहँ लगे महि परन।
चिक्करत लागत बान धर परत कुधर समान।
भट कटत तन सत खंड नभ उड़त बहु भुज दंड।
बिनु मुंड धावत रुंड कटि गये निसिचर मुंड।
खग कंक काक श्रकाल निसिचर परे जनु व्याल।

॥गीतका छंद॥ कट कटाहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच प[पृष्ठ १४]—खपर साजः
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नाचही॥
रघुबीर बान प्रचंड लागहिं भटन के उर भुज सिरा।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धरु धरु सब्द करहिं भयंकरा।
अंतावली गहि उड़हिं गीध- पिसाच सिर गहि धावही।
संग्राम पुर बासी मनहुँ बहु बाल गुडी उड़ावही।
मारे पछा उर बिदारे बिपुल भट कहरत परे।
अविलोकि निजदल बिकल भट त्रिसिरादि खर दूषन फिरे।
सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारही।
करि कोप श्री रघुबीर पर अगिनित निसाचर डारहीं।
प्रभु निमिषि महँ माया निवारि प्रचारि डारे सायकः।
दस दस बिसिष उर माझ मारे सकल निसिचर नायक।
महि परत भट उठि लरत मारत करत माया अति घनी।
सुरेस डर चौदसहस दनुज बिलोकि इक कौसल धनी।
सुर मुनि सभै सब देखि माया नाथ अति कौतुक कर्यो।
देखहि परस्पर राम करि सग्राम रिपु दल दलि मर्यो।

॥ दोहा ॥ राम राम कहि तनु तजहि पावहि पद निर्वान ।
करि उपाय मारे सकल छन मह प्रभु निधान ॥ ४१
हर्षित बरषहि सुमन सुर बाजहि निकर निशान ।
प्रभु अस्तुति करि सुर चन सोभित विविधि विमान ॥ ४२

॥चौपाई॥ जब रघुनाथ समर रिपु जीते, सुर नर मुनि सबके भय बीते ।
तब लछिमन सीतहि लै आये, प्रभु पद कमल हरषि सिर नाये ।
सीता चितव स्याम मृदु गाता, परम प्रेम लोचन न अघाता ।
पञ्चवटी बसि श्री रघुराई, करत चरित सुरमुनि सुखदाई ।
धुआँ देखि खर दूषन केरा, सूर्पनखा रावन तब टेरा ।
बोली बचन क्रोध करि भारी, देस कोस पुर सुरति बिसारी ॥
करसि पान सोवसि दिन राती, सुधि न तोहि सिर पर आराती ।
राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा, हरहि समर्पित बिन सतकर्मा ।
विद्या बिनु विवेक उपजाये, श्रम फल पढ़े किये अरु पाये ।
सगनि जती कुमन्त्रहि राजा, मद ते ज्ञान पान ते लाजा ।
प्रीति प्रणय बिन मद ते गुनी, नासहि वगि नीति अस सुनी ।

॥ सोरठा ॥ रिपु रुज पावक पापु प्रभुहि न गनियें छोट करि ।
अस कहि विविधि विलापु करन लगी रोदन अमित ॥ ४

॥ दोहा ॥ सभा मध्य व्याकुल परी बहु प्रकार कहै रोइ ।
तोहि अछित दससीस तुम मोरि कि असि गति होइ ॥ ४

॥चौपाई॥ सुनत सभासद उठे अकुलाई, समुझाइसि गहि बाहु उठाई ।
कह लंकेस कहसि किनि बाता, केई तब नासा कान निपाता ।
अवध नृपति दसरथ के जाये, पुरुष सिंह बन खेलन आये ।
(पृष्ठ १५)
समुझि परै मोहि उनकी करनी, रहित निसाचर करिहैं धरनी ।

जिनकी भुज बल पाइ दसानन, अभय भए विचरत मुनि कानन।
देखत बालक काल समाना, समर धुरंधर सब जग जाना।
अतुलित बल प्रताप दोउ भ्राता, भयो न असहि मडल जाता।
सोभा धाम राम तेहि नामा, तिन्ह के संग नारि एक स्यामा।

॥सोरठा॥ अति सुकुमारि सुनारि पट तरि जोग न अहइ कोऊ।
मैं मन दीप विचारि तेहि समानि कोऊ नाहि जग ॥ ४५ ॥

॥चौपई॥ अबहु जाइ देखव तुव जबही, ह्वैहो विकल तासु बस तबही।
जीवन मुक्त लोक बस ताके, दश मुख सुनु सुंदरि अति जाके।
रूपराशि विधि नारि सवारी, रति सत कोटि तासु बलिहारी।
तासु अनुज काटे श्रति नासा, सुनि तब नाम कीन्ह उपहासा।
बिन पराध अस हाल हमारी, अपर दनुज किमि बचे सुरारी।
खर दूषन सुनि लागि गुहारी, छिन मह सकल कटक उन्ह मारी।
खर दूषन त्रिसरा कर घाता, सुनि दस मौलि जरे सब गाता।
भयो सोच मन नहि विश्रामा, बीतहि पल मानहु सत जामा।

॥ दोहा ॥ सूर्पनखा समुझाइ करि पल बोला बहु भांति।
भवन गयो अति सोच बस नीद परी नहि राति ॥ ४६ ॥

॥चौपई॥ सुर नर नाग असुर महिमाही, मोरे अनुचर कह कोउ नाही।
खर दूषन मो सम बलवंता, तिनहि को जीते बिनु भगवंता।
सुररंजन भंजन महि भारा, श्री भगवान लीन्ह अवतारा।
तो मैं जाइ बैर हठि करऊ, प्रभुसर बेठि महानद तरऊ।
जो नर होइ भूप सुत कोऊ, हरिहौं नारि जीति कैं दोऊ।
होइ भजन न तामस देहा, मन क्रम बचन मंत्र दृढ येहा।
रथ आरूढ जोरि खर चारी, वेगवंत अति जिमि उरगारी।
चल्यो अकेल जान चढि तहावा, बसे मारीच सिंधु तट जहावा।

॥छंद॥ उरगारि सम अति बेगवत न जाइ बहु उपमा कही।
सिर छत्र सोहत स्याम घन जनु चमर स्वेत विराजही॥
इहि भाति नाघत सरित सैल अनेक वापी सोह ही।
वन बाग उपवन वाटिका सुचि नगर मुनि मन मोहही॥

॥ दोहा ॥ बहु तडाग सुचि विहँह मृग बोलहि विविधि प्रकार।
एहि विधि आयो सिंधु तट सत जोजन विस्तार॥ ४७॥

॥चौपई॥ सुन्दर जीव विविधि बहु जाती, करहि कुलाहल दिन अरु राती।
गुंजहि कुंजहि तेहि छन माही, अति सुचारु नहि वरनि सिराही।
कनक वालु सुंदर सुखदाई, बैठे सकल जतु तह आई।
देहिप दिव्यलता तह लागे, जेहि देखत मुनि मन अनुरागे।
गुहा × × ×

पृष्ठ २५

× × × × न आई।
सब मृग संग मृग करि लेंही, मानहु मोहि सिखावनि देही।
सास्त्र सो चिंतत पुनि जग देखिय, भूप सुसेवत बस नहि लेखिय।
जदपि नारि राखिय उर माही, जुवती सास्त्र नृपति बस नाही।
देखहु तात वसत सुहाई, प्रिय विहीन भय उपजाई।

॥ दोहा ॥ विरह विकल बल हीन मोहि जान्यो निपट अकेल।
सहित विपिनि मधुकर विहग मदत कीन्ह वगमेल॥ ७४॥

देखि गयो भ्राता सहित तासु दूत सुनु भ्रात।
डेरा दीन्हो मनो तब कटक न भटकहि जात॥ ७५॥

॥चौपाई॥ विटप विसाल लता उरझानी, विविधि वितान दये दिसि तानी ।
कदलि साखा ध्वजा पताका, देखत मोह धीर मनु जाका ।
विविधि भांति फूले तरु नाना, जनु बानैत बने बर नाना ।
कहुँ कहुँ सुंदर विटप सुहाये, जनु भट बिलग बिलग चलि आये ।
बोलत पीत मनों गज माते, टेक महूख ऊट बिसराते ।
मोर चकोर कीर बर बाजी, पारावत मराल सब ताजी ।
तीतुर लवा कि पदचर जूथा, बरनि न जाइ मनोज बरूथा ।
रथ गिरि सैल दुदुभी झरना, चातक बंदी गुनगन बरना ।
मधुकर निकर भेरि सहनाई, त्रिविधि समीर बसीठी आई ।
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हे, विचरत मनो चिनौती दीन्हे ।
लछिमन देखहु काम अनीका, रहैं धीर जिनके जग लीका ।
याकें एक अपर्बल नारी, तेहि बल काम सुभट अति भारी ।

॥ दोहा ॥ तात प्रगट जगती निपल काम क्रोध मद लोभ ।
मुनि विग्यान विधान मन करहिं निमिष मह छोभ ॥ ७६

लोभ कि इच्छा दंभ बल काम के केवल नारि ।
कपट क्रोध रूपे बचन मुनिबर कहैं बिचारि ॥ ७७

॥चौपाई॥ गुनातीत सचराचर स्वामी, उमाराम उर अन्तरजामी ।
कामिन्ह का दीनता दिखाई, धीरन के उर भक्ति दिढाई ।
क्रोध मनोज मोह अरु माया, छूटे सकल राम की दाया ।
सो नर इन्द्रजाल नहिं भूला, जापर होहिं राम अनुकूला ।
कहौं उमा मे अनुभव अपना, सहि हरि नाम जक्त सब सपना ।
पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा, पंपा नाम सुभग गभीरा ।
सत हृदय जस निर्मल वारी बाधे घाट मनोहर चारी ।
पीवहिं जंतु विविधि जह नीरा [illegible] उदार [illegible] जाचक भीरा ।

॥ दोहा ॥ पुरइनि सघन सो ओट जल वेगि न पाइय मर्म ।
माया छ्रसन देखिये जैसे निर्मल धर्म ॥ ७८ ॥

सुखी मीन सब एक रस अति अगाधि जल माहिं ।
जथा धर्म सालग्न के दिन सुख संजुत जाहिं । ७९ ॥

॥चौपई॥ विकसे जल अम्बु नाना रंगा, मधुर मधुर रव गुंजत भृंगा ।
बोलत जल पक्षी कल हंसा, प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ।
चक्रवाक बग बक समुदाई, देखत बनै बरनि नहिं जाई ।
सुन्दर खग गन गिरा सुहाई, जात पथिक जनु लेत बुलाई ।
ताल समीप मुनिन्ह घर छाये, चहु दिसि कानक बिटप सुहाये ।
चंपक बकुल कदंब तमाला, पाडर जिनिसि पलास रसाला ।
नव पल्लव कुसुमित तरु नाना, चचरी मुरु सों करें गाना ।
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ, सतत बहै मनोहर बाऊ ।
सुदर सुभ कोकिल धुनि करहीं सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं ।

॥ दोहा ॥ सकल बिटप सुभ सुमन जुत रह भूमि पर आइ ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवैं सुसंपति पाइ ॥ ८० ॥

॥चौपई॥ देखि राम अति रुचिर तलावा, म ज्जन कीन्ह परम सुख पावा ।
देखि महा सुभ सुन्दर छाया, ठाट अनुज सहित रघुराया ।
तह पुनि सकल देव मुनि आये, अस्तुति करि निज धाम सिधाये ।
बैठे राम प्रसन्न कृपाला, कहत अनुज सन कथा रसाला ।
बिरह वन्त भगवंतहिं देखी, नारद उरमा सोच विसेखी ।
मोर श्राप करि अंगीकारा, सहत राम नाना दुख भारा ।
ऐसे प्रभुहि बिलोकौं जाई, पुनि न बनै अस अवसर माई ।
यह बिचार नारद करि नीका, गये जहा दिन कर कुल टीका ।

गावत राम चरित मृदुबानी, सहित प्रेम बहु भाति भवानी ।
करत दण्डवत लीन्ह उठाई राख्यो बहुत बार उर लाई ।
स्वागत पूछि निकट बैठारे, लछिमन सादर चरन पखारे ।

॥ दोहा ॥ नाना विधि विनती करी प्रभु प्रसन्न जिय जानि ।
नारद बोले वचन तब जोरि सरोरुह पानि ॥ ८१ ॥

॥चौपई॥सुनहु परम उदार रघुनायक, सुन्दर सुगम अगम वरदायक ।
देहु एक वर मागहु स्वामी, जद्यपि जानत अंतरजामी ।
जानत तुम गुनि मोर सुभाऊ, जनसों कबहु न करौ दुराऊ ।
कवन वस्तु मोहि अति प्रयलागी, जो मुनिवर तुम सकहु न मागी ।
जन कह कछु अदेव नहि मोरे, अस विस्वास तजिय जिनि मोरें ।
तब नारद बोले मुसकाई, अस वर मागत होति ढिठाई ।
जद्यपि प्रभु तव नाम अनेका, श्रुति कहे अधिक एकते एका ।
राम सकल नामनते अधिका, अहे सदा अघ खग गन वधिका ।

॥ दोहा ॥ राका निस तम भ [पृष्ट २७] क्त—सब राम नाम सुम सोम ।
अपर नाम उडगन विमल वसहु दास उर व्योम ॥ ८२ ॥

एव मस्तु मुनि सन कहेउ कृपा सिंधु रघुनाथ ।
तब नारद मन हर्ष अति प्रभु पद नायेउ माथ ॥ ८३ ॥

॥ चौपई ॥ अति प्रसन्न रघुवीर हि जानी पुनि नारद बोले मृदुबानी ।
नाथ जबहि प्रेरहु निज माया, मोहेउ मोहि सुनहु रघुराया ।
तब विवाह मे चाहौं कीन्हा, प्रभु केहि हेत करन नहि दीन्हा ।
सुनु मुनि तोहि कहौं सह रोसा, भजहि मोहि तजि सकल भरोसा ।
करौं सदा तिनकी रखवारी, ज्यों बालक पालै महतारी ।

गहे सिंसु वत्सु अनल अहि धाई, तह राखै जननी अरगाई।
मोढ भये तिहि सिसु पर माता, प्रीत न करै पाछिली वाता।
मोरे प्रोढ तनै मुनि ग्यानी, वालक सिसु सम दास अज्ञानी।
जिनहि मोर वल निज वल नाही, दुहु कह काम क्रोध रिपु आही।
यह विचारि पंडित मोहि भजही, जानहि ग्यान भजन नहि तजही।
पंडित जन मोहि अति प्रय लागे, जो नहि प्रीति तदपि अनुरागे।

॥ दोहा ॥ काम क्रोध मोहादि मद प्रवल मोह की धारा।
तिन मह अति दारुन दुखद माया रूपी नारि ॥ ८४ ॥

॥चौपई॥ सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता, मोह विपिनि कह नारि वसंता।
जप तप नेम जलासय भारी है ग्रीषम सोखै घर चारी।
काम क्रोध मद मत्सर भेका तिनहि हरषप्रद लवल एका।
दुर्वासना कुमुद समुदाई, तिन कह सदा सरद सुखदाई।
धर्म सकल सरसीरुह वृंदा होइ तिनहि वेदवर चदा।
पुनि ममता जवास वहुवाई, पलुहै नारि सिसिर सम पाई।
नारि निमिडि रजनी अधियारी, पाप उलूकन कों सुखकारी।
वुधि वल सत्य सील व्रत मीना, वंसी सम तिय कहहि प्रवीना।

॥ दोहा ॥ अवगुन मूल सु सूल प्रद प्रमुदा सव दुख खानि।
तातै कीन्ह निवारन मुनिवर अस जिय जानि ॥ ८५ ॥

।चौपई॥ मुनि रघुपति के वचन सुहाये मुनि तन पुलकि नयन जल छाये।
कहहु कवन प्रभु के यह रीती सेवक पर ममता अति प्रीती।
जे न भजहि अस प्रभु भ्रम त्यागी, ग्यान मानसो पर्म अभागी।
पुनि सादर वोले मुनि नारद सुनहु राम विग्यान विसारद।
संतन के लच्छन रघुवीरा कहौ नाथ भंजन भव भीरा।
सुनु मुनि संतन के गुन कहऊं जेहि ते मे उनके वस अहऊं।
षट विकार तजि अनघ अकामा अचल अकंचन सुचि सुख धामा।

तुलसी का घर-बार

अमित भोग श्रनी[पृष्ट २८९]—हमिनि भोगी सत्य गनिल कवि कोविद जोगी।
सावधान मद मत्सर हीना धीर भक्ति पथ पर्म प्रवीना।
॥ दोहा ॥ गुनागार ससार के दुस्तर विगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन के देह न गेह ॥८६॥
॥चौपाई॥ निज गुन श्रवन सुनत सकुचाही, पर गुन सुनत अधिक हरखा ही।
सम सुशील नहि त्यागहि नीती, सरल सुभाउ सबन पर प्रीती।
जप तप व्रत दम सजम नमा, गुर गोविंद विप्र पद प्रेमा।
श्रधा छमा मित्रा अति दाया, मुदित सु मो पद प्रीति अमाया।
बिरति विवेक ग्यान बिग्याना, बोध यथारथ वेद पुराना।
दंभ मान मद करें न काऊ, भूलि न देहि कुमारग पाऊ।
गावहि सुनहि सदा मम लीला, हेत रहित पर हित रत सीला।
मुनि मुनि साधन के गुन जेते, कहि न सकहि सारद श्रुति तेते।
॥ छंद ॥ कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे।
अस दीनबंधु कृपाल अपने भक्त गुन निज मुख कहे॥
सिर नाइ बारहि बार चरनन्ह ब्रह्मपुर नारद गये।
ते धन्य तुलसीदास आस प्रभु भजहि जे हरि रंग रये॥
॥ दोहा ॥ रावनारि जस पावन गावहि सुनहि जे लोग।
राम भक्ति द्रढ पावही बिन प्रयास जप जोग ॥८७॥
दीप शिखा जुवती जोबन जानितु होसि पतंग।
भजु रसना प्रभु नाम ही करहि सदा सतसंग ॥८८॥
॥ इति श्रीरामायने सकल कलि कलुष विध्वंसने विमल वैराग्य संपादिनो
पद सुजन सवादे राम बन चरित बर्ननो नाम तृतियो
सोपान आरन्य कांड समाप्त ॥ ३ ॥
श्री तुलसीदास गुरु की आग्या सा उनके भ्राता सुत
कुल निवासी हेत लिपित लछिमनदास
संवत १६४३ आषाढ सुद ४ सुकें

सोरों में तुलसीदास की प्रतिमा

(कुछ परिचय)

जनता की यह इच्छा कि गोस्वामी तुलसीदास की, जिन्हें क्या हिंदू, क्या मुसलमान, क्या ईसाई, सभी भारत का महापुरुष और विश्व का महाकवि समझते हैं, एक सुन्दर प्रतिमा उनकी जन्म भूमि सोरों में स्थापित हो जाय, स्वाभाविक थी। एक दिन शाम को जिले के कतिपय साहित्य-मर्मज्ञ अधिकारियों और सुयोग्य एटा जिलाधीश श्री जे० एम० लोबो-प्रभु महोदय में योंही तुलसी प्रतिमा के विषय में विचार-विनिमय हुआ। तत्पश्चात् गुणग्राही श्री लोबो-प्रभु महोदय ने श्री पन्नालाल जैसे सुधी महानुभावों से इस विषय में परामर्श किया। शीघ्र ही अवागढ़ के राजकुमार कुंवर श्री दिग्विजयपालसिंह के प्रधानत्व, और एटा के गवर्नमेंट प्लीडर श्री हरचरणलाल अग्रवाल के मन्त्रित्व, में तुलसी-स्मारक के निमित्त, एटा में एक समिति का निर्माण हुआ। इस समिति ने यथा साध्य उद्योग कर श्री लोबो प्रभु महोदय को बहुमूल्य सामयिक परामर्श दिया, जिसके लिए उसके सदस्य साधुवाद के पात्र हैं। श्री प्रभु महोदय ने सुचारु रूप से कार्य संचालन के निमित्त यह उचित समझा कि कासगज में भी इस ओर उचित प्रबन्ध हो। बस, आपकी पुनीत प्रेरणा से कासगज के श्री रामदत्त भारद्वाज और 'नवीन भारत' के संचालक श्री शिवनारायण महेश्वरी ने इस शुभ कार्य को जिसका श्रीगणेश एटा में हो चुका था और भी आगे बढ़ाया। श्री भारद्वाज ने, यथा निर्देश और यथा परामर्श, तुलसी प्रतिमा-निर्माण का कार्य, एक सुयोग्य कलाकार को सौंप दिया। संयुक्त उद्योग से १४ जुलाई

१९४३ को तुलसी-स्मारक-समिति कासगंज का प्रादुर्भाव हुआ, प्रबन्ध-कारिणी की सूची अन्यत्र दी जा रही है। इसमें एटा कासगंज और सोरों आदि (ज़िले के) सभी स्थानों के एवं बाहर के भी गण्य-मान्य महानुभावों का सहयोग प्राप्त हुआ और श्री तुलसी-स्मारक-समिति के संरक्षक उक्त श्री लोनो-प्रभु के कर-कमलों द्वारा प्रतिमा का शिलान्यास १२ सितम्बर और उद्घाटन ७ दिसम्बर १९४३ ई० को सोरों में हुआ। सोरों में श्री वाराह मंदिर के सामने एक बड़ा जलाशय है; वहाँ गोस्वामीजी के समय में भागीरथी गंगा बहती थी। यह स्थान अब भी अत्यन्त मनोहर है। गंगा के किनारे जो पुराने घाट थे वे अभी तक विद्यमान हैं। इस जलाशय में अब गंग-नहर से जल आता है। उन दिनों गंगापार रत्नावली की जन्मभूमि बदरिया थी जो सम्वत् १६५७ वि० में बह गई थी, किन्तु जलाशय के पार पुनः बस गई। वराह मंदिर से कुछ पग पर वह स्थान है जहाँ से अकबर के लिए गंगाजल आगरे जाया करता था। उक्त जलाशय में दो ऊँची पीठिकाओं पर, सात फीट ऊँची, संगमर्मर की गोस्वामी तुलसीदास की भव्य प्रतिमा सुशोभित है।

ऐसा प्रतीत होता है मानों कथा-वाचक युवक पण्डित तुलसीदास, स्नान-पूजा से निवृत्त हो, खड़ाऊँ, पहने लम्बी धोती काछे, दुपट्टा ओढ़े खड़े-खड़े बाँए हाथ में 'रामायणम्' लिए, दाहिने हाथ की उपदेश-मुद्रा से भक्तजनों को राम-नाम का महत्त्व समझा रहे हों। उपलब्ध प्रमाणों से सिद्ध है कि वे सुन्दर शरीर के थे और पौराणिक कथाएँ बाँचकर अपनी आजीविका प्राप्त करते थे और वाल्मीकि रामायण अध्यात्म रामायण का उनपर बड़ा प्रभाव पड़ा था।

तुलसी-स्मारक-समिति ने गोस्वामीजी के प्रायः सभी उपलब्ध चित्रों पर विचार किया और विशेषज्ञों की सम्मति लेकर यही निश्चय

नकिया कि गोस्वामी तुलसीदास का प्रह्लाद घाट-वाला चित्र ही, उपलब्ध चित्रों में प्राचीन तम प्रतीत होता है, जिसकी नकलें अनेक व्यक्तियों ने अपनी-अपनी रुचि व योग्यता के अनुसार की हैं। समिति ने भी यही उचित समझा कि प्रधानतः उसी के आधार पर गोस्वामीजी का वही रूप प्रतिमा में रहे जो सोरों छोड़ते समय उनका था। प्रमाणों से सिद्ध होता है कि उस समय उनकी पत्नी २७ वर्ष की थी। अतएव गोस्वामी जी लगभग ३०-३५ के होंगे। प्रस्तुत प्रतिमा समिति की इच्छा के कितने निकट है यह तो विशेषज्ञ ही कह सकते हैं; किन्तु वह सुन्दर और लोकप्रिय है और उद्देश्य की पूर्ति भी करती है।

प्रतिमा की दो पीठिकाएँ भी संगमर्मर की बनी हैं। उन पर चारों ओर रत्नावली-तुलसीदास के वचन, शिला-लेख, स्तव, तुलसी-स्मारक समिति सदस्यों और दान-दाताओं के नाम भी खुदे हैं। शिला लेख इस कार है:—

Mr. J. M. Lobo-Prabhu, I.C.S.,

District Magistrate and Collector, Etah founded on 12th September 1943 A.D., and unveiled on 7th December, 1943 AD., this statue of GOSWAMI TULSIDAS, born here in Soron, the great poet-saint of India, one of the inspired writers of the world and the celebrated author of Rama Charita Manasa also known as the Ramayana, which has sustained the spirit and elevated the minds of the people of India in their march to a Greater Future.

पुरातत्व विभाग के कर्णधार (डाइरेक्टर-जनरल) रायबहादुर श्री काशीनाथ नारायण दीक्षित ने तुलसीदास और रत्नावली के सम्बन्ध में

अभिरुचि प्रदर्शित की थी। उन्होंने जो श्लोक भेजे थे वे पीठिका के प्रधान भाग पर इस प्रकार खुदे हुए हैः—

दिव्यां श्री रघुनाथ-भक्ति सरसां यत्काव्य निष्यान्दिनीम्
विश्व-प्रेममयीं गिर सुर सरित्पुण्य-प्रवाहोपमाम्
आस्वाद्यैव कृतार्थतां भरत-भू-पुत्रा गताः कोटिश
गोस्वामी हुलसी-सुतः स तुलसीदासश्चिरं वन्द्यते ।
क्षेत्रं सूकर- संज्ञक सुरधुनी-तीरस्थित पावनम्
श्रीमद्विप्रकुलं स्वकीय जनुषा योऽलञ्च- काराऽञ्जसा
सेतोरा तुहिनाद्रि रामचरितं यद्गीतमाकर्ण्यते
तस्येयं प्रतिमा तदुद्‌—म-भुवि प्रस्थापिता राजते ।

रावबहादुर श्रीकाशीनाथ नारायण दीक्षित एम. ए. एफ. आर. ए. एस. बी, डाइरेक्टर-जनरल ऑव आर्केलोजी इन इण्डिया ।

—

तुलसी-स्मारक-समिति

कार्य-कारिणी

१६४३ ई.

संरक्षक

श्री जे. एम- लोबो-प्रभु, आई. सी. एस., जिलाधीश, एटा

प्रधान

रावबहादुर कुँवर कञ्चनसिंह, गोरहा (एटा)

उप-प्रधान

सेठ किशोरी लाल, कासगंज

सोरों में तुलसीदास की प्रतिमा

राय बहादुर राय इन्द्रनारायण सिंह, सकीट
राजकुमार श्री दिग्विजयपाल सिंह, अवागढ़

मन्त्री

ला. बाबूराम गुप्त, एम. ए., एल-एल. बी.
पण्डित रामदत्त भारद्वाज, एम. ए. एल-एल. बी.
आयुर्वेदाचार्य पं० वेदव्रत शर्मा, शास्त्री, काव्यतीर्थ

कोषाध्यक्ष

सेठ ब्रजलाल हुण्डावाले

निरीक्षक

बाबू रोशनलाल अग्रवाल, बी. ए.

सदस्य

ी बनवारीलाल; बा० कालीचरण अग्रवाल एम. ए. एल बी., बा० गिरधर गोपाल एम. ए., एल-एल. बी. ंशीधर; सेठ शिवनारायण माहेश्वरी; पण्डित भद्रदत्त शर्मा ी, कासगंज; पं० गोविन्द वल्लभ शास्त्री, काव्यतीर्थ; पं० गोविंद शास्त्री; ठाकुर जयपालसिंह बी. ए.; श्री कुञ्जबिहारी केला, कासगंज।

—०—

नाहरसिंह सोलंकी बी० ए० के संपादकत्व में 'रत्नावली' नाम की एक ...चित्र पुस्तिका प्रकाशित हुई। जिसमें कवि मुरलीधर चतुर्वेदि-कृत 'रत्नावली-...रेत' और 'रत्नावली लघु दोहा-संग्रह' एवं पं० रामदत्त भारद्वाज एम्० ..., एल-एल० बी०-कृत भूमिका सम्मिलित है। किंतु विशालजनता को ... विशाल चर्चा का सचित्र आभास सर्व प्रथम 'विशाल भारत' द्वारा ...ा। तदनंतर अनेक लेख अनेक महानुभावों द्वारा अनेक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१—'गोस्वामी तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावली (जीवनी और रचना)'—पं० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल-एल० बी०, 'विशाल भारत' फरवरी, १६३६ ई०। इसमें रामवल्लभ मिश्र की हस्तलिपि में उनके गुरु श्रीमुरलीधर चतुर्वेदी-कृत 'रत्नावली-चरित' एवं 'रत्नावली लघु दोहा-संग्रह' के आधार पर रत्नावली की रचना की संक्षिप्त समालोचना दी गई है। साथ ही वाराह-मंदिर-घाट, गोस्वामीजी के गुरु नृसिंहजी की पाठ-शाला, रामवल्लभ मिश्र के हाथ का लिखा 'रत्नावली-चरित' एवं बदरिया-वाले रामचंद्र और ईश्वरनाथ पंडित की प्रतिलिपियों की पुष्पिकाओं के चित्र भी दिए गए हैं।

२—'महाकवि नंददास'—पं० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०; एल्-एल्० बी०, 'विशाल भारत', जून, १६३६। इसमें सूकरक्षेत्र-महात्म्य, कृष्णदास-वंशावली के आवश्यक उद्धरण और 'बालकांड' और 'आरण्य-कांड' की पुष्पिकाएँ भी दी गई हैं।

३—'तुलसीदास और नंददास'—श्रीरामचन्द्र विद्यार्थी, 'विशाल भारत', अगस्त, १६३६। लेख-सं० २ की प्रत्यालोचना है।

४—'तुलसी-स्मृति-अंक ('सनाढ्य-जीवन')' सितम्बर, १६३६। संपादक पं० गोविंदवल्लभ भट्ट, पं० भद्रदत्त शर्मा, पं० प्रभुदयालु शर्मा।

लेख-विवेचन

[रत्नावली, नंददास एवं कृष्णदास से सम्बन्ध रखनेवाली और सोरों -बदरिया के पक्ष अथवा तीव्र विरोध में लिखी रचनाओं का संक्षिप्त और क्रमबद्ध विवरण]

अनेक पश्चिमी विद्वानों ने उस सूकरखेत को, जहाँ गोस्वामी तुलसीदास ने रामकथा सुनी थी, सोरों (ज़िला एटा) माना है। अपनी विदुषी माता की प्रेरणा से पं० गोविन्दवल्लभ भट्ट इस अन्वेषण में जुट गये कि गोस्वामीजी का जन्म-स्थान सोरों था। भट्टजी 'गोस्वामीजी का जन्म-स्थान राजापुर अथवा शूकरक्षेत्र (सोरों) ?'-नामक लेख आश्विन, १९८६ वि० की माधुरी में प्रकाशित कराया। इसके कुछ महीने पूर्व पं० गौरीशंकर द्विवेदी भी भट्टजी के आधार पर माधुरी की अषाढ़, १९८६ वि० की संख्या में 'महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजी'-नामक लेख प्रकाशित करा चुके थे। पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने सटीक रामचरित-मानस की भूमिका और 'तुलसीदास और उनकी कविता'-नामक पुस्तक लिखकर और अनेक तर्क उपस्थित कर सोरों-सिद्धांत को कुछ आगे बढ़ाया। तब तक सोरों की सभी प्रभूत सामग्री प्रकाश में नहीं आई थी। केवल कवि कृष्णदास कृत 'सूकरक्षेत्र-माहात्म्य' संवत् १९२७ में फीनक्स प्रेस, दिल्ली में प्रकाशित हो चुका था, जो रावबहादुर कुँवर कंचनसिंहजी द्वारा १९३८ में पुन. प्रकाशित हुआ। 'नवीन भारत,' नवम्बर, १९३८ ई० के अंक में रत्नावली संबंधी कुछ चर्चा डॉक्टर श्यामलाल गुप्त बी० एस सी०, एम० बी० बी० एस० और कुछ बाबू कालीचरण अग्रवाल एम० ए०, एल० -एल० बी० द्वारा की गई साथ ही उक्त रावबहादुर के उद्योग से श्री

नरहरिसिंह सोलंकी बी० ए० के संपादकत्व में 'रत्नावली' नाम की एक सचित्र पुस्तिका प्रकाशित हुई। जिसमें कवि मुरलीधर चतुर्वेदि कृत 'रत्नावली-चरित' और 'रत्नावली लघु दोहा-संग्रह' एवं प० रामदत्त भारद्वाज एम० ए०, एल-एल० बी०-कृत भूमिका सम्मिलित है। किंतु विशालजनता को इस विशाल चर्चा का सचित्र आभास सर्व प्रथम 'विशाल भारत' द्वारा हुआ। तदनंतर अनेक लेख अनेक महानुभावों द्वारा अनेक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१—'गोस्वामी तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावली (जीवनी और रचना)'—पं० रामदत्त भारद्वाज एम० ए०, एल एल० बी०, 'विशाल भारत' फरवरी, १९३९ ई०। इसमें रामवल्लभ मिश्र की हस्तलिपि में उनके गुरु श्रीमुरलीधर चतुर्वेदी-कृत 'रत्नावली-चरित' एवं 'रत्नावली लघु दोहा संग्रह' के आधार पर रत्नावली की रचना की संक्षिप्त समालोचना दी गई है। साथ ही वाराह मंदिर घाट, गोस्वामीजी के गुरु नृसिंहजी की पाठशाला, रामवल्लभ मिश्र के हाथ का लिखा 'रत्नावली-चरित' एवं बदरियावाले रामचंद्र और ईश्वरनाथ पंडित की प्रतिलिपियों की पुष्पिकाओं के चित्र भी दिए गए हैं।

२—'महाकवि नंददास'—प० रामदत्त भारद्वाज एम० ए०, एल्-एल्० बी०, 'विशाल भारत', जून, १९३९। इसमें सूकरखेत-महात्म्य, कृष्णदास-वंशावली के आवश्यक उद्धरण और 'बालकांड' और 'आरण्य-कांड' की पुष्पिकाएँ भी दी गई हैं।

३—'तुलसीदास और नंददास'—श्रीरामचन्द्र विद्यार्थी, 'विशाल भारत', अगस्त, १९३९। लेख सं० २ की प्रत्यालोचना है।

४—'तुलसी-स्मृति-अंक ('सनाढ्य-जीवन')' सितम्बर, १९३९। संपादक प० गोविंदवल्लभ भट्ट, प० भद्रदत्त शर्मा, प० प्रभुदयालु शर्मा।

इसमें अनेक विचार-पूर्ण लेख हैं। पं० भद्रदत्त शर्मा, पं० गौरीशंकर द्विवेदी, बाबू दीनदयालु गुप्त, प० होरीलाल शर्मा गौड़ कविरत्न, प० रामस्वरूप मिश्र और पं० वेदव्रत शास्त्री के लेख विशेष उल्लेखनीय हैं।

५—'दोहा-रत्नावली'—सम्पादक और प्रकाशक, प० प्रभुदयालु शर्मा, इटावा १९३९। इसमें रत्नावली के २०१ दोहे हैं किंतु कुछ खटकनेवाली और भ्रमोत्पादक भूलें रह गई हैं।

६—'तुलसी का अध्ययन'—बाबू माताप्रसाद गुप्त, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। 'हिन्दुस्तानी', ऑक्टोबर, १९३९, तुलसी-सम्बन्धी अध्ययन का विचार-पूर्ण और क्रमबद्ध विवेचन। इसमें पं० गोविंदवल्लभ भट्ट, पं० गौरीशंकर द्विवेदी, पं० रामदत्त भारद्वाज, पं. भद्रदत्त शर्मा एवं लेख-सं० १-२ और 'सनाढ्य-जीवन' आदि का उल्लेख है।

७—'तुलसीदास और नंददास के जीवन पर नया प्रकाश'—बाबू दीनदयालु गुप्त एम्० ए०, एल्-एल्० बी० 'हिंदुस्तानी', ऑक्टोबर, १९३९।

८—'गुसाईं तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावली'—बाबू दीनदयालु गुप्त एम्० ए० एल्-एल० बी०। हिंदुस्तानी, जनवरी, १९४०, रत्नावली के दोहों की अच्छी आलोचना है। गुप्तजी से दो भूलें हो गई हैं। आपने रत्नावली के एक दोहे के प्रथम चरण का पाठ दिया है 'सागर कर रस ससि रतन' जो इस प्रकार होना चाहिए 'सागर पारस ससी रतन'। कदाचित् आपने छपी पुस्तक का आश्रय लिया। दूसरी भूल यह है कि आपने 'सागर' का अर्थ 'सात' किया है, किंतु आपने इस भूल का सुधार लेख-सं० ३२ में कर दिया है।

९—'तुलसी संबंधी प्राचीन हस्त-लिखित ग्रन्थों की खोज—पं० भद्रदत्त शास्त्री। 'हिंदुस्तानी' १ जनवरी, १९४०। इसमें आपने भक्त-

माल पर सेवदास की टीका और विष्णुस्वामिचरितामृत तथा तुलसी संबन्धी अन्य कतिपय हस्तलिखित ग्रंथों पर प्रकाश डाला है।

१०—'नंददास'—श्रीरामप्रसाद बहुगुणा। 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका', माघ १९९६ वि०। इसमें सोरों सामग्री का उल्लेख है, किंतु इसकी सूचना आपको कहाँ से मिली, इस पर प्रकाश डालना आपने उचित नहीं समझा।

११—'मूल गोसाईं चरित की अप्रामाणिकता'—पं० रामदत्त भारद्वाज एम० ए० एल् एल० बी०। 'सुधा', एप्रिल १९४०।

१२—'कुछ प्राचीन वस्तुएँ' (गोस्वामी तुलसीदास पर प्रचुर प्रकाश) पं० रामदत्त भारद्वाज एम० ए०, एल् एल० बी० 'माधुरी' मई, १९४०। इसमें 'भ्रमरगीत'-नामक एक प्राचीन पुस्तक के अंतिम पृष्ठों के अविकल उद्धरण हैं। १६७२ वि० की पुष्पिका से प्रतीत होता है कि गोस्वामी तुलसीदासजी रामायण के कर्ता भारद्वाज गोत्रीय शुक्ल सनाढ्य थे, और महाकवि नन्ददास इनके चचेरे भाई और कृष्णदास भतीजे थे।

१३—'गोस्वामीजी के चित्र और प्रतिमाएँ'—पं० रामदत्त भारद्वाज एम० ए०, एल्-एल्० बी०। 'सुधा' मई, १९४०।

१४—'गोस्वामी तुलसीदासजी का जन्म स्थान'—श्रीरामकिशोर शर्मा बी० ए०। 'विशाल भारत' मई, १९००। सोरों-सामग्री पर रोचक लेख है।

१५—'सोरों का सौभाग्य'—श्रीकेदारनाथ भट्ट एम० ए०, एल्-एल्० बी० 'विशाल भारत' जुलाई, १९४० और 'नोक-झोंक' सितंबर, १९४०। यद्यपि यह लेख सोरों-सामग्री के सर्वथा प्रतिकूल है, तथापि निराधार आक्षेप की दृष्टि से मनोहर और आकर्षक है।

१६—'श्रीगोस्वामी तुलसीदास चरितामृत'—श्रीलक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, एम० ए० । 'सरस्वती' जुलाई, १६४० । आपके ख्याल से 'तुलसी चरितामृत' नितांत अधकार में था । किंतु लेख सं० ११ में इसकी ओर ध्यान पहले ही आकर्षित किया जा चुका था ।

१७—'वर्षतत्र और वर्षफल'—प० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल् एल्० बी० । 'माधुरी' (विशेषांक) अगस्त, १६४० । वर्षफल महाकवि नंददासजी के पुत्र कृष्णदास की कृति है । उसकी एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है । उसके अंतिम छंद से विदित होता है कि १६४७ वि० में रत्नावली की जन्मभूमि बदरिया गंगा की बाढ़ में बह गई थी । वर्षफल की सूचना 'सनाढ्य-जीवन' के अगस्त, १६४० के अङ्क में भी दी गई थी ।

१८—'तुलसी जयंती'—श्रीमती सावित्री दुलारेलाल एम्. ए., लखनऊ रेडियो १० अगस्त, १६४० ।

१६—'Goswami Tulsidas' (गोस्वामी तुलसीदास)—प० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल् एल्० बी०, 'हिंदुस्तान टाइम्स' १६ अगस्त, १६४० ।

२०—'सोरों में प्राप्त गोस्वामी तुलसीदास के जीवन वृत्त से संबंध रखनेवाली सामग्री की बहिरंग परीक्षा'—श्री माताप्रसाद गुप्त एम्० ए०, एल् एल्० बी० । 'सम्मेलन-पत्रिका' अगस्त सितंबर, १६४०—इसम सोरों की कुछ सामग्री की बहिरंग परीक्षा के बहाने कुछ निराधार संदेह भी किए गए हैं । इसके प्रारंभ में साहित्य सम्मेलन के प्रधान मंत्री की अनधिकार एवं अनुचित सिफारिश है ।

२१—'Ratnawali-Tulsidas' (रत्नावली-तुलसीदास)—प० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल एल्० बी० । इंडियन हिस्ट्री काँग्रेस

लाहौर-अधिवेशन दिसंबर, १९४०। इसमें पदार्थवाली 'दोहा-रत्नावली' पर प्रकाश एवं अन्य तत्र प्राप्त सामग्री का विवरण और तुलसी विषयक चर्चा का सविस्तर विवेचन है। इसमें भी 'कर रस' वाली भूल बनी रही जो लेख संख्या ४४ में दूर कर दी गई।

२२—'गोस्वामी तुलसीदास और सोरों म प्राप्त सामग्री'—श्री केदारनाथ भ० एम्० ए०, एल् एल्० बी०। आक्षेप की प्रबलता क्षीण हो चली है, डॉ० माताप्रसाद गुप्त का सहारा टटोला गया है। भाषा बड़ी रोचक है। 'विशाल भारत' दिसम्बर, १९४०।

२३—'तुलसीदास का जन्म स्थान'—डॉ० श्यामलाल गुप्त बी० एस्-सी०, एम्० बी० बी० एस्०। 'विशाल भारत' दिसम्बर, १९४०। यह लेख 'सोरों का सौभाग्य'–नामक लेख का उत्तर है, जो सुन्दर और प्रामाणिक है।

२४—'तुलसी-चरित की अप्रामाणिकता'—प० रामदत्त भारद्वाज, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। 'नवीन भारत' १८ दिसम्बर, १९४०। तथा-कथित बाबा रघुवरदास के तुलसी चरित में लिखा है कि गोस्वामीजी ने 'दीक्षित' और 'शम्बर' पढ़े थे, किन्तु य कृतियाँ गोस्वामीजी के पीछे की हैं।

२५—'तुलसीदास-सम्बन्धी मेरा स्वप्न'—श्री 'गुप्त प्रकाश'। 'नवीन भारत' २५ १२ ४० और 'सुदर्शन' १-१-४१। हास्य पूर्ण लेख है। 'सनाढ्य-जीवन', इटावा। मार्च, १९४१।

२६—'तुलसीदास और रत्नावली'—अनुवादक, प० कृष्णदत्त भारद्वाज एम्० ए०, आचार्य, शास्त्री। लेख स० २१ का अनुवाद है। 'नवीन भारत' तुलसी-अङ्क, जनवरी, १९४१।

२७—'पारतविक शूकरनेत्र सोरों (एटा)'—श्री पण्डित भद्रदत्त शास्त्री 'नवीन भारत' (तुलसी अंक) जनवरी, १६४१ । यह प्रस्तुत विषय का निराला लेख है ।

२८—'तुलसी और सोरों—श्री प० रामचन्द्र शुक्ल के मत की समीक्षा' । प० रामदत्त भारद्वाज एम० ए०, एल् एल्० बी० । 'नवीन भारत' ८ जनवरी, १६४१ ।

२६—'मुरलीधर चतुर्वेद कृत श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी की धर्मपत्नी रत्नावली चरित (गद्यानुवाद)' । पण्डित रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल् एल्० बी० । 'नवीन भारत' १५ जनवरी, १६४१ ।

३०—'गोस्वामी तुलसीदास का संस्कृत ज्ञान'—प० रामदत्त भारद्वाज एम० ए०, एल् एल्० बी० । 'नवीन भारत' १५ जनवरी, १६४१ । इसमें यह प्रकाश डाला गया है कि गोस्वामीजी ने अपनी संस्कृत रचना के किन-किन स्थलों पर संस्कृत व्याकरण की भूलें की हैं ।

३१—'सोरों में प्राप्त गोस्वामी तुलसीदास के जीवन वृत्त से संबंध रखनेवाली सामग्री की बहिरंग परीक्षा'—श्री प्रेमकृष्ण तिवारी बी० ए० । इसमें बताया गया है कि बाबू माताप्रसाद गुप्त एम० ए०, एल्-एल्० बी० कब और किस उद्देश्य से सोरों पधारे थे । 'नवीन भारत' १५ जनवरी, १६४१ ।

३२—'महाकवि नन्ददास का जीवन-चरित'—श्रीयुत दीनदयालु गुप्त एम० ए०, एल् एल्० बी० । 'हिंदुस्तानी' जनवरी, १६४१ । इसमें भी लेख-संख्या ८ की प्रथम भूल विद्यमान है, किंतु लेख महत्त्व पूर्ण है ।

३३—'गोस्वामी तुलसीदास के चित्र और प्रतिमाएँ (लेख सं० २३ का परिवर्द्धित रूप)'—पण्डित रामदत्त भारद्वाज एम० ए०,एल् एल्० बी० । 'नवीन भारत' (तुलसी-अंक) फरवरी, १६४१ । इसमें किशनगढ़-वाले चित्र की भी समीक्षा है।

३४—'मूल गोसाईं-चरित्र की अप्रामाणिकता' (लेख सं० ११ का परिवर्द्धित रूप) । पं० रामदत्त भारद्वाज एम० ए०, एल् एल्० बी० । 'नवीन भारत' (तुलसी-अंक) फरवरी, १६४१ । इसमें बताया गया है कि बाबू माताप्रसाद गुप्त एम० ए०, एल् एल्० बी० से भी पहले श्री-मायाशंकर याज्ञिक ने उक्त चरित की अप्रामाणिकता पर इतिहास की दृष्टि से प्रकाश डाला था । अन्य दृष्टि से तो रा० ब० श्री शुकदेवविहारी मिश्र और पं० श्रीधर पाठक बहुत कुछ प्रकाश डाल चुके थे ।

३५—कविरत्न पं० हीरीलाल शर्मा गौड़ का 'मूल गोसाईं-चरित्र' अथवा 'मूल गोसाईं-चरित' भी पढ़ने योग्य है । ('नवीन भारत' मई-जून, १६४१)

३६—'तुलसी-चरित की अप्रामाणिकता' । पं० रामदत्त भारद्वाज एम० ए०, एल्-एल्० बी० । 'नवीन भारत' (तुलसी-अङ्क) मार्च, १६४१ । लेख-सं० २४ का परिवर्द्धित रूप ।

३७—'मुरलीधर चतुर्वेद-कृत रत्नावली-चरित (दोनों उपलब्ध प्रतियों का पाठांतर-सहित सपादन)' । पं० रामदत्त भारद्वाज एम० ए०, एल् एल्० बी० । 'नवीन भारत' (तुलसी-अङ्क) मार्च, १६४१ ।

३८—'दोहा-रत्नावली (चारों उपलब्ध प्रतियों का पाठांतर-सहित सपादन)' । पं० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल्-एल्० बी० । 'नवीन भारत' (तुलसी-अङ्क) मार्च, १६४१ ।

ग्रन्थ-सूची

(क) हस्तलिखित ग्रन्थ (पटा बदायूँ-जिलों से प्राप्त)

रामचरित मानस, बालकाण्ड (खण्डित) १६४३ वि ।

रामचरित मानस आरण्यकाण्ड (खण्डित) १६४३ वि ।

भ्रमर गीत (केवल दो पन्ने), १६७६ वि ।

दोहा रत्नावली (गोपालदास की प्रति) १८२४ वि ।

दोहा रत्नावली (गङ्गाधर की प्रति) १८-६ वि ।

चरित (मुरलीधर चतुर्वेद-कृत) १८२६ वि ।

रित (रामवल्लभ मिश्र की प्रति) १८° ४ वि ।

हात्म्य (कृष्णदास कृत), मुरलीधर चतुर्वेदी की प्रति वि ।

त्म्य (कृष्णदास कृत), शिवसहाय की प्रति, वि ।

मय, रामचन्द्र की प्रति, १८७४ वि ।

, ईश्वरनाथ की प्रति, १८७५ वि ।

दास कृत, १८६४ वि ।

मुरलीधर चतुर्वेदी की प्रति) १८२६ वि ।

रुद्रनाथ की प्रति, १८७० वि ।

हरि म कृत ।

१८६५ वि चैत्र शुक्ला ५ शुक्रवार की प्रतिलिपि का परिचय है।

४९—नरहरि निरूपण, श्री भूदेव विद्यालंकार। सम्मेलन पत्रिका-फाल्गुन-चैत्र वैशाख २००१—२००२। आपके मत से तुलसीदास का यह दोहा —

वन्दौं गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु वचन रविकर निकर॥

निम्नलिखित श्लोक का अनुवाद है—

वन्दे गुरु-पदाब्ज यो नर रूप स्वय हरिं।
यद्वाक्यसूर्यादयत स्तमो नश्यति साम्प्रतम॥

(जाबालि संहिता)

५०—'नन्ददासजी पर मेरा अन्वेषण' श्री द्वारकादास पुरुषोत्तमदास परिख, काकरौली, व्रजभारती, कार्तिक वि २००२। इसमें, 'श्री गोकुलनाथजी के वचनामृतों का संग्रह' नामक हस्तलिखित पोथी का कुछ परिचय दिया गया है। यह लगभग सम्वत् १७०० के लिखी गई प्रतीत होती है, इसके कुछ स्थल गोस्वामी तुलसीदास और महाकवि नन्ददास के सम्बन्ध मे प्रकाश डालते हैं।

५१—सोरों की सामग्री (प्रत्यालोचना)। प० रामदत्त भारद्वाज राजस्थान क्षितिज, १९४८ ई०। डा० माताप्रसाद गुप्त के आक्षेपों का उत्तर।

५२—सोरों की सामग्री। प० भद्रदत्त शर्मा। विशाल भारत, १९४८ ई०। प० चन्द्रबली पाण्डे के आक्षेपों का उत्तर।

५३—'तुलसी प्रकाश' पर विचार। प० रामदत्त भारद्वाज। विशालभारत, १९४८ वि०

५४—राजापुर का नाम करण। प०रामदत्त भारद्वाज। विशालभारत १९४८ ई०। राजानामक साधु के उपलक्ष्य मे गो० तुलसीदास से राजापुर की स्थापना का।

ग्रन्थ-सूची

(क) हस्तलिखित ग्रन्थ (एटा बदायूँ-जिलों से प्राप्त)

रामचरित मानस, बालकाण्ड (खण्डित) १६४३ वि।

रामचरित मानस आरण्यकाण्ड (खण्डित) १६४३ वि।

भ्रमर गीत (केवल दो पन्ने), १६७२ वि।

दोहा रत्नावली (गोपालदास की प्रति) १८२४ वि।

दोहा रत्नावली (गङ्गाधर की प्रति) १८०९ वि।

रत्नावलि चरित (मुरलीधर चतुर्वेद-कृत) १८०६ वि।

रत्नावलि चरित (रामवल्लभ मिश्र की प्रति) १८६४ वि।

सूकर क्षेत्र माहात्म्य (कृष्णदास कृत), मुरलीधर चतुर्वेदी की प्रति १८०६ वि।

सूकर क्षेत्र माहात्म्य (कृष्णदास कृत), शिवसहाय की प्रति, १८७० वि।

रत्नावली लघु दोहा संग्रह, रामचन्द्र की प्रति, १८७४ वि।

रत्नावली लघु दोहा संग्रह, रघुनाथ की प्रति, १८७५ वि।

भक्तमाल की टीका, सन्तदास कृत, १८६४ वि।

वंशावली कृष्णदासकृत (मुरलीधर चतुर्वेदी की प्रति) १८२६ वि।

वर्षफल (कृष्णदासकृत), रुद्रनाथ की प्रति, १८७० वि।

श्री विष्णुस्वामि चरितामृत हरिनाथ भट्ट कृत।

(ख) अन्य हस्तलिखित ग्रन्थ

रामचरित मानस (बालकाण्ड), श्रावणकुञ्ज अयोध्या, १६६१ वि.।
रामचरित मानस (अयोध्या कांड), रसापुर की प्रति।
रामचरितमानस (सुदर काण्ड), दुलही की प्रति, १८७२ वि.।
रामचरित मानस (सम्पूर्ण), काशिराज की प्रति, १७०४ वि.।
अष्ट सखामृत (प्राणशकृत), रमणलाल वैद्य, गोकुल, १८६५।
वि स १६६७ चैत सुदी ५ की लिखी चौरासी तथा चार अष्टछापी सेवकों की वार्ता। काकरौली।
'भाव प्रकाश' वाली चौरासी तथा अष्टसखान की वार्ता, स. १७५२, काकरोली।

श्री गोकुलनाथजी के वचनामृतों का सग्रह, लगभग सम्वत् १७००।

चालुक वश प्रदीप, भीमदेव बघेलाकृत।

कर्ण विलास (कान्हरायकृत)

(ग) शिलालेख

सोरों का शिलालेख ११८८ इसवी।

(घ) अँगरेजी ग्रन्थ

Archaeological Survey of India Vol. I 1871 A D.
Notes on Tulsi Das by G A. Grierson. The Indian Anti quary, Vol. XXII 1893

Ayeen Akberi, Edited by Jagadish Mukhyo padhyaya, 1898.
The Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India by Nando Lal Day, 1899.

Tulsi Das by G. A. *Grierson* (J. R. A. S, 1903)

Akbar, The Great Mogul, by Vincent A Smith, 1917

Sketch of Hindi Literature by Greaves, 1918

Hindi Literature, by F. E. Keay, 1920

Cyclopaedia of Ehics and Religion, 1921

Selections from Hindi Literature, by Rai Bahadur Lala Sitaram, 1923

A History of Sanskrit Literature, by A A Macdonell, 1925

Encyclopaedia Brittanica 1929

History of Jahangir, by Dr. Beni Prasad, 1930

The Ramayana of Tulsidas by J.M. Macfie, 1930

Index Verborum to Tulsidasa's Ramayana, by Dr. Surya-kant Shastri, 1937

Great men of India (Home Library Club)—Tulsidas by Kissane Keane.

Statistical Description and Historical Account of the North-Western Province of India, Edited by Edwin Atkinso, Vol I, Bundelkhand, Allahabad, 1874 A D.

Statistical Description and Historical Account North-Western Province Edited by Edwin Atkinson, Vol IV, Agra Division, 1876

Imperial Gazetteer of India, Vol. XI, by W. W. Hunter, Second Edition, 1886

Imperial Gazetteer of India, No. II Provincial Series, of Calcutta, 1908

Imperial Gazetteer of India Vol, XXIII, 1908

District Gazetteres of the United Provinces, Vol. XXI, Banda, 1909

Gazetteer of the Etah District, 1911

Annual Progress Report of the Superintendent of Hindu and Buddhist monuments, Northern Circle for the year ending 31st March 1919, Lahore 1920

A Sketch of the Religious Sects of the Hindus by H. H. Wilson, new Edition by Reinhold Rost, 1861

Translation of the Ayodhya, Mahatmya by Ram Narayan of Bareli College (Indian Antiquary, 1875 AD)

The Prologue to the Ramyana of Tulsidas, by F. S. Growse.

Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol. XLV, 1876 A D.

The Modern Vernacular Literature of Hindustan by G. A. Grievson 1889

Ramayana of Tulsidas—English Translation by F. S. Growse, Vol. I, 1891

(ड) अन्य ग्रन्थ

वराह पुराण ।

ब्रह्मपुराण ।

गर्ग संहिता ।

पृथ्वीराज रासो ।

दो सौ बावन वैष्णव वार्ता, रणछोर पुस्तकालय, डाकोर १९६० वि. ।

बावन वचनामृत ।

भक्तमाल (नाभादासकृत) नवलकिशोर प्रेस, १९२६ ई० ।

भक्तिरस बोधिनी (प्रियादास) ।

श्री वल्लभ दिग्विजय ।

अयोध्या माहात्म्य ।

मूल गोसाईं चरित (तथाकथित बाबा वेणीमाधवदास कृत), गीता प्रेस, गोरखपुर ।

तुलसी चरित (तथाकथित बाबा रघुवरदासकृत) ।

घट रामायन (तुलसी साहब कृत), बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग ।

शिवसिंह सरोज (शिवसिंह सेंगर कृत) नवलकिशोर प्रेस, १६२६ ई. ।

विश्वकोश (हिन्दी), कलकत्ता ।

हिन्दी शब्दसागर, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।

संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, प्रो. सीताराम जयराम जोशी
और प्रो. विश्वनाथ भारद्वाज ।

संस्कृत साहित्य का इतिहास (सीताराम शास्त्रिकृत) ।

प्रौढ मनोरमा भट्टोजी दीक्षित कृत ।

रसगङ्गाधर, (पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी) नागरी प्रचारिणी सभा,
काशी ।

जहाँगीरनामा (मुंशी देवीप्रसाद कृत) ।

गुसाईं तुलसीदास का जीवन चरित (ग्रीव्ज़ कृत) । नागरी प्रचा-
रिणी पत्रिका १६५५ वि० ।

रामचरितमानस (काशी नागरी प्रचारणी सभा) इंडियन प्रेस,
श्यामसुन्दरदास द्वारा सम्पादित १६०३ ई.

रामचरित मानस, श्यामसुन्दरदास की टीका, १६१६ ई.

रामचरित मानस, श्यामसुन्दरदास की टीका, १६४१ ई.

रामचरित मानस (स. विजयानन्द त्रिपाठी) १६३७ ई.

रामचरित मानस (स. रामकिशोर), नवलकिशोर प्रेस १६२५ ई०

रामचरित मानस (टीकाकार—श्री रामबालकदास—सेठ लक्ष्मीचन्द
छोटेलाल, वैष्णव पुस्तकालय, अयोध्या)

रामचरितमानस (टीकाकार—रामनरेश त्रिपाठी) १९८२ वि.
तुलसीकृत रामायण—ज्ञानसागर प्रेस, बम्बई, १९१२ ई
रामायण सटीक (टीकाकार—रामनारायण मिश्र १९३१ ई.
रामचरित मानस (टीकाकार, विनायक राव) १९१२ ई.
रामचरित मानस (टीकाकार रामेश्वर भट्ट)
रामचरित मानस (टीकाकार—ज्वालाप्रसाद मिश्र)
रामायण (गुटका), खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर
रामचरित मानस (पाठान्तर सहित) गीता प्रेस
मानसाङ्क (कल्याण) १९९५ वि०।
रामायणाङ्क (कल्याण)।
हिन्दी भाषा और साहित्य (श्यामसुन्दरदास कृत), १९३०।
गोस्वामी तुलसीदास (श्यामसुन्दरदास कृत) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, जिल्द ७ ८, १९२६-२७ ई०।
गोस्वामी तुलसीदास (श्यामसुन्दरदास और पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल कृत)।
गोस्वामी तुलसीदास (श्यामसुन्दरदास), इंडियन प्रेस।
हिन्दी नवरत्न (मिश्रबन्धु कृत), गंगा पुस्तकमाला, १९९५ वि ।
महात्मा तुलसीदासजी (ले० श्याम विहारी मिश्र और शुकदेव बिहारी मिश्र) माधुरी, अगस्त १९२३ ई०।
नवरत्न (तुलसी चरित की समालोचना), मर्यादा १९१२ ई०।
गोस्वामी तुलसीदासजी, ले० मायाशङ्कर याज्ञिक, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, जिल्द ८, १९२७ ई ।

तुलसी ग्रन्थावली (सम्पादक–रामचन्द्र शुक्ल आदि)नागरी प्रचारिणी सभा काशी, १६८० वि. ।

गोस्वामी तुलसीदासजी (जीवन खण्ड सहित) ले. रामचन्द्र शुक्ल ।

हिन्दी साहित्य का इतिहास (ले. रामचन्द्र शुक्ल) १६४० ई. ।

हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास (डा. सूर्यकान्त शास्त्री) ।

हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मकइतिहास, डा. रामकुमार वर्मा ।

गोस्वामी तुलसीदासजी (ले. शिवनन्दनसहाय) बिहार स्टोर, आरा १६१६ ई. ।

गोस्वामी तुलसीदासजी (ले. शिवनन्दनसहाय) माधुरी, अगस्त १६२३ ई. ।

क्या राजापुर का रामचरित मानस तुलसीदास के हाथ का लिखा है ? (ले. लाला सीताराम) माधुरी १६२४ ई. ।

तुलसीदासकृत अयोध्याकाण्ड (राजापुर प्रति) ला. सीताराम द्वारा प्रकाशित ।

सुकवि सरोज (गौरीशङ्कर द्विवेदी) ।

बुंदेल वैभव (गौरीशङ्कर द्विवेदी) ।

गोस्वामी तुलसीदास और उनकी जाति (भगीरथप्रसाद दीक्षित) माधुरी १६२८ ई. ।

तुलसीदास और उनकी कविता (रामनरेश त्रिपाठी), १६३७ ई. ।

तुलसी संदर्भ (माताप्रसाद गुप्त), १६३४ ई० ।

श्रीयुत गोस्वामी तुलसीदासकृत रामायण सम्पूर्ण, दीपक सहित, परमहंस सीतारामशरण अयोध्या की आज्ञा से, १६२६ । रामभद्र द्वारा संशोधित ।

गोस्वामी तुलसीदास के विषय में कुछ निवेदन । आदित्यनारायण

सिंह शर्मा । सरस्वती, सख्या १, भाग १६

कवित्त—रामायण में गोस्वामी तुलसीदास का आत्म चरित, उत्तर पक्ष । बालकराम विनायक । सरस्वती, सख्या १, भाग १६ ।

तुलसीदास (श्री नरोत्तमदास स्वामीकृत) १६४० ।

गोस्वामी तुलसीदास का जन्मस्थान (रामबहोरी शुक्ल) वीणा, १६३८ ई० ।

तुलसी चर्चा—ले० रामदत्त भारद्वाज और भद्रदत्त शर्मा, लक्ष्मी प्रेस, कासगज, मार्च १६४१ ई० ।

रत्नावली—ले० रामदत्त भारद्वाज, गगाग्रथागार, लखनऊ, अगस्त १६४१ ई० ।

तुलसीदास—ले० डा. माताप्रसाद गुप्त, मई १६४२ ई० ।

गोस्वामी तुलसीदास (सक्षिप्त जीवन चरित)—ले० रामदत्त भारद्वाज, तुलसी स्मारक समिति कासगज ।

प्राचीन वार्ता रहस्य, प्रकाशक विद्याविभाग, कांकरोली । सम्पादक—द्वारकादास पुरुषोत्तमदास परिख । स० १६६८ ।

साहित्य-सन्दीपिनी, ले० चद्रबली पाडे, सरस्वती मन्दिर, बनारस, १६४७ ई.

———

ग्रन्थकार की तुलसी-सम्बन्धी अन्य महत्वपूर्ण रचनाओं पर

कुछ सम्मतियाँ

"......आपने इस विषय में बड़ा भारी पुरुषार्थ किया है। ए छिपी या छिपाई हुई सचाई आपने संसार के सामने रक्खी है। आपके लिखी बातों का खण्डन करना या जवाब देना कोई खेल नहीं। इसीलि अब वे लोग प्रायः चुप हैं, जो गोस्वामी तुलसीदासजी को इधर उधर क सिद्ध करने के लिये शोर मचाया करते थे। मेरी राय में हठधर्मी तो किस दशा में भी ठीक नहीं होती। तुलसीदासजी के सोरों निवासी होने स सम्बन्ध में जब पर्याप्त प्रमाण उपस्थित हैं, तो उन्हें अवश्य स्वीकार कर लेन चाहिए। कुछ भी हो, आप ने इस दिशा में प्रशंसनीय का किया है......।"

हरिशंकर शर्मा

"......आपने सराहनीय परिश्रम किया है। सोरों को शूकरक्षेत्र प्रमाणित करने के लिये जो प्रमाण संग्रह किए गए हैं, वे बड़े काम के हैं मूल-गोसाईं-चरित की समीक्षा भी आप ने बड़े अकाट्य प्रमाणों के आधार पर की है। तुलसीदास की जन्म-भूमि आदि के विषय में एक व्यापक आन्दोलन की ज़रूरत है। उनके सम्बन्ध में सच्ची ही बातें जनता को बताई और पढ़ाई जानी चाहिए...।"

रामनरेश

"......आप का परिश्रम सब प्रकार से अभिनन्दनीय है।"

नरोत्तमदास स्वामी (डूँगर-कॉलेज, बीकानेर)

"......पुस्तक मैंने आद्योपान्त पढ़ी। यह आप लोगों ने बहुत अच्छा किया कि गोस्वामीजी से सम्बन्ध रखनेवाली यह समस्त नवीन सामग्री पुस्तकाकार प्रकाशित कर दी। इससे इसके अध्ययन तथा प्रचार में यथेष्ट सहायता मिलेगी। शूकरक्षेत्र वर्तमान सोरों ही है, इस सम्बन्ध में मतभेद के लिये गुंजाइश नहीं। 'मूल गोसाईं चरित' तथा 'तुलसी-चरित' मेरी समझ में भी अप्रामाणिक ग्रंथ हैं। गोस्वामीजी का जन्म-स्थान राजापुर के निकट था अथवा वह कान्यकुब्ज या सरयूपारीण ब्राह्मण थे, इन मतों की पुष्टि में आज तक जितने भी प्रमाण दिए गए हैं, वे अभी तक मेरे गले नहीं उतर सके। मुझे तो उनमें खींच तान, ही अधिक दिखलाई पड़ती है। रत्नावली-चरित, रत्नावली के दोहे तथा सोरों की अन्य सामग्री का अध्ययन मूल रूप में मैं नहीं कर सका, इसलिये इस सम्बन्ध में निर्णयात्मक रीति से अभी कुछ नहीं कह सकता। यों रत्नावली के दोहों की भावुकता से मैं प्रभावित अवश्य हुआ। कृति पुरानी हो सकती है। मेरा झुकाव तो सदा से इसी ओर है कि गोस्वामीजी का जन्म स्थान कदाचित् सोरों था......उनके कान्यकुब्ज अथवा सरयूपारीण होने के स्थान पर सनाढ्य होने की अधिक संभावना है।...आशा है, आप लोग इस खोज के कार्य को आगे बढ़ाने का यत्न करेंगे......।"

डा० धीरेन्द्र वर्मा एम. ए, डी. लिट्
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

I have read through the illustrated Tulsi Charcha and found it quite interesting and informative. It is an asset to Hindi Literature as it throws fresh and profuse light on the home of Goswami Tulsidas and Ratnawali. You have given, by new and convincing arguments, a master stroke to the Mool Gosain Charita and the Tulsi Charita. I highly appreciate your discovery of a few manuscripts specially the Ratnawali Charita by Murali Dhar Chaturvedi and the Dohas by Ratnawali. I am impressed as regards their language and diction which represent their age. I consider your work to be of intrinsic merit and of a very high order. I congratulate you on your laudable efforts.

Lachhmidhar
Mahamahopadhyaya
Shastri, M.A., M.O.L., Ph. D.
Head of the Department of
Sanskrit and Hindi,
University of Delhi

I think you have done a useful work. With great men like Tulsidas one cannot know too much about their lives, and your work on Tulsidas's wife will fill a place of its own. I hope you will be encouraged by your books being appreciated by a wide circle of readers.

T. Grahame Bailey
Edinburgh.